ISSN 0976 - 4569

पशुधन प्रकाश

पंचम अंक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल–132001 (हरियाणा)

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

पशुधन प्रकाश

पंचम अंक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल– 132 001 (हरियाणा) भारत

भाकृअनुप
ICAR

पशुधन प्रकाश

पंचम अंक

ISSN 0976-4569

संरक्षक एवं प्रकाशक
आर्जव शर्मा, निदेशक

मुख्य सम्पादक
अनिल कुमार मिश्र

सम्पादक मंडल
मनीषी मुकेश
रेखा शर्मा
साकेत कुमार निरंजन
सोनिका अहलावत
सतपाल

© भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

अंक–5 (वर्ष–2014)

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए आंकड़े तथा विचार लेखकों के अपने हैं।
उनके लिए संपादक मंडल अथवा ब्यूरो किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रक
इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
343, पहली मंजिल, मुगल कॅनाल, करनाल – 132 001 (हरियाणा)
फोन नं. 0184–4043541, 3292951, ई–मेल: jobs.ipp@gmail.com

विषय–सूची

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1.	**राजस्थान राज्य के अवर्णित एवं महत्वपूर्ण गोवंशीय समूहः नारी तथा सांचौरी** पी के सिंह, आर के पुंडीर, डी के सडाना एवं करुणा असीजा	1
2.	**कोरापुट – एक कम ज्ञात भेड़ नस्ल** संजीव सिंह, के एन राजा एवं इंद्रजीत गाँगुली	8
3.	**छेरी – छत्तीसगढ़ की एक स्थानीय बकरी** शीतल भुआर्य, के मुखर्जी, मोहन सिंह, केशर परवीन एवं दीप्ति किरण बरवा	11
4.	**रोहिलखण्डी बकरी: उत्तर प्रदेश की अभूतपूर्व नस्ल** बी एच एम पटेल, दीपक उपाध्याय, जी के गौड़ एवं भारत भूषण	13
5.	**सिक्किम प्रदेश की स्थानीय बकरियों का गुण निर्धारण** एन के वर्मा	19
6.	**बृज क्षेत्र के लिये बकरी की नस्लें और उनकी विशेषाताएं** साकेत भूषण	23
7.	**क्लोनिंग द्वारा पशु जैव–विविधता संरक्षण** बीरबल सिंह, गोरख मल, मनीषी मुकेश, मोनिका सोढ़ी एवं सुरेश सिंगला	26
8.	**भेंड़ कैसे खरीदें– प्रक्रिया एवं सलाह** गोपाल आर गोवने, एल एल एल प्रिंस, वेद प्रकाश एवं आर सी शर्मा	30
9.	**शूकर प्रजनन का परिदृश्य** शान्तनु बनिक, पी के पंकज, सौमेन नश्कर, आर पुरूषोत्तम एवं इन्द्रजीत गांगुली	33
10.	**उत्तर प्रदेश में बकरी पालन की उपयोगिता** सत्येन्द्र पाल सिंह, शिल्पी गोयल एवं संजीव सिंह	36
11.	**उच्च तुंगता वाले हिमालयी क्षेत्र में भेड़ और बकरी की स्थिति तथा पशुपालन व्यवस्था** विजय के भारती, प्रभात कुमार, साहिल कालिया एवं रवि बिहारी श्रीवास्तव	43
12.	**लेह–लद्दाख क्षेत्र की कठिन परिस्थितियों में पशु आनुवंशिक संसाधनों का मूल्य और महत्व** मोनिका सोढ़ी, प्रीति वर्मा, संदीप मान, प्रभात कुमार, विजय भारती, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश	49
13.	**जैव विविधता – मानव जाति की जीवन रेखा** मनीषी मुकेश, प्रवेश कुमारी, बी के जोशी, प्रीती वर्मा, संदीप मान एवं मोनिका सोढ़ी	60
14.	**बकरी का दूध गाय के दूध का बेहतर विकल्प** रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं एम एस टांटिया	67

15. आण्विक चिन्हक व इनका मात्स्यिकी विज्ञान में उपयोग 73
मेघा कदम बेडेकर एवं गायत्री त्रिपाठी

16. आनुवंशिक संसाधनो के सतत उपयोग के लिए प्रोडूसर कम्पनी बेहतर विकल्प 75
प्रताप सिंह पंवार

17. मादा पशुओं में अनु–उर्वरता के प्रमुख कारण एवं निवारण 79
संजय कुमार मिश्र एवं अतुल सक्सेना

18. मादा पशुओ में प्रजनन सम्बन्धी प्रमुख समस्यायें: कारण, उपचार एवं बचाव 84
संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव

19. पंचगव्य चिकित्सा: पशुओं तथा मनुष्यों की स्वास्थ्य रक्षा पद्धति तथा जैव चिकित्सा अनुप्रयोग का एक अवलोकन 87
रूचि तिवारी, संदीप चक्रवर्ती, यशपाल सिंह मलिक एवं कुलदीप धामा

20. पशुधन व्यवसाय के लिए संतुलित आहार प्रबंधन 93
चन्द्रनाथ मिश्र, विकास गुप्ता, सतीश कुमार एवं राजपाल मीना

21. पशु आहार में खनिज एवं विटामिन का महत्व 96
अनिल सैनी

22. अजोला: प्रोटीन से भरपूर पूरक पशु आहार 104
बच्चू सिंह मीणा, नवाब सिंह, राज पाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र एवं सतीश कुमार

23. डेयरी पशुओं में दुग्ध ज्वर और कैल्शियम की कमी को नियंत्रण करने के उपाय 106
अनीता गांगुली, आर एस बिसला, वंदना भनोट, संजीव सिंह एवं इंद्रजीत गांगुली

24. थिलेरियोसिस: दुधारू पशुओं का एक घातक रोग 109
साक्षी चौहान एवं विपुल ठाकुर

25. नेपियर घास: उत्पादन तकनीक एवं प्रबंधन 111
एस आर वर्मा, आर के बैरवा, राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र एवं सतीश कुमार

26. असाध्य रोगों के उपचार की असीम सम्भावनाओं को तलाशती वंश कोशिकायें 114
अनुज कुमार सिंह सिकरवार, चेतना गंगवार, रविरंजन एवं एस डी खर्चे

राजस्थान राज्य के अवर्णित एवं महत्वपूर्ण गोवंशीय समूहः नारी तथा सांचौरी

पी के सिंह, आर के पुंडीर, डी के सडाना एवं करुणा असीजा

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

गोवंशीय पशु संख्या की दृष्टि से राजस्थान भारत का छठा सबसे बड़ा राज्य है,जहाँ देश की कुल गोवंशीय पशु संख्या (1990.8 लाख) का 6.1% (121. 2 लाख) पाया जाता है। राज्य के गोवंशीय पशुधन में 43.62% शुद्ध गोवंशीय नस्लें, 1.01% ग्रेडेड स्वदेशी, 48.64% अवर्णित स्वदेशी और 6.73% विदेशी/ संकर का समावेश है। वर्ष 2012 में दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान राष्ट्रीय दुग्ध उत्पादन (1279 लाख टन) में 10.6% (135.1 लाख टन) का योगदान कर रहा है। राजस्थान के दूध उत्पादन में संकर गोवंश, स्वदेशी गोवंश, भैंस एवं बकरी का योगदान क्रमशः 7.3%, 29.5%, 51.1% एवं 12. 1% है । यहाँ के स्वदेशी एवं संकर गोवंशीय पशुओं का प्रतिदिन दूध उत्पादन क्रमशः 3.54 कि. ग्रा. एवं 7.59 कि. ग्रा. है, जो कि राष्ट्रीय औसत के मुकाबले अधिक है। दूध उत्पादन की दृष्टि से गोवंशीय पशुओं में स्वदेशी गोवंश (39.83 लाख टन), संकर गोवंश (9.89 लाख टन) के मुकाबले चार गुना योगदान कर रहा है। राज्य की प्रति व्यक्ति प्रति दिन दूध उपलब्धता 539 ग्रा है, जो कि पंजाब और हरियाणा के बाद देश में तीसरे स्थान पर है और राष्ट्रीय औसत (290 ग्रा) के लगभग दो गुने के बराबर है। राज्य में स्वदेशी श्रेष्ठ दुग्ध उत्पादकता वाली नस्लें जैसे साहिवाल, गीर, राठी, थारपारकर और कांकरेज दुकाजी नस्लें जैसे हरियाना, मेवाती एवं श्रेष्ठ भारवाही नस्ल नागोरी पायी जाती हैं। हालाँकि अवर्णित गोवंश के राष्ट्रीय अनुपात (69.7%) की तुलना में राज्य के अवर्णित गोवंश का अनुपात (48.6%) कम है फिर भी राज्य में अवर्णित पशुओं में कुछ ऐसे गोवंशीय समूह उपलब्ध हैं, जिनको नस्ल का दर्जा दिया जा सकता है, किन्तु इनके गुण निर्धारण सम्बन्धी अध्ययनों के अभाव में ऐसा नहीं किया जा सका है। राजस्थान के पाली, सिरोही एवं जालौर जिले में ऐसी ही दो गोवंशीय पशुओं के समूहों का पता लगाकर इनका सर्वेक्षणों के माध्यम से व्यवस्थित अध्ययन किया गया है। इस लेख में इन्हीं दो गोवंशीय पशु समूहों, नारी तथा सांचौरी, का विवरण दिया जा रहा है, जिनके नस्ल के रूप में पंजीकरण की आवश्यकता है।

नारी गोवंशीय समूह

नारी पशुओं के अध्ययन के लिए पाली एवं सिरोही जिलों की चार तहसीलों के 21 गावों में सर्वेक्षण किया गया। इस दौरान पूर्व निर्धारित प्रश्नावली के आधार पर नारी पशुओं के प्रबंधन एवं उत्पादन सम्बन्धी सूचनाएं एकत्र करने के लिए 58 पशुपालकों से साक्षात्कार किया गया। नारी पशुओं के भौतिक लक्षणों का अध्ययन 344 पशुओं पर किया गया तथा विभिन्न आयु/ लिंग वर्ग के 354 पशुओं की शारीरिक मापें भी ली गयी। पशुओं के प्रजनन एवं उत्पादन गुणों का अध्ययन 66 दूध देने वाली गायों पर किया गया।

चित्र 1 – नारी गाय

चित्र 2 – नारी गाय

नारी गोवंशीय पशुओं का वितरण मुख्य रूप से पाली जिले की बाली तहसील एवं सम्पूर्ण सिरोही जिले में है।नारी पशु पालकों द्वारा बताया गया कि इन गोवंशीय पशुओं का नामकरण 'नार' शब्द से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'पहाड़'। चूँकि नारी पशु राजस्थान की अरावली पहाड़ियों के तलहटी वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं, अतः इनका नाम नारी पड़ा। यह क्षेत्र अर्ध शुष्क ऊष्ण जलवायु वाला है, जहाँ तापमान गर्मियों में 45° से. से अधिक तक चला जाता है तथा वार्षिक बरसात लगभग 300–700 मि.मी. तक होती है।

इन पशुओं के स्वामियों से प्राप्त जानकारी के अनुसार राजस्थान राज्य के इन दो जिलों में नारी पशुओं की संख्या लगभग 50,000 है। नारी पशुओं का झुण्ड आकार 20-100 तक पाया गया। ऐसा बताया गया कि इन पशुओं के झुण्ड के आकार में विगत 2-3 दशकों से गिरावट आ रही है, जो कि संभवतः चराई की भूमि में कमी के कारण है। वर्तमान में नारी पशुओं को रायका समुदाय द्वारा रखा जाता है, किन्तु यह भी कहा जाता है कि पूर्व में भील एवं गुज्जर समुदाय भी नारी पशुओं को पालते थे। बाली तहसील के नारी पशु चारे की कमी के कारण वर्ष में कुछ माह के लिए अरावली पहाड़ियों पर चले जाते हैं, किन्तु सिरोही जिले के नारी पशु प्रत्येक वर्ष दीपावली के बाद गुजरात की ओर कूच कर जाते हैं एवं वर्षा ऋतु के आगमन के पश्चात् अपने–अपने मूल गावों को लौट आते हैं।

चित्र 3– नारी गोवंशीय पशुओं का खुला आवास

जब यह पशु अपने मूल स्थान पर रहते हैं तब मुख्यतः चराई पर पाले जाते हैं। किसान के घर इन पशुओं को अल्प मात्रा में हरा चारा दिया जाता है। कुछ अच्छे दूध उत्पादन वाली गायों को 1-2 कि. ग्रा. तक दाना भी दिया जाता है। इन पशुओं का गर्भाधान नैसर्गिक विधि से झुण्ड में उपलब्ध सांड़ो द्वारा किया जाता है।

नारी गोवंशीय पशु मजबूत, एवं गठीले शरीर वाले होते हैं। गायों का रंग अधिकांशतयः सफेद किन्तु कभी कभी सलेटी सफेद भी होता है। सांड़ भी सफेद अथवा सलेटी सफेद होते हैं। इनके चेहरे की लम्बाई और चौड़ाई क्रमशः गायों में 44 व 14 से. मी. तथा सांडों में 46 एवं 16 से. मी. होती है। इनके आँखों, थूथन एवं पूंछ का रंग अधिकांशतयः काला होता है। नारी पशुओं का सींग सीधा, वक्र अथवा सर्पिल रूप में होता है। नारी पशु के सींगों की लम्बाई गायों में लगभग 52 से.मी. व् बैल/ सांडो में लगभग 56 से.मी. होती है। सींगों की परिधि गायों में लगभग 19.5 से.मी. तथा बैल/ सांडो में लगभग 22.5 से.मी. होती है। सिंह एवं अन्य (2008) ने हल्लीकर नस्ल में, गोखले एवं अन्य (2009) ने खिल्लार नस्ल में, पुंडीर एवं अन्य (2009) ने बरगुर नस्ल में, पुंडीर एवं अन्य (2011) ने कांकरेज नस्ल में एवं सिंह एवं अन्य (2012)

चित्र 4 – अरावली पहाड़ियों पर नारी गोवंशीय पशुओं का झुण्ड

ने पुल्लिकुलम नस्ल में गायों एवं बैल/ सांडो में सींगो की लम्बाई एवं परिधि का आंकलन किया है। यदि इन शोधकर्ताओं के द्वारा प्रकाशित सींग की मापों से नारी नस्ल की तुलना की जाये तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नारी पशुओं के सींगो की लम्बाई हल्लीकर, खिल्लार, बरगुर, कांकरेज, पुल्लिकुलम नस्लों की तुलना में सबसे अधिक है, हालाँकि सबसे मोटे सींग कांकरेज नस्ल के होते हैं। नारी पशुओं का कूबड़ बड़ा व विकसित होता है एवं कान खड़े व क्षैतिज होते हैं, हालाँकि कुछ पशुओं में कान हल्के गिरे हुए भी हैं। नारी वंशीय पशुओं के गलकम्बल भी विकसित होते हैं। इनके थन कटोरीनुमा व अयन अधिकांशतः बेलनाकार होते हैं। इन पशुओं की पूंछ लम्बी, आरंभ में चौडी एवं बाद में क्रमशः पतली होती जाती है। नारी पशु स्वभाव से सरल होते हैं। नारी गायों की औसत ऊँचाई, लम्बाई एवं सीने की गोलाई क्रमशः लगभग 121, 119 एवं 153 से. मी. होती है तथा यह शारीरिक मापें बैलों में क्रमशः लगभग 131,129 एवं 175 से. मी. होती हैं, जो कि पुंडीर एवं अन्य (2011) द्वारा प्रस्तुत कांकरेज नस्ल की शारीरिक माप से कम हैं। नारी गायों का प्रति दिन दूध उत्पादन 3-8 लीटर पाया गया। पशुपालकों द्वारा नारी गायों के दूध की गुणवत्ता संकर गायों के मुकाबले अच्छी बताई गयी है। नारी बछड़े लगभग 3-3.5 वर्ष की आयु में वयस्क हो जाते हैं, जबकि गायों में प्रथम ब्यांत पर आयु लगभग 3.5-5 वर्ष के मध्य

चित्र 5 एवं 6 – नारी सांड़

होती है। नारी गायें 20 वर्ष के जीवन काल में औसतन 8–10 संततियों को जन्म देती हैं। इनका दुग्ध काल 9-15 माह व ब्यांत अन्तराल लगभग 15-24 माह के बीच पाया गया। नारी वंशीय पशुओं में अरावली पहाड़ियों की तलहटी के गर्म व शुष्क जलवायु को सहन करने की अद्‌भुत क्षमता है। यह पशु केवल चराई पर तथा सभी मौसमों में खुले आवासों में आसानी से रह सकते हैं। नारी वंश के बछड़े खेती एवं ग्रामीण परिवहन में काफी उपयोगी हैं। किन्तु इस क्षेत्र में कृषि मशीनीकरण के कारण इनकी उपयोगिता में कमी आई है, इसलिए नारी बछड़ों/ बैलों को मध्य प्रदेश व गुजरात के व्यवसाइयों व किसानों को बेच दिया जाता है।

सांचौरी गोवंशीय समूह

सांचौरी गोवंशीय पशुओं के अध्ययन के लिए राजस्थान के जालोर जिले की तीन तहसीलों सांचौर, भीनमाल एवं रानीवाड़ा के 12 गावों का सर्वेक्षण किया गया एवं 45 किसानों से साक्षात्कार किया गया। सर्वेक्षणों के माध्यम से पूर्व निर्धारित प्रश्नावली के आधार पर सांचौरी गायों के प्रबन्धन एवं उत्पादन सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित की गयी। सांचौरी गोवंशीय पशुओं का उल्लेख कृषि एवं खाद्य संगठन के द्वारा वर्ष 2007 में प्रकाशित विश्व की पशुधन नस्लों की सूची में भी है। सांचौरी गोवंश का वितरण राजस्थान के जालोर जिले की सांचौर, भीनमाल, रानीवाडा तहसीलों में मुख्य रूप से है। भौगोलिक स्थिति के दृष्टिकोण से यह क्षेत्र एक तरफ कांकरेज के प्रजनन क्षेत्र से, दूसरी तरफ थारपारकर के प्रजनन क्षेत्र से एवं तीसरी तरफ नारी के प्रजनन क्षेत्र से जुड़ा है। यह क्षेत्र गर्म एवं शुष्क जलवायु वाला है। यहाँ वार्षिक वर्षा 480 मि. मी. होती है। इस क्षेत्र के किसान अपनी कृषि योग्य भूमि के निकट मकान बना कर निवास करते हैं। ऐसे आवासों को ढ़ाणी कहा जाता है।

किसान अपने आवासों के समीप पशु आवास का निर्माण करते हैं। पशु आवासों के सामने खुला स्थान छोड़ा जाता है, जिसमे तीन से चार बड़े वृक्ष लगाये जाते हैं, ताकि दिन के समय पशु खुले में इन वृक्षों की छाया में रह सकें।

आवास बहुदा छप्परों के द्वारा बनाये जाते हैं और इनकी दीवारें ईंट अथवा छप्पर की होती हैं। हालांकि, पशु आवासों में नॉलियां नहीं बनाई जाती हैं, फिर भी पशुगृहों की साफ–सफाई ठीक से रखी जाती है। गायों के नैसर्गिक प्रजनन हेतु गावों में अज्ञात आनुवंशिक क्षमता वाले सांड उपलब्ध रहते हैं, किन्तु कुछ पशुपालक अपनी गायों को कृत्रिम गर्भाधान रीति से कांकरेज सांडों के वीर्य द्वारा कराते हैं। हालांकि, पशुओं को ढाणियों के निकट क्षेत्रों में 5-6 घंटा चराई पर रखा जाता है, किन्तु इनका मुख्य पोषण आवासों पर किया जाता है। दूध देने वाली गायों को उनके दूध देने की मात्रा के अनुसार 5-25 कि. ग्रा.

चित्र 7 एवं 8 – सांचौरी गोवंशीय पशुओं की आवास व्यवस्था

चित्र 9 एवं 10 – सांचौरी गाये

सूखा चारा, 2-12 कि. ग्रा. हरा चारा एवं 2-6 कि. ग्रा. दाना दिया जाता है। दूध निकालने के पहले पशु पालक गायों के थनों एवं दूध निकालने के बर्तनों को सुचारू रूप से साफ करते हैं। दूध का उपयोग घर पर किया जाता है, किन्तु आवश्यकता से अधिक दूध डेरियों पर बेच दिया जाता हैं अथवा घी बनाने में उपयोग किया जाता है। डेरियों से किसानों को 4.5-5.0% वसा वाले दूध की कीमत 22 से 25 रूपए प्रति लीटर अदा की जाती है, जो कि दूध की वसा की मात्रा पर आधारित होती है। इसलिए बहुत से किसान दुग्ध व्यवसाय हेतु गायों की जगह भैंसों को महत्व देने लगे हैं। इस क्षेत्र के पशुपालक पशुओं के स्वास्थ के प्रति सचेत हैं। पशुओं में टीकाकरण इत्यादि एवं बीमार पशुओं का ईलाज योग्य पशुचिकित्सकों द्वारा किया जाता है। पशुपालकों ने बताया की सांचौरी पशु, संकर पशुओं के मुकाबले कम बीमार पडते हैं। बीमार पशुओं के ईलाज के लिये राजस्थान सरकार की निःशुल्क दवा योजना भी क्रियान्वित है। सांचौरी गोवंशीय पशु भारी डील–डौल वाले मजबूत शरीर के होते हैं। गायों में मुख्य रूप से सफेद आवरण पाया जाता हैं, किन्तु सलेटी सफेद पशु भी मिलते हैं।

सांडो के आवरण का रंग सलेटी से काला तक होता है, किन्तु अधिकांश सांड़ सफेद आवरण वाले होते हैं, जिनके पैर, मुँह और कूबड़ काले रंग वाले होते हैं। आँख, थूथन, सींग और पूँछ के बालों का रंग अधिकांशतः काला होता है। सींग अधिकांशतः वक्रनुमा छोटे होते हैं, जिनका विन्यास बाहर, ऊपर, अन्दर की ओर जाते हुए नुकीले सिरों पर समाप्त होते हैं। सांचौरी गायों के सींगों की लम्बाई व परिधि क्रमशः 32 एवं 23 से. मी. होती है। गायों के कान अधिकांशतः क्षैतिज किन्तु कुछ में हल्के गिरते हुए पाये जाते हैं। कूबड़ का आकार सांड़ों में अधिकांशतः बड़ा किन्तु गायों में मध्यम होता है। गलकम्बल अधिकांशतः विकसित होते हैं, गायों के थन एवं अयन भी विकसित होते है जो कि इन पशुओं के अच्छे दुग्ध उत्पादन क्षमता की और इंगित करते हैं। सांचौरी गायों की उँचाई, शरीर की लम्बाई व सीने गोलाई क्रमशः लगभग 123, 129, 167 से.मी. होती है, जबकि सांड़ों में ये क्रमशः लगभग 138, 139, 189 से.मी. होती है। वाह्य संरचना बनावट एवं शारीरिक मापों से यह पता चलता है कि सांचौरी गोवंशीय पशु समीपवर्ती गो नस्लौं (कांकरेज और थारपारकर) से भिन्न हैं, अतः इनकी पहचान एक अलग गो नस्ल के रूप में की जा सकती है।

सांचौरी गायों के प्रथम ब्यांत की आयु, दुग्ध काल, ब्यांत अंतराल एवं शुष्क काल क्रमशः 36-48 माह, 8-15 माह, 11-20 माह एवं 0-10 माह होता हैं । सांचौरी गाय अपने लगभग 25 वर्षीय जीवन काल में 12-15 संततियों को जन्म देती है। कुल 276 सांचौरी गायों का इनके प्रजनन क्षेत्र में अभिलेख किये गए दैनिक दूध उत्पादन के आंकडों से यह ज्ञात हुआ कि इनका प्रति दिन दूध उत्पादन 3-16 लीटर

चित्र 11 एवं 12 – सांचौरी सांड

तक है, जिनका औसत 9.1 लीटर तक है। दूध उत्पादन के आंकड़ों से यह भी ज्ञात हुआ कि सांचौरी गायों का दूध उत्पादन पांचवी ब्यांत तक बढ़ता है एवं ब्यांत के दूसरे व तीसरे माहों में अधिकतम दूध उत्पादन होता है। इन आंकड़ों से यह सम्भावना बनती है कि सांचौरी गाये अपने दूध उत्पादन के प्रथम दस माहों में 2000- 2500 लीटर दूध उत्पादन करने में सक्षम हैं। अतः इस गोवंशीय समूह को उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाले गोवंश के रूप में माना जा सकता है। सांचौरी गोवंशीय पशुओं के बछड़े भी कृषि कार्य एवं ग्रामीण कार्य में सक्षम होते हैं। नारी गोवंशीय पशुओं की तरह सांचौरी गोवंशीय समूह भी गर्म एवं शुष्क जलवायु में जीवन निर्वाहन के लिए अभ्यस्त हैं तथा गर्मी एवं बीमारियों से लड़ने की अच्छी क्षमता है।

निष्कर्ष एवं संस्तुतियाँ

नारी गोवंशीय पशुओं की वाह्य संरचना, शारीरिक मापें विशेष रूप से इनके सींगों की लम्बाई व विन्यास और विशिष्ट प्रबन्धन प्रणाली इस गोवंश को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती हैं। रायका समुदाय के जीविकोपार्जन में नारी पशुओं का विशिष्ट योगदान है। इसी प्रकार सांचौरी गोवंशीय पशु थारपारकर एवं कांकरेज नस्लों के प्रजनन प्रक्षेत्रों के मध्य पाये जाने वाले क्षेत्रों में पाले जाते हैं, किन्तु इन दोनों गोनस्लों से भिन्न हैं। इनके अच्छे दूध उत्पादन की क्षमता इन्हें पशुपालकों के लिए उपयोगी बनाती हैं, किन्तु इनके एक नस्ल के रूप में पहचान न होने के कारण आनुवंशिक उत्थान हेतु कोई कार्यक्रम नहीं चलाया जा रहा है। अतः इस अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित संस्तुतियां की जा सकती हैं:

1. नारी एवं सांचौरी गोवंशीय समूहों को भारतीय गोवंश की अलग अलग नस्लों के रूप में शीघ्रातिशीघ्र पंजीकृत किया जाना चाहिये।
2. नारी एवं सांचौरी गोपशुओं के आनुवंशिक उत्थान हेतु उनकी प्रबन्धन प्रणाली में उचित परियोजनाएं बनाकर क्रियान्वित की जानी चाहिये।
3. नारी एवं सांचौरी गोपशुओं हेतु इनके पशुपालकों की ब्रीडिंग सोसाइटियों का सृजन किया जाना चाहिये।
4. सांचौरी नस्ल को राजस्थान सरकार के कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिये।
5. गायों के दूध के विपणन में गोपालकों को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

6. नारी पशुओं के चराई हेतु आवश्यक गोचर भूमि उपलब्ध कराने के दिशा में कदम उठाये जाने चाहिये।

आभार

इस परियोजना के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक सुविधा सुलभ कराने के लिए लेखकगण निदेशक, भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। लेखकगण राजस्थान पशुपालक विभाग के निदेशक, अपर निदेशक, जोधपुर प्रभाग एवं सिरोही व जालोर जिले के पशु चिकित्सा अधिकारियों एवं उनके अधीनस्थ सभी कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होने इस परियोजना हेतु किये गए सर्वेक्षणों के दौरान सहर्ष सहयोग प्रदान किया।

सन्दर्भ

1. गोखले, एस बी; भगत, आर एल; सिंह, पी के एवं सिंह, गुरमेज (2009)। मॉर्फोमेट्रिक करक्टेरिस्टिकस एंड यूटिलिटी पैटर्न ऑफ़ खिल्लार कैटल इन ब्रीड ट्रैक्ट । द इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 79: 47-51।
2. पुंडीर, आर के; कथिरवन, पी; सिंह, पी के एवं मणिखंडन, वी ए (2009) । बरगुर कैटलः स्टेटस, करक्टेरिस्टिकस एंड परफॉरमेंस। द इंडियन जर्नल अफ एनिमल साइंसेज 79: 681-685।
3. पुंडीर, आर के; सिंह, पी के; सिंह, के पी एवं डांगी, पी एस (2011) । फैक्टर एनालिसिस ऑफ बायोमेट्रिक ट्रेट्स ऑफ कांकरेज काउस टू एक्सप्लेन बॉडी कन्फर्मेशन । एशियन– ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 24: 449-456।
4. सिंह, पी के; पुंडीर, आर के; अहलावत, एस पी एस; नवीन कुमार; एस गोविंदया, एम जी एवं असीजा, के (2008)। फीनोटीपिक करक्टेरिज़ेशन एंड परफॉरमेंस इवैल्यूएशन ऑफ हल्लीकर कैटल इन इट्स नेटिव ट्रैक्ट। द इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 78: 211-214।
5. सिंह, पी के; पुंडीर, आर के; कुमारसामी, पी एवं विवेकानन्दन, पी (2012)। मैनेजमेंट एंड फिजिकल फीचर्स ऑफ माइग्रेटरी पुल्लिकुलम कैटल ऑफ तमिलनाडु। द इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 82: 1587-1590।

कोरापुट – एक कम ज्ञात भेड़ नस्ल

संजीव सिंह, के एन राजा एवं इंद्रजीत गाँगुली
भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

कोरापुट भेड़ पूर्वी भारत में पाई जाने वाली भेड़ों की नस्लों में से एक कम ज्ञात नस्ल है। पूर्वी भारत के उड़ीसा राज्य के मलकानगिरि, कोरापुट, रायगर्दा, तथा नभ्रंगपुर जिलों में ये बहुतायता में पाई जाती है। यहाँ का तापमान सर्दियों (दिसम्बर-जनवरी) में 12° सेल्सियस होता है, जो की बढ़ कर गर्मियों (मई-जून) में 38° सेल्सियस तक पहुंच जाता है। यहाँ वार्षिक वर्षा लगभग 152 सेंटीमीटर होती है। चावल यहाँ का मुख्य खाद्य पदार्थ है तथा इस इलाके में दाले, तिलहन तथा जौ भी उगाया जाता है।

चित्र 1 – मादा कोरापुट

उपयोगिता

इसे अधिकतर आदिवासियों द्वारा मांस उत्पादन के लिये पाला जाता है जिसे बेच कर ये प्रति भेड़ 2500-3000 रु तक कमा लेते हैं। इसे यह लोग भेंट के तौर पर भी एक दूसरे को देते हैं। काली रंग की भेड़ें धार्मिक अनुष्ठान में प्रयोग में लाई जाती हैं।

चित्र 2 – नर कोरापुट

बाह्य शारीरिक संरचना

इस भेड़ का रंग हल्के भूरे से ले कर पूर्णतः काले रंग तक हो सकता है। कुछ भेड़ें हल्के सफेद रंग की होती हैं। जिनके गले पर भूरा रंग तथा कुछ के माथे पर सफेद व काले रंग की धारियां भी होती हैं। शरीर पर ऊन की बजाय मोटे बाल होते हैं। कुछ मादा भेड़ों में वेट्ल भी पाये जाते हैं। अधिकतर भेड़ों (>63.5%) के कान 5 सेंटीमीटर से छोटे होते हैं। मादा बिना सींगों के तथा नर में 81% तक सींग होते हैं। सींग पीछे की तरफ मुड़े हुए तथा अंत में नुकीले होते हैं। इस भेड़ का वजन 19 किलोग्राम तक ही होता है। गंजम इस प्रदेश की एक पंजीकृत नस्ल है। गंजम की अपेक्षा कोरापुट भेड़ के सभी शारीरिक आयाम कम पाये गये हैं। वजन में यह गंजम से लगभग 5 किलो ग्राम कम पाई गयी है।

चित्र 3 – कोरापुट भेंड़

आवास और प्रबंधन

अधिकतर किसान यहाँ पर एकीकृत खेती तथा पशुपालन आधारित होते हैं। यह अपनी भेड़ों के लिये पूर्णत: चराई पर ही आश्रित होते हैं । भेड़ें लगभग रोज अन्य पशुओं के साथ 2-3 किलोमीटर तक चरने के लिये जाती हैं । भेड़ के झुंड का आकार 5-20 के बीच होता है। अधिकतर किसान इन्हें अपने घर में पृथक स्थान पर रखते हैं। भेड़ों का आवास कच्चा व पक्का दोनों तरह का होता है। कच्चा आवास मिट्टी व बांस का बना होता है। पक्का आवास ईट व अस्बेस्टास शीट का होता है। अधिक वर्षा होने के कारण इसे बाँसों के माध्यम से कुछ ऊपर उठा कर बनाया जाता है, जिससे पानी द्वारा फैलने वाले संक्रमण पर नियंत्रण पाया जाता हैं।

तालिका: कोरापुट भेड़ (मादा) के शारीरिक परिमाप (संख्या=237)

शारीरिक माप	औसत (सेंटीमीटर)
शारीरिक लंबाई	50.74±0.74
शारीरिक ऊँचाई	55.8±0.22
छाती की परिधि	65.7±0.277
पेट की परिधि	67.3±0.369
कान की लंबाई	6.13±0.23
पूंछ की लंबाई	9.08±0.107
चेहरे की लंबाई	15.54±0.09
शारीरिक भार (किलोग्राम)	19.29±0.219

प्रजनन

इस नस्ल की भेड़ें मुख्यत: अक्टूबर से नवंबर के बीच में प्रसव करती हैं। कुछ भेड़ों का प्रसव अप्रैल से मार्च के बीच भी होता है। दो प्रसव के बीच का अंतराल 8-12 महीनों के बीच का होता है। मादा सामान्यत: 8-10 महीनों के बीच प्रजनन के लिये परिपक्व हो जाती है। प्रथम प्रसव के समय मादा भेड़ों की आयु 18-24 महीनों के बीच होती

चित्र 4 से 6 – कोरापुट भेड़ का आवास

चित्र 7 – कोरापुट भेड़ चारागाह

है। अपने सम्पूर्ण जीवन काल में यह 6-8 मेमनों को जन्म देती है। मेढ़ा (नर) 10-12 महीनों के बीच प्रजनन योग्य हो जाता है। मेढ़ों का चयन अधिक भार तथा छोटे कानों के आधार पर होता है। भेंड़ो को 1-2 प्रजनन काल तक ही प्रजनन के लिये प्रयोग में लाया जाता है। तत्पश्च्चात इन्हें बेच दिया जाता है। मेढ़ों को 1.5-2 साल की उम्र में तथा मेड़ी को 6-7 साल की उम्र में स्थानीय बाजार में बेच दिया जाता है। इस नस्ल में मेड़ों की कमी है जो की जैवविविधता के लिये अच्छा संकेत नहीं है।

व्याधियाँ एवं रोकथाम

इस भेड़ में मुख्य बीमारियॉ, पी.पी.आर., ओ.आर.एफ तथा शीप पॉक्स होती हैं। भेड़ों की मृत्यु पी.पी.आर. से अधिक होती है। इन भेड़ों को पी.पी.आर. एन्थरेक्स, और एंटेरोटोक्सीमिया के टीके लगाये जाते हैं। कीड़े मारने की दवा अल्बेंडाजोल या फेबेंडाजोल घोल के तौर पर पिलाई जाती है।

निष्कर्ष

बाह्य संरचना के आधार पर जैसे कि छोटे कान, छोटा आकार, सुगठित शरीर आदि, यह नस्ल गंजम नस्ल से काफी भिन्न है। गंजम पतली, लम्बी टांगों वाली, मध्यम आकार वाली तथा अधिक भार वाली होती है। इसलिये कोरापुट भेड़ एक पृथक नस्ल के तौर पर पंजीकृत होने के लिये सक्षम है।

छेरी – छत्तीसगढ़ की एक स्थानीय बकरी

शीतल भुआर्य[1], के मुखर्जी[2], मोहन सिंह[3], केशर परवीन[4] एवं दीप्ति किरण बरवा[4]
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा, कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

बकरी एक बहुमुखी एवं बहुउद्देशीय पशु है। यह भारत में 'गरीब आदमी की गाय' और यूरोप में 'शिशुओं की नर्स' के रुप में जानी जाती है। बदलती कृषि–भू–जलवायु और घट रहे आजीविका के संसाधनों की परिस्थितियों में बकरी भविष्य के पशु के रुप में ग्रामीण समृद्धि के लिए उपयुक्त साबित हो सकती है। छत्तीसगढ़ राज्य सन् 2000 में मध्यप्रदेश से विभाजित होकर भारत का छब्बीसवॉ राज्य बना। छत्तीसगढ़ के भौगोलिक क्षेत्र को तीन जलवायु क्षेत्रों में बांटा गया है– उत्तरी पहाड़ी, मैदानी क्षेत्र एवं बस्तर पठार। छत्तीसगढ़ एक कृषि प्रधान राज्य है । यहाँ के अधिकांश किसान छोटे और सीमांत श्रेणी में आते हैं। बकरी पालन कम निवेश पर अधिक लाभ पहुंचाने वाला व्यवसाय है, जिसे हर वर्ग के किसान अपना सकते हैं। अतः इन स्थानीय बकरियों का आनुवंशिक सुधार करके छत्तीसगढ़ के ग्रामिणों के जीवन स्तर को सुधारा जा सकता है ।

रख–रखाव

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थानीय भाषा में बकरी को "छेरी" कह कर संबोधित किया जाता है। छत्तीसगढ़ राज्य के स्थानीय किसान आमतौर पर बकरियों को गांव के बाहरी क्षेत्रों में चराने ले जाते हैं, इन क्षेत्रों को स्थानीय भाषा में "खार" कहा जाता है। अधिकांश किसान बकरियों को रात में पुआल एवं मिट्टी से निर्मित आवास में रखते हैं। इन आवास को "कोठा" कहा जाता है।

[1] स्नात्कोत्तर छात्र
[2] प्राध्यापक
[3] प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
[4] सहा. प्राध्यापक

शारीरिक लक्षण

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थानीय बकरियॉ छोटे कद की होती हैं एवं इनकी दूध उत्पादन क्षमता निम्न स्तर की है। छत्तीसगढ़ राज्य की स्थानीय बकरियॉ मूल रूप से भूरे या काले रंग की होती है। अधिकांश बकरियों में उदर पर सफेद या काले रंग के धब्बे पाए जाते हैं, जबकि बकरों में उदर पर काले रंग की पट्टी होती है। बकरियों में दाढी का होना आम है। इन बकरियों के सींग प्रायः सीधे,

चित्र 1 – छत्तीसगढ़ी बकरी

चित्र 2 – छत्तीसगढ़ी बकरा

चित्र 3 – छत्तीसगढ़ी बकरियाँ

खड़े एवं पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं। इन बकरियों के कान क्षैतिज एवं लटके हुए होते हैं। एक वयस्क छत्तीसगढ़ी देशी बकरी का वजन 30-37 कि.ग्रा तक हो सकता है। एक वयस्क छत्तीसगढ़ी देशी बकरी की औसतन ऊँचाई 66 से.मी. एवं वयस्क बकरे की औसतन ऊँचाई 65 से.मी. तक हो सकती है।

प्रजनन विशेषताएँ

छत्तीसगढ़ की स्थानीय बकरों में प्रथम प्रजनन की आयु 6 माह, और बकरियों में यह आयु 7 माह होती है। इन बकरियों में प्रथम ब्यांत की आयु 12 माह एवं ब्यात अंतराल 6 माह तक होता है। जुड़वाँ मेमने पैदा होना इन बकरियों में आम है।

उत्पादक क्षमता

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थानीय बकरियों की उत्पादन क्षमता बहुत कम है। एक देशी बकरी की दैनिक दुग्ध उत्पादन क्षमता लगभग आधा लीटर एवं एक ब्यॉंत में कुल दूध उत्पादन क्षमता 33 लीटर तक होती है। इन बकरियों की दूध उत्पादन अवधि 3 से 3½ माह तक होती है।

रूधिर मापदण्ड

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थानीय बकरों में औसतन हीमोग्लोबिन, पैक सेल मात्रा (पीसीवी), कुल एरिथ्रोसाईट गिनती (टीईसी), कुल ल्युकोसाइट गिनती (टीएससी), ग्रीन कणिका मात्रा (एमसीएच) एवं मीन कणिका हीमोग्लोबिन मात्रा (एमसीएचसी), 9 ग्रा/डेसीलीटर, 28%, 8 मिलियन/माइक्रो लीटर, 9.7 हजार/माइक्रोलीटर, 9 पिकोग्राम, 27 ग्रा/डेसीलीटर क्रमशः तथा बकरियों में यह माप क्रमशः 9-42 ग्रा/डेसीलीटर, 29-6%, 8-36 मिलियन/माइक्रोलीटर, 9 हजार/माइक्रोलीटर, 8-87 पिकोग्राम, और 27-85 ग्रा/डेसीलीटर तक होती है।

रोहिलखण्डी बकरी: उत्तर प्रदेश की अभूतपूर्व नस्ल

बी एच एम पटेल[1], दीपक उपाध्याय[2], जी के गौड़[3] एवं भारत भूषण[3]
भाकृअनुप – भारतीय पशु–चिकित्सा अनुसंधान संस्थान्, इज्जतनगर (उ.प्र.)

भारत वर्ष 140.5 मिलियन बकरियों के साथ विश्व में दूसरे स्थान पर है। गोवंश के बाद देश में कुल पशुधन का दूसरा बड़ा हिस्सा (26.5 प्रतिशत) बकरियों का है। बकरियों को "गरीबों की गाय" के नाम से पुकारा जाता है। संख्या में अधिक होने के बाद भी बकरियों की केवल 20 जातियां ही अभिलेखित की गई हैं। यह भी स्पष्ट है कि अधिकाशतः (75%) बकरियों का अभिलेखन कार्य अभी पूर्ण नही हो पाया है। बकरी प्रजाति के सम्पूर्ण विकास की रूप रेखा तैयार करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत वर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध सभी नस्लों का सम्पूर्ण विवरण हमारे पास उपलब्ध हो। इस के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण भारत वर्ष में एक सुनियोजित सर्वेक्षण अभियान चलाया जाये एवं बकरियों की सभी जातियों का अभिलेखन किया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने करनाल, हरियाणा में राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो की स्थापना की है।

अनेक शोध संस्थानों /कृषि विश्वविद्यालयों में भी स्थानीय बकरियों को चिन्हित एवं वर्णित करने का कार्य किया गया है। तमिलनाडु में पलाई अडु (2009), मोलाई अडु (2008) तथा सेलम ब्लैक (2006), केरल मे अट्टापड़ी (2007) तथा उत्तराखण्ड मे उदयपुरी,चऊगरका (2009) एवं पंतजा (2013) इनके प्रमुख उदाहरण हैं ।

उत्तर प्रदेश के रोहिलखण्ड क्षेत्र में एक छोटी एवं काले रंग की स्थानीय बकरी है जिसका उपयोग मांस उत्पादन के लिए किया जाता है। इस जाति की बकरियों को मुख्यतः चारागाहों में घास एव पत्तियां खिलाकर पाला जाता है। इन बकरियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक है एवं अनेक रोगों का प्रकोप इन पर नही होता है। इन बकरियों की समानता बीतल नस्ल से की जा सकती है। ये बकरियां अधिकतर जुडवां तथा कभी–कभी तीन मेमनों को जन्म देती हैं । भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान द्वारा इन बकरियों को वर्णित कर अभिलेखित करने का कार्य किया जा रहा है।

रोहिलखण्ड बकरियों की उपलब्धता एवं जलवायु

रोहिलखण्डी बकरियों के प्रजनन, उत्पादन एवं शारीरिक गुणों की सम्पूर्ण जानकारी एवं अभिलेखन के लिए एक छोटा झुण्ड भाकृअनुप – भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान में रखा गया है। प्रारम्भ (1997) में 50 रोहिलखण्डी बकरियों को रिठौरा (बरेली का एक प्रमुख पशु बाजार) से खरीद कर भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली पर पाला गया। बरेली समुद्र तल से 169.2 मीटर ऊचाई पर, 28°22 उत्तर तथा 79°24 पूर्व में स्थित है। यह क्षेत्र भारत के गंगा के ऊपरी हिस्से में आता है (शास्त्री, 1995) । यहाँ कुमाऊ के तराई क्षेत्र के अनुरूप अर्ध शुष्क जलवायु है। सतत प्रजनन एवं चयन के द्वारा रोहिलखण्डी बकरियों के इस झुण्ड में वृद्वि की गई। तत्पश्चात 31 मादा बकरियों एव 3 नर बकरों को मार्च 2007 एवं 2011 में पुनः झुण्ड में शामिल किया गया। इस समय संस्थान में रोहिलखण्डी जाति की 225 बकरियां उपलब्ध हैं।

रोहिलखण्ड क्षेत्र बदायूँ, बरेली, बिजनौर, जे पी नगर, मुरादाबाद, पीलीभीत, रामपुर तथा शाहजहाँपुर जिलों के लगभग 25,000 वर्ग किमी में फैला हुआ है। उत्तर प्रदेश

[1] वरिष्ठ वैज्ञानिक
[2] शोध छात्र
[3] प्रधान वैज्ञानिक

में बकरियों की कुल संख्या 14.79 मिलियन है जिसमें रोहिलखण्डी जाति की 12,97,850 बकरियाँ हैं (पशुधन सर्वेक्षण, 2007)। इसके अतिरिक्त जमुनापारी, बरबरी, अचिन्हित एवं ग्रेडेड बकरियों की संख्या क्रमशः 7.83, 15.71, 51.38 तथा 25.08 प्रतिशत है।

गृह व्यवस्था एवं अन्य प्रबंधन

सभी रोहिलखण्डी बकरियों को भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान में खुला घर प्रणाली के अंतर्गत पृथक बाड़ों में रखा गया है। प्रत्येक बाड़े में खुला हिस्सा पशु विचरण के लिए उपलब्ध है। प्रत्येक वयस्क बकरी को 2 वर्ग मी. खुला एवं 1 वर्ग मी. ढका क्षेत्र उपलब्ध कराया गया है। अध्ययन के दौरान पशुपालन व्यवस्था को यथासंभव समान रखा गया तथा उन्हें मक्का, बरसीम, जौ तथा प्रचुर मात्रा में स्वच्छ पीने का पानी उपलब्ध कराया गया। प्रतिदिन प्रातः 10.30 बजे तथा इसके उपरान्त कम होने पर तुरन्त हरा चारा उपलब्ध कराया गया। मेमने अपनी आवश्यकतानुसार मादाओं से दूध पी सकते थे। मेमनों को 3-4 सप्ताह की आयु में पूरक दाना तथा हरा चारा उपलब्ध कराया गया तथा 3 महीने की आयु पर मेमनों को मां से अलग कर दिया गया। पूरक दाने में 25% मक्का, 47% गेहूँ की चुनी, 25% खली, 2% खनिज मिश्रण एवं 1% नमक दिया गया।

रोहिलखण्डी बकरियों की शारीरिक विशेषताएँ

रोहिलखण्डी बकरियां प्रमुखतः काली एवं भूरी होती हैं। कभी-कभी इन बकरियों का रंग हल्का भूरा अथवा मिश्रित भी होता है। मेमनों का रंग जन्म के समय काला होता है जो कि शारीरिक बढ़त के साथ-साथ बदलता रहता है। पेट के नीचे का हिस्सा बढ़ने वाले मेमनों में भूरा/लाल होता है। शरीर के बाल वर्ष भर चमकदार एवं सीधे रहते हैं । रोहिलखण्डी बकरियों में प्रमुखतः गर्दन, चेहरे, शरीर, टांगों तथा दुम पर सफेद निशान पाए जाते हैं।

व्यस्क (18 महीने से अधिक) रोहिलखण्डी बकरियों में औसत वक्ष-परिधि, शारीरिक लम्बाई, कन्धे तक ऊँचाई, नाक की लम्बाई तथा कूल्हे की चोड़ाई क्रमशः 61.64±0.38, 54.0±0.31, 57.69±0.34, 24.65±0.14 एवं 11.64±0.09 सेमी अभिलेखित की गयी।

रोहिलखण्डी बकरियों के सींग (नर एव मादा दोनो में) सामान्यतः चपटे या घुमावदार होते हैं जबकि लगभग 10% बकरियां बिना सीगों के (पोल्ड) भी होती हैं। सींग कलिकाओं का निकलना 2.5-3 महीने की उम्र पर ही पता चलता है। अधिकांशतः सींग हल्के मुड़े हुए तथा बाहर की ओर निकलते हुए होते हैं । इनकी लम्बाई 3.17 से 8.29 सेमी पाई गई है। इन बकरियों के कान काले एवं लटकते हुए होते हैं । कुछ बकरियों के कान क्षैतिज रूप से फैले हुए भी होते हैं। रोहिलखण्डी बकरियों में दाढ़ी तथा वैटल का अभाव होता है। इन बकरियों का चेहरा तथा नाक हल्की सी उभरी हुई तथा थूथन काले रंग की होती है। पृष्ठ की ऊपरी रेखा अधिकांशतः बकरियों में सीधी होती है। बकरियों में टांगे सीधी, पतली, छोटी तथा पेट के नीचे वर्गाकार रूप में स्थित होती हैं । जांघों में अधिक बाल तथा घनी पूंछ इनकी पहचान के विशेष चिन्ह हैं ।

रोहिलखण्डी बकरियों के थन अधिकांशतः शंकुकार या लटकन लिए होते हैं। थनों पर बहुत ही कम रोम होते हैं। थनाग्रों का आकार शंकुकार होता हैं। कुछ बकरियों मे थन सुप्रान्युमरी (दो से अधिक) तथा बाई फरकल (द्विविभाजित) भी होते हैं। औसत थनों की आयतन क्षमता (अडर वॉल्यूम) 821.98±54.79 मिली होती है। रोहिलखण्डी बकरियों के अयन की औसत लम्बाई, गहराई, गोलाई, सीध में चौड़ाई तथा कालम की चौड़ाई, क्रमशः 11.66±0.35, 13.86±0.44, 33.28±0.86, 10.25±0.30 तथा 8.85±0.31 सेमी होती है। इनके थनों की औसत लम्बाई, जमीन से ऊंचाई तथा उनके बीच की दूरी क्रमशः 9.44±0.30, 19.09±0.58 तथा 9.51±0.45 सेमी होती

है। अयन संबंधी विकारों में अधिसंख्यक थन सामान्यतः 16.1% तथा बाई फरकल थन 4% पाए जाते हैं।

रोहिलखण्डी बकरों मे अण्डकोश परिधि 3-6 माह, 6-12 माह, 1-2 वर्ष तथा 2 वर्ष से अधिक की आयु पर क्रमशः 2.66±0.39, 17.06±0.29, 21.85±0.42 तथा 23.38±0.52 सेमी पायी गयी । नरों के वृषण का आयतन उपरोक्त आयु वर्ग में क्रमशः 38.39±7.56, 96.27±5.55, 165.00±8.17 तथा 216.25±10.01 मिली पाया गया।

रोहिलखण्डी बकरियों के मेमनों का औसत जन्म भार 2.08±0.06 किग्रा पाया गया। नर मेमनें, मादा मेमनों से जन्म के समय भारी थे। मेमनों का औसत शारीरिक भार 15, 30 तथा 60 दिन में क्रमशः 3.68±0.10, 5.11±0.12 तथा 7.25±0.16 किग्रा था। व्यस्क बकरियों (18 महीनों से अधिक) का औसत शारीरिक भार 18.25±0.24 किग्रा था। रोहिलखण्डी बकरियो में प्रथम मद, प्रथम समागम तथा प्रथम ब्यांत के समय औसत शारीरिक भार क्रमशः 10.25±0.34, 14.34±0.40 तथा 20.15±0.41 किग्रा था।

प्रजनन में प्रयोग किये गए नरों का शारीरिक भार 3–6 माह, 6–12 माह, 1–2 वर्ष तथा 2 वर्ष से अधिक की आयु पर क्रमशः 9.01±0.64, 10.62±0.47, 21.68±0.69 तथा 35.27±0.84 किग्रा था।

रोहिलखण्डी बकरियों में मृत्युदर

रोहिलखण्डी बकरियों में पिछले 12 वर्षो (2000–01 से 2011–12) के दौरान 243 पशुओं कि मृत्यु के साथ औसत मृत्यु दर 10.93% दर्ज की गई । अधिकतर मृत्यु वर्षा-ऋतु में पायी गई। मृत्यु दर 1 माह तक 2.34 % तथा 2 से 3 माह तक 1.35% पाई गई। व्यस्क बकरियों (12 माह से अधिक) में औसत मृत्यु दर 3.42% थी । पाचन संबंधी रोग (3.51%), स्वांस के रोग (1.89%) एवं परजीवी रोग (1.48%) मृत्यु दर के मुख्य कारण थे ।

रोहिलखण्डी बकरियों के दुग्ध उत्पादन गुण

रोहिलखण्डी बकरियों में दुग्ध उत्पादन का अध्यन तीन विधियों से किया गया वीनिंग (पूर्ण अलगाव), थन पर थैला (मेमने अपनी मां के साथ रहे मगर दूध नही पी पाये) तथा परीक्षण दिवस (मेमनों को सप्ताह के किसी एक दिन हटाया गया)। दुग्ध उत्पादन (90 दिनों का) वीनिगं, थन पर थैला तथा परीक्षण-दिवस नामक विधियों में क्रमशः 59.29, 65.87 तथा 51.08 लीटर पाया गया। सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन प्रथम माह मे पाया गया। औसत प्रतिदिन दुग्ध-उत्पादन वीनिगं, थन पर थैला तथा परीक्षण दिवस के अंतर्गत क्रमशः 660, 732 तथा 605 मिली था । तीनों विधियों की सभी बकरियों को मिलाकर औसत दुग्ध-

चित्र 1 – रोहिलखण्डी बकरी अपने चार बच्चों के साथ

चित्र 2 – रोहिलखण्डी बकरी

चित्र 3 - दुधारू मादा बकरी

चित्र 4 - मेंमनों का समूह

उत्पादन (90 दिन) 57.91 लीटर तथा प्रतिदिन दुग्ध-उत्पादन 657 मिली पाया गया। अन्य नस्लों की तुलना में रोहिलखण्डी बकरियों का कम दुग्ध-उत्पादन दर्शाता है कि इन बकरियों का प्राकृतिक एवं कृत्रिम चयन मांस उत्पादन के लिए हुआ है। रोहिलखण्डी बकरियों के दूध मे वसा, ठोस बिना वसा (एस एन एफ), प्रोटीन तथा लैक्टोस क्रमशः 5.21, 7.87, 2.87 तथा 4.45 प्रतिशत पाये गये। दुग्ध उत्पादन पर मौसम, जन्म का प्रकार, ब्यातों की संख्या तथा मादा के शारीरिक भार का प्रभाव सार्थक पाया गया । वर्षा ऋतु में दुग्ध-उत्पादन जाड़े की तुलना में अधिक था (65.32 बनाम 57.91 लीटर)। रोहिलखण्डी बकरियों ने प्रथम ब्यात (45.73 ली) में द्वितीय एवं बाद के ब्यातों (66.76 ली) की तुलना में कम दुग्ध उत्पादन ($p<0.01$) किया। एक मेमने वाली बकरियों (51.37 ली) की तुलना मे दो या अधिक मेमनो वाली बकरियों (65.89 ली) ने अधिक दुग्ध-उत्पादन किया। ब्यांत के समय मादा बकरियों के शारीरिक भार का दुग्ध उत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव था।

रोहिलखण्डी बकरों/बकरियों के पुनरुत्पादन गुण

रोहिलखण्डी बकरों में प्रजनन के समय मादा को सूंघना एंव चाटना प्रमुख व्यवहार हैं। औसतन 30 मिनट के प्रजनन काल मे 6.78 बार शुक्राणु उत्सर्जन पाया गया। प्रजनन के समय नरों ने 1 मिनट से कम का समय मूत्र विसर्जन के लिए लिया। फ्लेहमैन प्रतिक्रिया के लिए व्यस्क नरों ने 0.62–0.64 मिनट का समय लिया जबकि 1 वर्ष से कम उम्र के नरों ने इससे अधिक समय लिया। व्यस्क नरों की तुलना मे कम उम्र के बकरों ने अधिक छद्म-चढाव प्रदर्शित किया ।

उत्तेजना स्कोर 1 वर्ष से अधिक आयु के व्यस्क नरों में 41.42 से 43.61 तक था जो कि छोटे नरों की तुलना में अधिक था । रोहिलखण्डी बकरों के वीर्य के भौतिक गुण सामान्यतः अन्य नस्लों के नरों के वीर्य के भौतिक गुणों के समान हैं । वीर्य का औसत आयतन 0.2–0.6 मिली (औसत 0.42 मिली) था । इनमें जीवित शुक्राणुओं की संख्या 80–93% तथा विक्रित शुक्राणुओं की संख्या 3.53% थी । प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम "रिफ्रैक्टरी" समय क्रमशः 0.19±0.02, 0.20±0.02, 0.22±0.03, 0.31±0.09 तथा 0.44±0.20 मिनट रहा था एवं यह इसमें वीर्य-उत्सर्जन की संख्या के साथ क्रमशः वृद्धि होती गयी। मादा रोहिलखण्डी बकरियों में प्रथम मद, प्रथम समागम, प्रथम ब्यांत एवं गर्भावस्था अवधि क्रमशः 289.76±15.66, 397.76±17.27, 543.17±20.59 तथा 149.7±0.52 दिन थी ।

चित्र 5 – रोहिलखण्डी बकरी का समूह

चित्र 6 – रोहिलखण्डी बकरी दाना खाते हुए

चित्र 7 – रोहिलखण्डी बकरी का समूह

रोहिलखण्डी बकरियों मे मद के दौरान पूँछ का हिलाना (87.5%) देखा गया । अन्य व्यवहारिक गुण जैसे कि आवाज निकालना (75%), नर के नजदीक जाना एवं छेड़ना (43.75%), बारम्बार मूत्र विसर्जन (37.5%) तथा नर को ढूढना (31.25%) भी मद के दौरान देखे गए। अन्य बकरी के ऊपर चढ़ना या उसको चढ़ाना सामान्यतः कम बकरियों में देखा गया।

रोहिलखण्डी बकरियों में एकल तथा जुड्वां मेमनों का प्रतिशत 57.89 तथा 42.11% था । रोहिलखण्डी बकरियों में बिना समक्रमण (सिन्क्रोनाईजेसन) के प्रथम प्रजनन के पश्चात गर्भ धारण दर 75 प्रतिशत रही। मद के समक्रमण एवं नर-प्रभाव के उपरान्त गर्भ धारण की दर क्रमशः 83.00 प्रतिशत तथा 66.66 प्रतिशत रही। इसके पश्चात बचे हुए मादा पशुओं ने द्वितीय प्रजनन पर गर्भ धारण कर लिया। विभिन्न वर्गों में शत प्रतिशत मादाओं ने गर्भधारण किया।

रोहिलखण्डी मादा बकरियों के रक्त में प्रोजेस्ट्रोन की मात्रा 3 से 9 माह के बीच प्रत्येक 15 दिन के अंतराल पर क्रमशः 0.22±0.02, 0.22±0.03, 0.18±0.02, 0.14±0.02, 0.22±0.06, 0.23±0.53, 0.31±0.05, 0.21±0.05, 0.26±0.05, 0.33±0.11, 0.39±0.07, 0.37±0.08, 0.39±0.06 तथा 0.44±0.98 नैनोग्राम/मिली रही। प्रोजेस्ट्रोन की मात्रा अपने न्यूनतम (बेसल) स्तर (1 नैनोग्राम/मिली) से कम रही। चालीस दिन की गर्भावस्था के दौरान औसत प्रोजेस्ट्रोन (सीरम) की मात्रा 4.65 से 9.16 नैनो ग्राम/मिली थी । कार्पस ल्यूटियम की सक्रियता के कारण रक्त प्रोजेस्ट्रोन की मात्रा न्यूनतम स्तर से बढ़ कर अपने अधिकतम स्तर पर पहुँच गयी ।

सिक्किम प्रदेश की स्थानीय बकरियों का गुण निर्धारण

एन के वर्मा
भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

बकरी पालन आजीविका के स्रोत के रूप में सदियों से छोटे व सीमांत किसानों द्वारा अपनाई गई एक परम्परा है। आमतौर पर बकरियाँ 15 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान पर एक अनुकूलित वातावरण में सहज रूप से रह सकती है। लेकिन ये कठोर परिस्थितियों में भी अपने आप को बनाए रखने की क्षमता रखती है। बकरियाँ पहाड़ी तथा चट्टानी इलाकों, जहाँ पर इनके लिए विविध प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं, में अधिक रहना पसंद करती हैं। सिक्किम की स्थल आकृति बकरी पालन के लिए बहुत अनुकूल हैं। सिक्किम की देशी बकरियों पर जानकारी प्राप्त करने के लिए इस प्रदेश के पूर्वी पश्चिमी व उत्तरी जिलों का दौरा किया गया और वहाँ की स्थानीय बकरियों के प्रारूपी व बायोमेट्रिक लक्षण के बारे में आँकड़े एकत्रित किए।

अध्ययन के दौरान बकरियों के कई झुंड देखे गए जिनमे काली, सफेद, भूरे व मिश्रित रंगो की बकरी पाई गई इनमें एक विशेष प्रकार की बकरी देखी गई, जिसमें सींग के आधार से थूथन तक सफेद रंग की धारियाँ चेहरे पर मौजूद थी, स्थानीय लोग इस प्रकार की बकरियों को सिंघारी के नाम से पुकारते हैं। चेहरे पर सफेद धारी, काले, भूरे और मिश्रित रंगो की बकरियों में भी देखी गई। सिक्किम भारत के सबसे छोटे राज्यों में से एक है जो पूर्वी हिमालय पर्वत में स्थित है। यह भूटान, नेपाल व चीन से घिरा हुआ प्रदेश है। सिंघारी हिमालय क्षेत्र और सिक्किम में पाई जाने वाली ठेठ देशी नस्ल की बकरी है। वैसे तो ये बकरी सिक्किम के चारों जिलों में पाई जाती है, लेकिन पश्चिम जिले में इसकी संख्या अधिक देखी गई है।

उपयोगिता

अतीत में बकरियाँ दोहरे उद्देश्य यानी मांस व दूध के लिए पाली जातीं थीं। लेकिन प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ–साथ बकरियों की खाल, हाड़ भी विभिन्न वाणिज्यिक उत्पादों के लिए महत्वपूर्ण कच्चा माल बन गया है। इसकी मिगने खाद के रूप में बहुत उपयोगी होती हैं। बकरी का दूध बेहद पौष्टिक व औषधीय गुणों वाला उत्पाद है जो की वसा के छोटे ग्लोब्यूल के कारण जल्दी पच जाता है। समय के साथ–साथ गाय व भैंस के दूध की अधिक व आसान उपलब्धता होने के कारण बकरी के दूध का प्रयोग कम हो गया, लेकिन बकरे का माँस काफी हद तक लोगों द्वारा पसंद किया जाता है। इसके उच्च बाजारी मूल्य के कारण लोगों ने बकरी को माँस के लिए पालना शुरू कर दिया। भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में लोग दूध के लिए बकरी पालना पसंद करते हैं। परंतु भारत के दक्षिण व पूर्वोत्तर क्षेत्र में बकरियों को केवल माँस के लिए पाला जाता है। सिक्किम में बकरी पालन गरीब व सीमांत किसानों के लिए आजीविका से जुड़ा एक लोकप्रिय व पारंपरिक व्यवसाय है। बाजार में बकरी माँस की कीमत 250-300 रु. लेकिन त्योहारों के मौसम में मास का मूल्य अधिक हो जाता है।

बाह्य लक्षण

सिंघारी नस्ल की बकरी काले, भूरे, हल्के भूरे रंगों में पाई जाती है। चेहरे पर सफेद धारी इनकी विशेष पहचान है। इनकी टाँगे पतली होती हैं। जिनमें सामने की तरफ काले व भूरे रंग की बारीक धारी होती हैं। इनके कान अर्ध लटकने हैं तथा जिसके किनारे सफेद व काले रंग

के होते हैं। कमर पर रीढ़ की हड्डी के साथ–साथ काले रंग की मोटी रेखा होती है। पेट आमतौर पर सफेद रंग का होता है। दाड़ी नर व मादा दोनों में देखी गई है। कुछ जानवरों में शरीर पर बालों की अधिकता पाई जाती है। आँखें उज्जवल व छोटी होती हैं। सिर की लंबाई मध्यम होती है। प्रजनन के लिए पाले गये बकरों के गर्दन पर काले रंग का छल्ला होता है।

शारीरिक माप

तीन माह की मादा बकरियों का शारीरिक माप व वजन किया गया। इनकी ऊँचाई 39.33, लंबाई 43.14, छाती की परिधि 44.71, पेट की परिधि 45.43, चेहरे की लम्बाई 10.71, सींगों की लम्बाई 3.29 कान की लम्बाई 11.29, पुंछ की लम्बाई 9.86 सेंटीमीटर है व वजन 8.86 किलोग्राम है। इसी उम्र के नर बच्चों का शारीरिक माप व वजन क्रमशः 38.09, 39.18, 42.45, 45.18, 11.09, 2.64, 9.82, 7.73 सेंटीमीटर व 8.46 किलोग्राम है। नर (59) और मादा (68) वयस्क सिंघरी बकरियों के शरीर का माप और उनके शरीर का वजन भी किया गया। पश्चिम जिले की बकरियों के शरीर का माप के विश्लेषण से पता चला की नर बकरियों की औसत ऊँचाई 57.78 सेंटीमीटर, लंबाई 62.97, सीने की परिधि 72.25, पेट की परिधि 76.56, चेहरे की लंबाई 13.21 व पूंछ की लंबाई 12.26 सेंटीमीटर है। इसी प्रकार मादा बकरियों में ये माप क्रमशः 54.71, 61.44, 75, 71.31, 15.98, 9.53, 13.05 सेंटीमीटर है। (सारणी 1 व 2) व्यसक नर और मादा बकरियों का वजन क्रमशः 32 व 26.68 किलोग्राम है।

उम्र	लिंग	ऊँचाई	लम्बाई	सीने की परिधि	पेट की परिधि	चेहरे की लंबाई	सींग की लंबाई	कान की लंबाई	पूंछ की लंबाई
3 माह	मादा (8)	39.33±1.37	43.14 ± 1.62	44.71 ± 1.52	45.43 ± 2.18	10.71 ± 0.42	3.29 ± 1.32	9.86 ± 0.34	8.86 ± 0.74
	नर (13)	38.09±2.46	39.18 ± 2.27	42.45 ± 2.19	45.18 ± 2.82	11.09 ± 75	2.64 ± 0.64	9.82 ± 0.43	7.73 ± 0.92
6 माह	मादा (14)	45.21±1.47	49.86 ± 1.11	51.50 ± 1.45	53.21 ± 2.15	13.29 ± 0.45	4.93 ± 0.58	12.00 ± 0.28	9.64 ± 0.23
	नर (4)	42.00±2.35	46.75 ± 1.84	51.75 ± 2.75	54.50 ± 5.89	14.00 ± 0.58	5.75 ± 1.11	11.75 ± 0.85	8.25 ± 0.85
12 माह	मादा (17)	50.47±0.98	53.47 ± 1.24	56.47 ± 1.15	60.47 ± 1.80	14.53 ± 0.29	5.53 ± 0.40	12.41 ± 0.54	10.29 ± 0.41
	नर (11)	46.47±1.83	49.64 ± 1.55	62.18 ± 2.68	67.00 ± 3.14	15.45 ± 0.62	8.73 ± 1.02	10.91 ± 0.55	10.27 ± 0.66
वयस्क >15 माह	मादा (59)	54.71±0.73	61.44 ± 0.69	66.75 ± 0.66	71.31 ± 1.16	15.98 ± 0.17	9.53 ± 0.39	13.05 ± 0.31	11.15 ± 0.20
	नर (68)	57.78±0.90	62.97 ± 0.90	72.25 ± 0.77	76.56 ± 1.11	17.50 ± 0.22	15.21 ± 0.51	13.21 ± 0.19	12.26 ± 0.23

लिंग/उम्र	3 माह	6 माह	12 माह	वयस्क
मादा	8.86 ± 0.74 (8)	13.29 ± 0.78 (14)	16.29 ± 0.67 (17)	26.68 ± 0.71 (59)
नर	8.46 ± 0.92 (13)	12.25 ± 1.25 (4)	19.09 ± 1.70 (11)	32.00 ± 0.90 (68)

प्रबंधन: प्राप्त जानकारी के अनुसार, सिक्किम के छोटे व सीमांत किसानों द्वारा ये बकरियाँ अर्धव्यापाक प्रबंधन प्रणाली द्वारा पाली जाती हैं बकरियों को सुबह पहाड़ी जंगलों में चरने के लिए भेज दिया जाता है व शाम के करीब 6 बजे तक वापिस लाया जाता है।

बकरी आवास

रात के समय बकरियों को उनके लिए अस्थाई रूप से बनाए गये घरों में रखा जाता है। इनके घर बाँस की छड़ें व लकड़ी के फटटों से बनाया जाता है। बकरी घरों में बिजली व पानी की व्यवस्था नही होती तथा फर्श जमीन से करीब 2-3 फुट की ऊँचाई पर लकड़ी के फट्टों से बनाया जाता है। इस तरह की व्यवस्था घर में वायु संचालन व साफ सफाई रखने में सहायता करती है। कुछ घरों में बाहरी दीवार के साथ–साथ घास या दाना डालने के लिए मैंजर बनाए जाते है। बकरी घर में आने जाने के लिए एक छोटा दरवाजा बना दिया जाता है।

खान–पान

बकरी जंगल में उपलब्ध स्थानीय वनस्पति पर निर्भर रहती है। घरों में बकरियों को कुचला मक्का, पेड़ के पत्ते, स्थानीय घास आदि खिलाया जाता है। बकरियाँ जंगलों में कठिन पहाड़ी ढलानो पर उगी घास व पेड़ के पत्तों को आसानी से खा सकती हैं। पिछले कई वर्षों से जंगलों की कटाई व मानवीय हस्ताक्षेप के कारण चरागाह बहुत ही कम हो गए हैं जिससे जानवरों की चराई पर गहरा असर पड़ा है। जंगल विभाग द्वारा जानवरों की चराई पर भी प्रतिबंध लगाया गया है। एक कार्यक्रम 'स्टेट ग्रीन मिशन' राज्य सरकार द्वारा शुरू किया गया था जिसके अंतर्गत बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण व वन संरक्षण के कारण, हरी बायोमास में वृद्धि हुई है। जानवरों की चराई को इन कारण से इन क्षेत्रों में निषेद किया गया। इन सब प्रतिबंधों के बावजूद राज्य की हरियाली पशुधन के निर्वाह के लिए पर्याप्त है।

उत्पादन व प्रजनन

क्योंकि सिंघारी बकरियाँ अधिकतम माँस के लिए पाली जाती हैं इनकी ल्योटी कम विकसित व छोटे आकार की होती है। इनके स्तन छोटे व शंकु आकार के होते हैं। ये बकरी दिन में 200-500 मिली लीटर दूध दे सकती है। लेकिन यहाँ बकरी का दूध निकालने की परंपरा नही है बल्कि ये दूध केवल बच्चों के लिए छोड़ दिया जाता है। सिंघारी बकरी 1.6 माह की आयु में बच्चा देती है। इनके बकरे 9-12 महीने के आयु में परिपक्क हो कर प्रजनन के लिए सक्षम हो जाते हैं 1 अधिकतर नर बच्चों को 3 महीने

चित्र 1 – सिक्किम की स्थानीय बकरी

चित्र 2 – सिक्किम की स्थानीय बकरी का वितरण

चित्र 3 से 6 – बकरी आवास के प्रकार

की आयु में ही बधिया कर दिया जाता हे। एक साथ दो बच्चों को जन्म देना इन बकरियों में आम बात है। प्रजनन प्राकृतिक गर्भाधान के माध्यम से होता है। सीमावर्ती क्षेत्रों में ब्लैक बंगाल के बकरे प्रजनन के लिए प्रयोग किए जाते हैं। राज्य पशु विभाग द्वारा दिए गए जमनापारी बकरे भी स्थानीय बकरी प्रजनन के लिए इस्तेमाल किए गए। किसी ठोस प्रजनन नीति के अभाव के कारण सिंघारी नस्ल का आनुवंशिकी कटाव हो रहा है। सिंघारी नस्ल को बढ़ाने के लिए केवल सिंघारी नस्ल के बकरे ही इस्तेमाल किए जाने चाहिए।

सिक्किम सरकार को सिंघारी नस्ल की बकरियों को बचाने तथा उनकी संख्या वृद्धि करने के लिए विशेष कदम उठाने चाहिए। सिंघारी नस्ल का पंजीकरण कराकर इस नस्ल को विशेष दर्जा दिया जा सकता है।

बृज क्षेत्र के लिये बकरी की नस्लें और उनकी विशेषाताएं

साकेत भूषण

भाकृअनुप–केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, फरह, मथुरा (उ.प्र.)

बृज क्षेत्र पौराणिक काल से देश का बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र के उत्तर दिशा में हरियाणा प्रांत के पलवल से, दक्षिण में मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले तक तथा पूरब दिशा में राजस्थान के भरतपुर से, पश्चिम दिशा में उत्तरप्रदेश के मथुरा, आगरा, अलीगढ, हाथरस, इटावा, मेंनपुरी, एटा तथा राजस्थान के धोलपुर जिले आते है। बृज क्षेत्र की जलवायु परिस्थितयॉ काफी विषम है। जाड़ों मे जनवरी माह में तापमान 2-3 डिग्री सेंटीग्रेड के नीचे तक आ जाता है तथा गर्मियों में तापमान 45 डिग्री सेंटीग्रेड के ऊपर तक पहुँच जाता है। इस क्षेत्र में वर्षा सामान्य से कम ही होती है तथा वर्षा ऋतु में नमी 80% से अधिक हो जाती है। छोटी नदियों के अलावा इस क्षेत्र मे चम्बल तथा यमुना जैसी बड़ी नदियाँ भी है जिनके खादर बकरियों के चरागाहों के रूप में काम में आते है क्योंकि इन खादरों मे चारे के अलावा जंगली झाड़ियाँ एवं पेड़ों की भरमार रहती है जिसकी पत्तियाँ बकरियाँ बड़े चाव से खाती है। इस क्षेत्र की जलवायु के हिसाब से वैज्ञानिक बृजक्षेत्र में मुख्य रूप से बकरी की चार नस्लों को पालने की संस्तुति किसानों के लिये करते है। बकरी की ये नस्लें देश में दूध तथा माँस उत्पादन की दृष्टि से देश की महत्वपूर्ण बकरीयों के नस्लों में जानी जाती है। ये नस्लें हैः जमुनापारी, बरबरी, जखराना एवं सिरोही। इन नस्लों के उद्‌गम स्थान तथा विशेषाताएं मुख्य रूप से शारीरिक पहचान लक्षण, दुग्ध तथा माँस उत्पादन की क्षमता, जनन क्षमता आदि की जानकारी निम्न है।

जमुनापारी

जमुनापारी नस्ल की बकरी दुग्ध उत्पादन के लिये प्रसिद्व है। इसका उद्‌गम स्थान उत्तरप्रदेश के इटावा जिले का चकरनगर क्षेत्र माना जाता है। इटावा जिले के अलावा इस नस्ल की बकरी मध्यप्रदेश के भिंड, मुरैना तथा दतिया जिलों के चम्बल तथा यमुना नदी से लगे गाँवों में बहुतायत पाई जाती है। देखने में यह बकरी सुंदर तथा आकर्षक लगती है। इस नस्ल का रंग सफेद, शरीर बड़ा, नाक तोते के चोंच के आकार की, थन तथा अयन विकसित, कान काफी लम्बे तथा नीचे की ओर लटके हुए होते है। व्यस्क मादा बकरी के पूँछ से नीचे दोनों पैरों के ऊपर पीछे लम्बे बाल भी हो जाते है। व्यस्क नर के माथे तथा नाक के ऊपर बालों का गुच्छा बन जाता है जो व्यस्क नर को बहुत आकर्षक बना देता है। व्यस्क मादा का वजन 40 से 50 कि. ग्रा. तथा नर का वजन 60 से 70 कि. ग्रा. तक हो जाता है। जन्म के समय नर तथा मादा बच्चो का वजन क्रमशः 2.0 से 4.0 कि. ग्रा. तक तथा मादा बच्चों का वजन 1.5 से 3.0 कि. ग्रा. तक होता है। जन्म के समय नर तथा मादा बच्चों का औसत वजन 2.8 कि. ग्रा. तक पाया गया है। तीन, छः, नौ तथा बारह माह में नर तथा मादा बच्चों का औसत वजन क्रमशः 3.28, 11.23, 15.78, 21.88 तथा 27.17 कि. ग्रा. तक पाया गया। डेढ़ साल की उम्र में मादा तथा दो साल की उम्र में नर प्रजनन के योग्य हो जाता है। इसका 150 दिन में ओसत दूध 110 ली. तक पाया गया। अच्छी बकरी को यदि पर्याप्त चारा दाना दिया जाए तो पूर्ण दुग्ध काल में बकरी से एक दिन में दुग्ध 3.0 ली. तक लिया जा सकता

चित्र 1 – जमुनापारी नर

है। जमुनापारी नस्ल में बहु–बच्चा जनन क्षमता कम होती है। इसमें बहु–बच्चा जनन क्षमता 30% तक पाई गई है अर्थात 2 य 3 बच्चे देने की क्षमता अधिकतम केवल झुंड की 30% बकरियों तक ही पाई गई है। जनन मुख्य रूप से वर्ष में दो बार फरवरी–मार्च तथा सितम्बर–अक्टूबर में होता है। डेढ़ साल में बकरियाँ दो बार तक बच्चे दे देती है।

बरबरी

यह छोटे आकार की नस्ल है। इसकी शारीरिक बनावट छोटे हिरन की तरह होती है। शरीर का रंग बादामी–सफेद मिला हुआ चित्तीादार होता है। कान छोटे तथा खड़े आकार में रहते हैं। शरीर के अनुसार थन छोटे तथा अयन विकसित होता है। इस नस्ल की बकरियां मुख्य रूप से मथुरा, आगरा, ऐटा, हाथरस, अलीगढ़, कानपुर जिलों में प्रमुखता से पाई जाती हैं। मादा का वजन वयस्क होने पर 30 से 35 कि.ग्रा. तक वयस्क नर का वजन 40 से 45 कि.ग्रा. तक पाया जाता है। जन्म के समय नर बच्चों का वजन 1.8 कि.ग्रा. से 2.8 कि.ग्रा. तक पाया गया है तथा मादा बच्चों का जन्म के समय वजन 1.5 कि.ग्रा. से 2.5 कि.ग्रा तक पाया गया है। बारह माह की उम्र में नर बच्चों का वजन 18 से 22 कि.ग्रा. तक तथा मादा बच्चों का वजन 14 से 20 कि.ग्रा. तक पाया गया है। नर तथा मादा बच्चों का जन्म, तीन, छः, नौ तथा बारह माह में औसत वजन क्रमशः 1.82, 8.39, 11.92,17.01 तथा 20.97 कि. ग्रा. पाया गया। एक साल की उम्र में मादा

चित्र 2 – बरबरी नर

तथा डेढ़ साल की उम्र तक नर प्रजनन के योग्य हो जाता है। बकरी एक साल में दो बार तक बच्चों को जन्म देती है। बरबरी नस्ल में बहु जनन क्षमता अर्थात दो या दो से अधिक बच्चे एक ब्याँत में देने की क्षमता काफी अधिक है। इस नस्ल में बहुजनन क्षमता 50 प्रतिशत से अधिक भी पाई जाती है। बरबरी अपेक्षाकृत कम दूध देने वाली नस्ल है। बरबरी बकरी 140 दिन में 55 से 60 लीटर तक ही दूध देती पाई गई है। शहरों तथा कस्बों में रहने वाले लोग भी इस नस्ल की1–2 बकरी घर में रखकर पाल लेते हैं। अतः इस नस्ल् की बकरियों के लिये चरागाह उपलब्ध न होने पर बाड़ो में रखकर भी पाला जा सकता है। अच्छी बकरी को हरा चारा तथा दाना पर्याप्त मात्रा में देने पर दुग्धं काल में एक दिन में 2.0 लीटर तक दूध प्राप्त किया गया है। उच्च जनन क्षमता के कारण यह नस्ल मांस उत्पादन के लिये अच्छी मानी गयी है तथा परिवार के लिये दूध भी प्रदान करती है ।

जखराना

यह बड़े आकार की बकरी दुग्ध उत्पादन के लिये बहुत प्रसिद्व है। इस नस्ल का उद्गम स्थान राजस्थान के अलवर जिले का जखराना ग्राम माना जाता है। जखराना ग्राम तथा इसके आस–पास के क्षेत्रों में जखराना नस्ल की बकरियां बहुतायत में पाई जाती है। यह नस्ल प्रमुख रूप से काले रंग की होती है तथा इसके जबड़े तथा कानों पर सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इस नस्ल का दुग्ध उत्पादन जमुनापारी नस्ल से भी अधिक पाया गया है। इस नस्ल की बकरियों के कान लम्बे तथा नीचे की ओर लटके रहते हैं। इस नस्ल की बकरियों के थन तथा अयन काफी बड़े पाये जाते है। ब्यांने के बाद बकरियों के थन तथा अयन दूध के कारण बहुत बड़े आकार के हो जाते हैं। इस नस्ल की बकरियां वयस्क होने पर 35 से 45 किग्रा. वजन तक की हो जाती है तथा वयस्क नर का वजन 60 से 80 कि.ग्रा. तक हो जाता है। मादा वयस्क होने पर डेढ़ साल में दो बार बच्चों को जन्म देती है। डेढ़ साल की उम्र में मादा तथा दो साल की उम्र में नर प्रजनन के योग्य हो जाता है। दुग्ध उत्पादन की तरह

चित्र 3 – जखराना मादा

इस नस्ल की प्रजनन क्षमता भी काफी अधिक पाई गई है। इस नस्ल की बकरियों में बहु बच्चा जनन क्षमता 40 से 45 प्रतिशत तक पाई गई है। तीसरे से छठवें ब्यांत तक बहुजनन क्षमता पहले दूसरे ब्यॉंत से अधिक होती है। जन्म के समय पर नर बच्चों का वजन 2.5 से 4.0 कि.ग्रा. तक पाया गया है तथा मादा बच्चों का वजन 2.0 से 3.0 कि.ग्रा. तक होता है। बारह माह में नर बच्चों का वजन 22 से 30 कि.ग्रा. तक तथा मादा बच्चों का वजन 18 से 25 कि.ग्रा. तक हो जाता है। नर तथा मादा बच्चों का जन्म, तीन, छः, नौ तथा बारह माह में औसत वजन क्रमशः 2.76,10.00, 13.55,17.90 तथा 23.55 कि. ग्रा. तक पाया गया। बकरियों का 150 दिन का ओसत दुग्ध् उत्पादन 193.77 लीटर तक पाया गया है।अच्छी बकरी अपने दुग्धं काल में एक दिन में 3.0 से 3.5 लीटर दूध तक देती देखी गई है। बृज क्षेत्र में भी यह बकरी अब पाली जाने लगी है।

सिरोही

सिरोही एक बड़े आकार वाली नस्ल है। इस नस्ल का उद्‌गम स्थान राजस्थान का सिरोही जिला माना जाता है। सिरोही जिले के अलावा यह नस्ल राजस्थान के अजमेर, भीलवाड़ा, नागौर एवं टोंक जिले में भी पाई जाती है। इसके शरीर का रंग बादामी अथवा गहरे बादामी रंग पर भूरे धब्बे भी बहुत बकरियों में पाये जाते हैं। कान चोड़े, छोटे तथा पत्तीनुमा नीचे की ओर लटके हुए होते हैं। वयस्क मादा का वजन 30 कि.ग्रा. से 40 कि.ग्रा. तक हो जाता है तथा वयस्क नर का वजन 60 से 70 कि.ग्रा. तक हो जाता है। जन्म के समय नर बच्चों का वजन 2.5 से 3.5 कि.ग्रा. तक होता है तथा मादा बच्चों का वजन 2.0 कि.ग्रा. से 3.0 कि.ग्रा. तक पाया गया है। बारह माह में नर बच्चो् का वजन 22 से 27 कि.ग्रा. तक तथा मादा बच्चों का वजन 18 से 23 कि.ग्रा. तक हो जाता है। नर तथा मादा बच्चों का जन्म, तीन, छः, नौ तथा बारह माह में औसत वजन क्रमशः 3.12,12.06, 18.11,21.85 तथा 26.49 कि. ग्रा. तक पाया गया। इस नस्ल की बकरियों में बहु बच्चा जनन क्षमता 20 प्रतिशत तक पाई गई है। यह नस्ल दो साल में दो बार तक बच्चे आसानी से दे देती है। डेढ़ साल की उम्र की मादा तथा दो साल की उम्र का नर प्रजनन के योग्य हो जाता है। दुग्ध उत्पादन 150 दिनों में 100-110 लीटर तक पाया गया है। अच्छी मात्रा में चारा दाना देने पर इस नस्ल के जानवरों में अच्छी बढ़वार पाई गई है तथा इनका शरीर काफी ऊँचा तथा गठीला होता है। बृज क्षेत्र में सिरोही नस्लं की बकरी को भी आसानी से पाला जा सकता है। यह नस्ल दुग्ध एवं मांस दोनों उत्पादन करने में जखराना तथा जमुनापारी से कम क्षमता रखती है परन्तु अन्य दूसरी नस्लों से इसमें दुग्ध एवं मांस दोनों का उत्पादन ज्यादा पाया गया है।

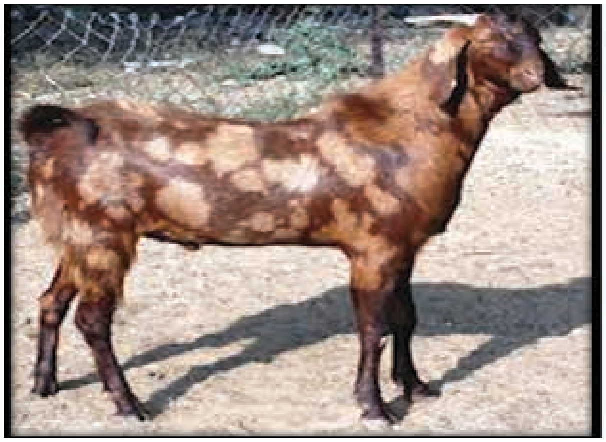

चित्र 4 – सिरोही नर

क्लोनिंग द्वारा पशु जैव–विविधता संरक्षण

बीरबल सिंह, गोरख मल, मनीषी मुकेश[1], मोनिका सोढ़ी[1] एवं सुरेश सिंगला[2]
भाकृअनुप–भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र पालमपुर (हि.प्र.)

"यद्यपि भारत विश्व का सबसे बडा दुग्ध उत्पादक देश है, तब भी हमारी देशी स्थानीय पशु विविधता में न केवल चिंताजनक गिरावट आयी है,बल्कि कुछ शुद्ध देशी नस्लें या तो विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्तप्राय हैं। विदेशी या संकर नस्ल के पशुओं का विद्यमान प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुकूलन न हो पाना व भयावह होता जलवायु असुंतलन पशुधन उत्पादन को और कुप्रभावित करेगा। प्रजनन प्रौद्योगिकी (पशु क्लोनिंग) को व्यावहारिक बना कर हम अपनी उत्कृष्ट पशु जैवसंपदा को संरक्षित कर इनकी संख्या में वृद्धि कर सकते हैं...."

प्राणी विज्ञान, विशेषतः जंतु विज्ञान में क्लोनिंग (अर्थात क्लोन निर्माण) एक महत्वपूर्ण तकनीक है जिसके विभिन्न अभिप्राय, उपयोग और विशेषताएं हैं। मूलतः 1952 में मेंढकों पर परीक्षणों से आरंभ हुई पशु–क्लोनिंग अथवा प्रजनन–क्लोनिंग तब बहुचर्चित हुई जब 1997 में डॉ. इयान विल्मट और उसकी वैज्ञानिक टीम ने व्यस्क काय–कोशिका से भेड़ का एक क्लोन (डॉली) उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। वास्तव में यह एक अभूतपूर्व और असाधारण उपलब्धि थी, जिसने जैवचिकित्सा, स्टेम कोशिका तकनीक एवम प्रजनन–विज्ञान में असीम सम्भावनाओं का सृजन किया है। वर्तमान स्टेम कोशिका प्रौद्योगिकी में जीनोम री–प्रोग्रामिंग के मूल सिद्धान्तों के विकास और सफलतम उपयोग का श्रेय मुख्यतः प्रजनन–क्लोनिंग की सफलता को ही जाता है।

क्या है क्लोनिंग?

मूलतः क्लोन शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द "klon" से हुई है, जिसका अभिप्रायः है– "twig"। पशु क्लोनिंग का अभिप्रायः अलैंगिक प्रजनन द्वारा उत्पन्न ऐसी संतान से है जो किसी जीव की शत–प्रतिशत अनुवांशिक प्रति हो। पेड़–पौधों और निम्नवर्गीय जीवों, जैसे कुछ ऐनालिडा, कृमि (लिवर फ्ल्यूक, टेप वर्म) व स्टारफिश इत्यादि में अलैंगिक प्रजनन की यह एक सामान्य प्रक्रिया है, जिस में शरीर का खण्डित अंश या ऊत्तक एक पूर्णतः वयस्क प्राणी के रूप में विकसित हो जाता है। इसके विपरीत उच्च प्राणी वर्ग, जैसे स्तनपायी जीव केवल लैंगिक प्रजनन द्वारा वंश–वृद्धि करते हैं। क्लोनिंग की जिस विधि से डॉली का जन्म हुआ था, वह प्रजनन–क्लोनिंग कहलाई जाती है (चित्र 1)। इस प्रकार उत्पन्न संतान (क्लोन) की दो या अधिक माताएँ हो सकती हैं, लेकिन पिता का कोई आनुवंशिक योगदान नहीं होता है।

स्थानीय देशी पशु–संसाधनों व जैव–विविधता का क्लोनिंग द्वारा संरक्षण

किसी पशु प्रजाति में उस पशु–नस्ल की बहुल भिन्नता पशु जैव–संपदा की विविधता को प्रतिबिम्बित करती हैं। किसी देश की आर्थिक उन्नति में जैव संपदा विविधता का अति विशिष्ट और अविस्मरणीय योगदान होता है। भारत विश्व की वृहद् पशु–जैवविविधता का प्राकृतिक केंद्र है। पालतू पशुओं की लगभग 40 प्रजातियों की वैज्ञानिक पहचान की जा चुकी है जो कि और अधिक हो सकती है। 2007 की पशु गणना के अनुसार, देश में 530 लाख पशु और 640 लाख कुक्कुट थे।

अधिक उत्पादन वाली विदेशी या संकर पशु नस्लों को बढ़ावा देने से एवं प्रजनन के लिए विदेशी सांड़ों का

1. भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)
2. पशु जैवप्रौद्योगिकी केंद्र, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

आयात करने से स्थानीय पशु नस्लें विलुप्तप्राय हो चुकी हैं। देशी पशु नस्लों की उपेक्षा निश्चय ही चिंता का विषय है। अनियंत्रित होता पारिस्थितिकी असुंतलन, विदेशी या संकर नस्ल के पशुओं का विद्यमान प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुकूलन न हो पाना भविष्य में हमें दुग्ध आयात करने पर विवश कर सकता है। विदेशी या संकर गायों के दूध की तुलना में स्थानीय भारतीय गायों के दूध की चमत्कारिक गुणवत्ता का वेद–शास्त्रों में भी उल्लेख है। ऊँट के दूध का औषधीय महत्त्व सर्वविदित है।

विदेशी या संकर गायों के दुग्ध उत्पादन को बढ़ा चढ़ा कर आंकना ही इनकी अकेली 'मेरिट' नहीं मानी जानी चाहिए क्योंकि उच्च कीमत, इन पर आने वाले सामान्य चिकित्सा व स्वास्थ्य रख रखाव का खर्चा, प्रजनन व् चारा प्रबंधन की लागत, पेयजल आवश्यकता, विषम परिस्थितियों में न रह पाना भी इनको आकने की प्रकिया में सम्मिलित होना चाहिए। कई स्थानीय पशु प्रजातियाँ जैसे गायें (थारपारकर, लाल सिन्धी, साहिवाल, गिर, कांकरेज, वेचूर), भैंस (मुर्राह, नीली रावी, मेहसाना, भदावरी, चिल्का) ऊँट, स्पीती अश्व व् गधे, गद्दी और पश्मीना बकरियां, भेड़, याक और मिथुन सदियों से दूध, मांस, रेशा, खाद और यातायात के उपयोग में लाये जाते हैं। इनमें कुछ पशु लगभग "जीरो मेंटेनेंस" पर भी अच्छा दूध और मांस देते है। परजीवी और सूक्ष्मजीव संक्रमणों के प्रति देशी पशुओं में विशिष्ट प्राकृतिक रोग–प्रतिरोधकता

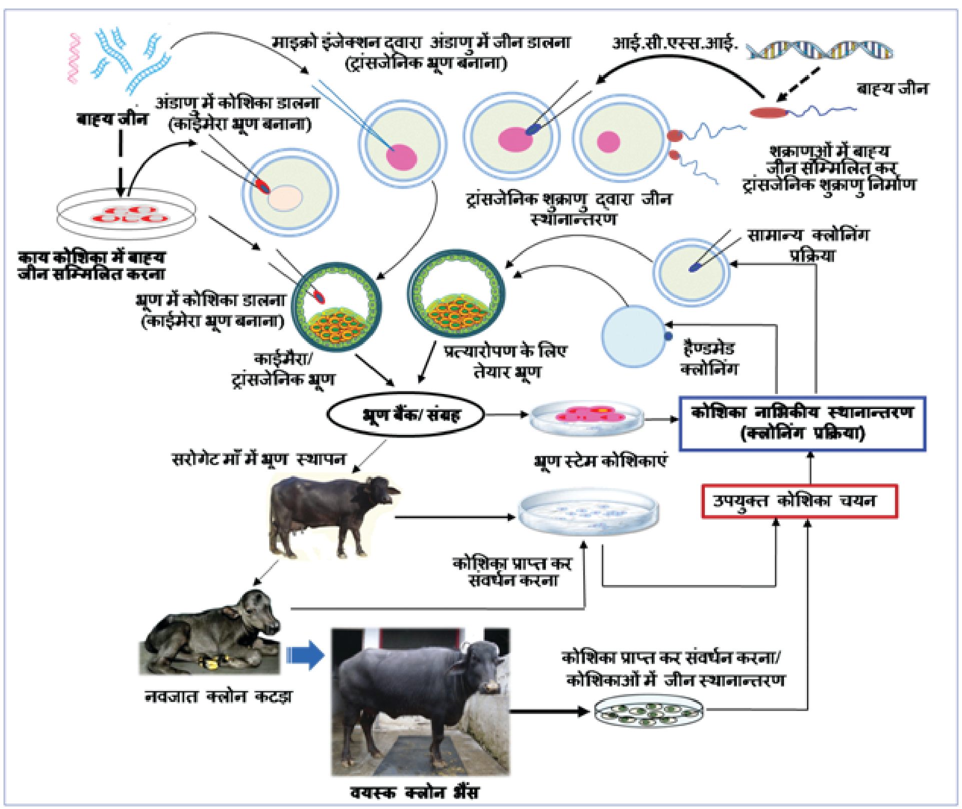

चित्र 1 – पशु क्लोनिंग एवं ट्रांसजेनिक क्लोन पशु बनाने का संकेतिक व संक्षिप्त विवरण। जिस पशु का क्लोन बनाना हो उसकी काय कोशिका प्राप्त कर प्रयोगशाला में संवर्धन किया जाता है। क्रिया के अगले चरण में सम–प्रजातीय मादा से अंडाणु प्राप्त कर, अंडाणुओं का परखनली वयसकीकरण और जैवद्रव्य (नाभिक) पृथक कर "साईटोप्लास्ट" तैयार किये जाते हैं। साईटोप्लास्ट व काय कोशिका का विशेष विद्युतीय संलग्न तथा रासायनिक क्रियाशीलता करवा कर क्लोन भ्रूण बनाए जाते हैं। इन भ्रूणों को विशेष रूप से तैयार सरोगेट मादा में ट्रान्सफर कर गर्भधारण करवाया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न संतान उस पशु का क्लोन होता है जिस से काय कोशिका प्राप्त की होती है। अतिरिक्त भ्रूणों को तरल नाईट्रोजन में हिमीकृत कर वर्षो तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसी प्रकार ट्रांसजेनिक कोशिका का निर्माण कर क्लोन ट्रांसजेनिक या काईमैरा भ्रूण और पशु तैयार किये जाते हैं।

है। स्पीती अश्व व गधे तथा लद्दाख में पाए जाने वाले ऊँट कम ऑक्सीजन वातावरण में भी काम कर सकते है।

भारत में पाई जाने वाली भैंसें (मुर्राह, नीली रावी, जाफरावादी) जो कि अधिक वसा और प्रोटीनयुक्त दुग्ध–स्राव के लिए विश्वविख्यात हैं, ट्रांसजेनिक औषिधीय प्रोटीन–उत्पादन के लिए अति उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। उल्लेखनीय है कि ट्रांसजेनिक पशुओं से प्राप्त उत्पाद सामान्य पशुओं की तुलना में विशिष्ट गुणवत्तायुक्त और उपयोगी हो सकते हैं। यह भी ज्ञात किया गया है कि क्लोन पशुओं में प्रजनन क्षमता व उत्पन्न संतान सामान्य पशुओं के सामान ही होती हैं। क्लोन पशुओं का माँस और दूध सामान्य पशुओं के समतुल्य होता है तथा इसके उपयोग से मानव स्वास्थ्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता हैं।

क्लोनिंग जैसी प्रजनन–प्रौद्योगिकी को व्यवहारिक बना कर हम अपनी उत्कृष्ट पशु जैव संपदा को पुनः संरक्षित कर इनकी संख्या वृद्धि कर सकते हैं। साथ ही वैज्ञानिक चयन और अनुवांशिक अभियांत्रिकी द्वारा इन प्रजातियों को और अच्छा बना सकते हैं जो सदियों से प्राकृतिक रूप से स्थानीय पारिस्थितियों, भौगोलिक विषमताओं और असामान्य खाद्य स्रोतों पर जीवित रहने के लिए ढले हुए हैं। कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं कूटनीतिक और वैज्ञानिक स्तर पर अपनी पशु विविधता संरक्षण में प्रयासरत हैं।

क्लोनिंग की उपलब्धियाँ एवं जटिलताएं

गत डेढ़ दशक में विश्व वैज्ञानिक समुदाय ने क्लोनिंग प्रक्रिया को विकसित कर असंख्य आश्चर्यजनक सफलताएं प्राप्त की हैं। अब तक लगभग 25 स्तनपायी प्रयोगात्मक प्रजातियों (जैसे चूहे, बन्दर, खरगोश), पशुधन (जैसे भेड़, बकरी, गाय, भैंस, खच्चर, घोडा, ऊँट) व वन्य स्तनपायी जानवरों के स्वस्थ जीवित क्लोन बनाये जा चुके हैं। खच्चर का क्लोन एक उल्लेखनीय उपलब्धि है, क्योंकि प्राकृतिक रूप से खच्चर एक बाँझ पशु है। विदेशों में अपने प्रिय पालतू जानवरों के क्लोन बनवाना काफी प्रचलित है।

जापान की 'वाकायामा इंडस्ट्री फाऊंडेशन' के वैज्ञानिक प्रोफेस्सर होशिनो व उनकी टीम ने समान्य रूप से –80° सेन्टीग्रेड पर दस वर्षो तक हिमीकृत, तत्पश्चात इन्हीं अंगों को –196° सेन्टीग्रेड पर तीन वर्षो तक रखने के उपरान्त उक्त अंगों से प्राप्त कोशिकाओं से सांड़ के चार क्लोन तैयार करने में सफलता अर्जित की। 'यासुफुकू' नामक यह सांड उच्च गुणवत्ता के माँस–उत्पादन के लिए प्रख्यात 'वाग्यु' गौ–प्रजाति का अति उपयोगी नर था, जिसकी 1993 में मृत्यु हो गयी थी। राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान संस्थान करनाल ने सामान्य त्वचा कोशिका व स्टेम कोशिकाओं से मुर्राह भैंस के क्लोन, और चेगु प्रजाति की पश्मीना बकरी का क्लोन तैयार कर भारत को उन देशों की श्रेणी में सम्मिलित करवाया है जो पहले ही पशु–क्लोन बना चुके हैं।

प्रजनन क्लोनिंग द्वारा ऐसी स्तनपायी प्रजातियों के संरक्षण की प्रचुर संभावनाएं जागृत हुई हैं जो या तो विलुप्त हो चुकी हैं, या विलुप्तप्राय हैं। विलुप्त प्रजातियों की यदि कोई कोशिका उपलब्ध हो तो उस से क्लोन बनाना संभव है। प्रबल संभावनाएं हैं कि वैज्ञानिक एक दिन माम्मोथ हाथी का क्लोन बना सकेंगे। प्रजनन क्लोनिंग द्वारा दुर्लभ रॉयल टाइगर, दो कूबड़ वाला ऊँट, याक और हिम तेंदुओं के क्लोन तैयार कर पुनः उनकी संख्या में वृद्धि की जा सकती है। बहुमूल्य सांड़ जो किसी कारणवश प्रजनन के लिए उपयुक्त नहीं रह गए हैं, उनके क्लोन बना कर डेयरी व माँस उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। अति महंगी दवाओं का क्लोन ट्रांसजेनिक पशुओं द्वारा औद्योगिक स्तर पर निर्माण किया जा सकता है।

क्लोनिंग एक अति जटिल और महंगी तकनीक है। साथ ही इस में स्वास्थ्य एवम अनुवांशिक विकृतियों की प्रबल संभावनाएं बनी रहती हैं। अतः, अभी तक विश्व में मानव क्लोनिंग की अनुमति प्रदान नहीं की गयी है। तथापि क्लोनिंग के असंख्य लाभदायक उपयोग हैं। किसी रोगी के स्वयं की कोशिकाओं की क्लोनिंग प्रक्रिया द्वारा

रीप्रोग्रामिंग करके ऐसी स्टेम कोशिकायें बनाई जा सकती हैं जिनका असाध्य माने जाने वाले अनेक अनुवांशिक रोगों (हीमोफिलिया, डायबिटीज, अल्जाइमर्स इत्यादि) के उपचार, निदान और शल्य–चिकित्सा में सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इन कोशिकाओं के उपयोग अथवा प्रत्यारोपण में रोगी के इम्यून तंत्र का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। स्टेम कोशिकाओं के निर्माण व रोगोपचार की इस विधि को वैज्ञानिक भाषा में रोगोपचारक क्लोनिंग का नाम दिया गया है। विश्व भर में इस तकनीक का मानव अनुवांशिक रोगों के निदान व उपचार में सफल उपयोग हो रहा है। यही नहीं, पशु चिकित्सा विज्ञान एवम अनुसंधान में भी रोगोपचारक क्लोनिंग के असंख्य उपयोग हैं। औषिधीय, कॉस्मेटिक व विष परीक्षणों में पशुओं का उपयोग सीमित या प्रतिबंधित हो रहा है। ऐसे में अनुवांशिक समरचना वाले कुछ ही क्लोन पशु विभिन्न परीक्षणों में उपयोग के लिए पर्याप्त होंगे। साथ ही अनुवांशिक कारक जो कि विशेषतः पोषण और इम्युनोलोजी सम्बंधित परीक्षणों को प्रभावित करते हैं, की समस्या से राहत मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, रीप्रोग्राम की हुई स्टेम कोशिकाओं से प्रयोगशाला में ही वांछित शारीरिक उत्तकों का कम लागत पर निर्माण कर विभिन्न अध्ययन व परीक्षण किये जा सकते हैं। इससे शोध कार्य में होने वाले पशु आहार, प्रजनन व प्रबंधन के व्यय और पशुओं के शारीरिक और मानसिक कष्ट को कम या सीमित किया जा सकता है।

संक्षेप में, पशु क्लोनिंग एक बहुउपयोगी तकनीक है जिसने अप्रत्याशित चिकित्सीय संभावनाओं, रोगोपचार तथा निदान के असीम अवसर प्रदान किये हैं। जैव–रासायनिकी और अत्याधुनिक जीनोमिक्स तकनीकों में विकास व समानांतर डाटाबेस प्रबंधन सॉफ्टवेर के संयुक्त उपयोग से क्लोनिंग से सम्बंधित जटिलताओं व दोषों को दूर कर इस तकनीक को सरल, सक्षम एवं व्यावहारिक बना कर इस के उपयोग को बढाने की संभावनाएं बढ़ाई जा सकती हैं।

भेंड़ कैसे खरीदें– प्रक्रिया एवं सलाह

गोपाल आर गोवने, एल एल एल प्रिंस, वेद प्रकाश एवं आर सी शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर (राजस्थान)

भेड़ पालन हमारे देश में निरंतर आजीविका का प्रमुख स्त्रोत है। प्रायः शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों जैसे राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक इत्यादि राज्यों मे कई समुदाय इसे परंपरागत पशु व्यवसाय के रूप से करते आ रहे हैं। भेड़ों की संख्या की दृष्टि से भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है। भारत में भेड़ पालन प्रायः गरीब, लघु किसान एवं भूमिहीन किसान का व्यवसाय है। भेड़ पालन इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योकि इसमें कम से कम लागत लगती है, और कम लागत में ज्यादा आमदनी होती है। साल के ऐसे समय में जब खेती पर आधारित व्यवसाय एवं उनसे जनित आमदनी के स्त्रोत ठप हो जाते है, तब भेड़ पालन एक मात्र व्यवसाय है, जो लगातार आय का स्त्रोत बना रहता है। इसमें न सिर्फ माँस, बल्कि ऊन, खाद, दूध, चमड़ा, हारमोन जैसे कई उत्पाद शामिल हैं।

भेड़ पालन के लिये कई बार अनेक तथ्यों का पता होने के बाद भी इस बात से कई लोग अनाभिज्ञ रहते हैं कि आखिरकार जब यह व्यवसाय शुरू करना हो, या फिर व्यवसाय के मध्य में, या अनुसंधान केन्द्र में भेड़ खरीदनी हो तो कैसे खरीदे? भेड़ खरीदने के लिये प्रायः निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए:

पूर्व तैयारी करें

किसी भी परियोजना में जब भेड़े खरीदनी होती है तो उसके कुछ कारण होते है। कई बार रेवड़ की गुणवत्ता बढाना, रेवड़ का आकार बढ़ाना जैसे मुख्य कारक भेड़ खरीदने के लिये मजबूर करते है। जब भेड़ खरीदना लगभग तय हो गया हो तो आपको चाहिए कि इसके लिये सारी जरूरी तैयारी कर ले। सामान्यतः एक वयस्क भेड़ की औसत कीमत (जो कि जगह, प्रजाति एवं उपयोग अनुसार सतत बदलेगी) ₹ पाँच हजार (₹5000/–) होती है। अगर हमे 50 भेड़े खरीदनी है तो कम से कम ₹ 2,50,000/– न्यूनतम हमारे पास होनी चाहिये। भेड़ जब खरीदने की बात हो तो उन्हे रखने के लिये पर्याप्त जगह बाडा, पानी, चराने की जगह एवं दाना हमारे पास होना जरूरी है। इतना ही नहीं बल्कि जब भेड़े खरीदी जानी है, तो उन्हे सीधे रेवड़ में मिलाने से पहले कुछ हफ्ते एकांत में रखकर जाँच करना भी जरूरी होता है, जिससे उनमें गुप्त रूप से छुपने वाली बीमारीयो का पता चल सके। पूर्व तैयारी में एक महत्वपूर्ण चीज यह है, कि भेड़े किस जगह से, किनसे और किस कारण से खरीद रहे हैं; यह स्पष्ट होना चाहिए।

क्या साथ लें

जब खरीददारी की बात आती है, तो पैसा साथ में होना जरूरी होता है। पैसा संभालकर रखना अपने आप में एक कला है। कई लोग इस कला में माहिर होते है, लेकिन जिन्हे डर लगे उनके लिए चार–पाँच खातों में पैसा डालकर ए.टी.एम कार्ड पास रखना ज्यादा समझदारी है।

भेड़ें खरीदते समय प्राथमिक पशु चिकित्सा बक्सा साथ रखना जरूरी है जिसमें– टिंचर, आयोडिन, एंटीबायोटिक, पेन–किलर, हिमॅकस जैसी क्रीम बीटाडीन, डेकसामिथाजोन एंटीपायरेटीक इंजेक्शन आदि दवाईयाँ होनी चाहिए। भेड़ खरीदना चूंकी जोखिम भरा काम है, तो अगर पशु चिकित्सक या पशु चिकित्सा सहायक साथ हो तो काफी मदद होती है।

पानी पिलाने की बाल्टी, टब साथ में दो–तीन टॉर्च, रस्सी, चाकू, कैंची, लकड़ी का साथ होना भी काम में आता है। जब इस काम पर जाना हो तो एक के बजाय तीन से चार आदमी साथ होना अच्छा होता है जो कि पैसा, पशु चयन, तथा ट्रान्सपोर्ट में अपनी भूमिका निभा सके।

कैसे चयन करें

भेड़ खरीदते समय यह ध्यान रखे कि एक ही रेवड़ से अपने सारे पशु ना खरीदे। जिस क्षेत्र में भेड़ खरीदने जा रहे है वहाँ उपलब्ध पशु चिकित्सक, पशु चिकित्सा सहायक से मिलकर वार्ता करे जिससे रेवड़ की उपलब्धता, अगर कोई बीमारी या संक्रमण हो तो उसका पता साथ ही भेड़ों की कीमत के बारे में भी अंदाजा आ जाता है। पशु चिकित्सक या उनके किसी स्टाफ के साथ रहने से पशु चयन तथा खरीददारी में काफी सहायता मिलती है।

जिस रेवड़ में से भेड़े खरीदते है उस रेवड़ की स्थिति अच्छी होनी चाहिए। रेवड़ के सारे पशु लगभग स्वस्थ हों। रेवड़ में गर्भपात की कोई खबर ना हो। साथ ही रेवड़ में पशुओ के बीच समानता हो जैसे एक ही रंग और प्रजाति के पशु हो।

जब पशु चयन की प्रक्रिया शुरू हो तो निम्नलिखित बातों पर ध्यान दे:–

- भेड़ एक से दो साल या ज्यादा से ज्यादा तीन साल की हो (दो से चार दाँत)।
- भेड़ों में खुजली (मुख्यतः शरीर पर) ना हो।
- भेड़ो की जननांग की जाँच कर वही भेड़/मेंढे ले जो स्पष्ट रूप से मादा/नर हों एवं प्रजनन कर सके।
- अतिवयस्क लेकिन न ब्याई हुई भेड़ ना खरीदें।
- छः दाँत, टूटे हुये दाँत वाली भेड़ ना खरीदें।
- लंगडी, ऊन गिरने वाली, उदास भेड़ ना खरीदें।
- अगर ताजा ब्याई हुई भेड़ हो तो उसे बच्चे के साथ खरीदें। बच्चों की ट्रांसपोर्ट के दौरान देखभाल अति आवश्यक है।
- चुनी हुई भेड़ों को रंग लगाकर अलग करें।
- भेड़ो की आँखों की जाँच कर ले, ताकि अंधी भेड़ ना आये।
- भेड़ों के थन को हाथ लगाकर जाँच करे जिससे थनैला जैसी बीमारी की पहचान हो एवं अच्छी मादा की भी पहचान हो।
- भेड़ दिखने में एवं घुमने फिरने में चंचल हो।

इन सभी बातो को ध्यान में रखकर भेड़ों का चयन करे तथा इन्हे अलग छाँट ले।

अन्तिम एवं महत्वपूर्ण विधि

कई बार भेड़ खरीदने के लिए हमें बहुत लंबी दूरी तय करनी होती हैं। उदाहरण के लिए अगर जयपुर स्थित किसान या संस्था गुजरात से देशी पाटनवाड़ी जैसी भेड़ खरीदना चाहता है तो उन्हे छः से सात सौ किलोमीटर की दूरी एक तरफ से तय करनी होती है। नजदीकी दूरी तो पैदल भी पूरी की जा सकती है लेकिन ज्यादा दूरी के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना जरूरी होता है।

- पचास से साठ भेड़ों के लिये एक ट्रक जिसकी लंबाई 19 फीट हो तय करें।
- ट्रक ड्राइवर के सारे कागज ठीक हो। प्रायः ट्रांसपोर्ट कंपनी से बात करने पर ठीक गाड़ी मिल सकती है।
- भेड़ो को खिलाकर एवं पानी पिलाकर ही ट्रक में चढ़ाये।
- वाहन में नीचे सूखा चारा अधिक मात्रा में डालें जिससे उनके गंदे होने से बचाव हो एवं खाने का भी इंतजाम हो सके।
- फाटा या रस्सी लगाकर ट्रक का पिछला हिस्सा बंद करे।
- बारिश का मौसम हो तो उपर से त्रिपाल का उपयोग करें वरना त्रिपाल ना लगाये। गर्मी मे त्रिपाल के उपयोग से भेड़ो की जान जा सकती है।,
- भेड़ों के साथ एक आदमी का टॉर्च लेकर रहना जरूरी है, ताकि गिरने वाली भेड़ों को उठाया जा सके।

- रास्ते के लिए हरे चारे की व्यवस्था करें।
- वाहन की रफ्तार ज्यादा तेज या ज्यादा धीमी ना रखे, साथ ही एकदम से ब्रेक ना लगायें।
- जब मौका मिले रास्ते में भेड़ों को पानी जरूर पिलायें।
- बीच–बीच में गाड़ी रोककर भेड़ों को देखे एवं कुछ गडबडी हो तो उपाय करे। जरूरत होने पर दवाई का प्रयोग करे।
- प्रयत्न करे की प्रवास की अवाही कम तथा शाम या सुबह की हो, जिससे गर्मी से बचे।
- अपने गंतव्य पर पहुचने के बाद जानवरों को बहुत संभालकर एवं सावधानी पूर्वक उतारे। जानवरो को कूदने के लिये मजबूर ना करे।
- वाहन में जानवर उतारते समय फन्टे (लकड़ी के तख्तो) का ढालनुमा लगाकर जानवरों को एक–एक करके उतारने में असानी रहेगी।
- थके हारे जानवर जब बाड़े में पहुँचे तब उन्हे तुरंत सूखा दाना ना देवे, जिससे भूखे जानवर ज्यादा खाकर अफारा जैसे विकार से ग्रस्त हो सकते है। उन्हे पानी दे एवं सूखा तथा हरा चारा दे और फिर बाद में दाना दे।

जब भेड़े आपके पास पहुँच जाये तो उन्हे अलग रखकर (दो से तीन सप्ताह) पशु चिकित्सक की राय लेकर अलग चराई कराएं एवं कुछ विशिष्ट बीमारी जैसे ब्रुसेला, पी.पी. आर व अन्य रोगो के लिये जाँच करवाये। परजीवी नाशक औषधी सारे नये पशुओं को पिलाये।

सिर्फ पूरी तरह स्वस्थ पशुओं को ही रेवड़ में शामिल करे।

उपर दर्शायी गई बातों को अच्छी तरह से पालन करने पर उच्च गुणवत्ता के पशु भेड़ चयन तथा खरीद कर पाना आसान होगा। इससे रेवड़ की गुणवत्ता में सुधार तथा आमदनी में वृद्धि होना तय है।

शूकर प्रजनन का परिदृश्य

शान्तनु बनिक, पी के पंकज[1], सौमेन नश्कर, आर. पुरूषोत्तम[2] एवं इन्द्रजीत गांगुली[3]
भाकृअनुप – राष्ट्रीय शूकर अनुसंधान केंद्र, राणी, गुवाहाटी (असम)

शूकर पालन प्रक्षेत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनका मूलभूत समूह किससे बना है। पशुओं में अपेक्षित बदलाव लाने हेतु कोई एक चुनाव आधार नहीं है। अतः आवश्यकता है एक विशेष शूकर प्रजनन नीति का जो कि हमारे भौगोलिक दृष्टिकोण के अनुरूप हो।

शूकर के चुनाव हेतु प्रमुख आर्थिक गुणों की समीक्षा

किसी भी पशु चुनाव प्रकिया का प्रमुख उद्देश्य है कम–से–कम लागत मुल्य वाली पदार्थो पर आधारित अधिक से अधिक शारीरिक वजन प्राप्त करना जो कि बाजार के मांग के अनुरूप हो। भारत के जैसे विकासशील देशों में माँसल एवं चर्बीयुक्त शूकर के माँस की माँग है। धनी व्यक्ति माँसल जबकि गरीब व्यक्ति चर्बीयुक्त माँस को पसंद करता है क्योंकि इसे एक पकानेयुक्त माध्यम की तरह उपयोग किया जाता है।

I. संरचनात्मक गुण

क. नर शूकर: प्रजनन योग्य नर शूकर का वजन कम से कम 90 किलो एवं शारीरिक लम्बाई 100 से. मी. होनी चाहिए। भारतीय नस्लों के लिए इन मापकों में लचीलापन लाया जा सकता है। साधारणतया 6 महीने के उम्र में जिस नर शूकर का सर्वाधिक वजन होता है, उसे ही प्रजनन हेतु प्रयुक्त किया जाता है। पूर्ण विकसित अण्डकोश एवं शारीरिक मांसलता भी अन्य गुण है, जिन्हें चुनाव हेतु ध्यान में रखना चाहिए।

ख. मादा शूकर: चुनाव किये जाने वाले मादा शूकरों में नस्ल प्रदर्शित करने वाले गुण मौजूद होने चाहिए। इसके लिए मुख्यतः पैरों के मध्य विस्तृत दूरी, विकसित कंधा, झुकी हुई कमर जैसे गूणों को प्रधानता दी जाती है। मादा शूकर में कम से कम 6 जोड़ा कार्यरत चूचक होनी चाहिए। अच्छे मानसिक संतुलन वाले एवं मातृत्व क्षमता वाले मादा शूकरों को हमें प्रधानता देनी चाहिए।

ग. फार्म पर उपस्थित आनुवंशिक जन्य रोगों के कारण इसके प्रदर्शन पर बुरा असर पड़ता है। अतः ऐसे जानवरों को प्रजनन हेतु प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। शूकरों में पाये जानेवाले प्रमुख आनुवंशिक रोग क्रिपटॉरकिडिज्म, हरमाफ्रोडाइटिज्म, एट्रेशिया एनाई, हर्निया, हाइड्रोसिफालस, लेगलेसनेस एवं प्रजनन अंग असामान्यता हैं। ऐसे वंशानुगत रोगों वाले शूकरों को प्रजनन हेतु प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

II. प्रमुख प्रदर्शन गुण

शूकरों को चुनाव करने हेतु निम्नांकित प्रदर्शन गुणों को प्राथमिकता दी जाती है:–

क. शावकों की संख्या: नस्ल के अनुरूप शावकों की संख्या प्रति मादा 2 से 20 (औसतन 9 से 11) होती है। इस गुण की हेरीटेबीलिटी (h^2 0.1 से 0.15) कम होने के कारण इस गुण में आनुवंशिक विचित्रता अधिक पायी जाती है। भारतीय जलवायु की परिस्थितियों में सामान्यतया 8-10 शावकों की संख्या प्रति मादा पायी जाती है।

ख. विच्छेदित (वीनिंग) शावकों की संख्या एवं विच्छेदन (वीनिंग) वजन: इस गुण का निर्धारण वातावरणजनित कारकों के द्वारा ज्यादा होता हो

---

1. भाकृअनुप–केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद (तैलंगाना)
2. दक्षिणी क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, मन्नावनूर (तमिलनाडू)
3. भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

विच्छेदन पूर्व शावकों की मृत्यु का प्रमुख कारण मॉ से दब जाना, न्यूमोनिया, दस्त, आन्त्रशोथ, ठंड, इत्यादि है। यह गुण प्रमुखतया मादा के मातृत्व क्षमता, दुग्ध उत्पादकता, एवं प्रबंधन पर निर्भर करती है।

ग. विच्छेदनबाद वजन वृद्धि दर: यह गुण आनुवंशिक रूप से ज्यादा निर्भर करता है। एक कुँवारी मादा का वजन 180 दिनों में कम से कम 90 किलो होना चाहिए । अतः कुशल प्रजननकर्ता मादा शूकरों को अलग से विशेष प्रबंधन द्वारा 8-10 महीने में 100 किलो वजन प्राप्त कर लेते हैं।

घ. खाद्य परिवर्तन क्षमता: इसकी आदर्श माप 3.0 से 3.2 के मध्य होनी चाहिए। इस गुण के विकास हेतु अप्रत्यक्ष रूपी चुनाव प्रकिया अपनायी जा सकती है।

III. मृतक (कॉरकस) गुण : शूकर में प्रमुख मृतप्राय गुणों को निम्नांकित रूप से उल्लेखित किया जाता है।

क. मृतक (कॉरकस) शूकर की लम्बाई: इसकी लम्बाई मापने हेतु प्रथम रीब से आईटेक हड्डी तक की दूरी ली जाती है। इसकी दूरी ज्यादा प्राप्त होने पर लॉयन कट भी बढ़ जाती है। एक 90-100 किलो वजन वाले शूकर की मृतप्राय लम्बाई कम से कम 75 से. मी. होनी चाहिए।

ख. लॉयन-आई क्षेत्र: शूकरों में माँसलता प्रदर्शित करने वाली सर्वोतम सूचक है लॉगिसिमस डॉरसाई मसल। इसको मापने के लिए दसवे एवं ग्यारहवें रीब के मध्य लम्बवत काटकर क्षेत्रफल ली जाती है। एक 90-100 किलो वजन वाले शूकर का लॉयन आई क्षेत्र कम से कम 25.5 से.मी.^{2} होनी चाहिए।

ग. पृष्ठ-वसा-जमाव: साधारणतया पृष्ठ-वसा-जमाव ज्ञात करने के लिए प्रथम रीब अंतिम रीब एवं अंतिम लंबार वरटीब्रा के पास के वसा जमाव का औसत लिया जाता है। एक 90-100 किलो वजनवाले शूकर के पृष्ठ वसा जमाव का आदर्श माप 1.0 से 3.8 से. मी. होनी चाहिए।

घ. प्राथमिक छेदन (कट) प्रतिशत: मृत शूकर की माँसलता प्रदर्शित करने हेतु प्राथमिक छेदन (यथा, लायन, हेम, कन्धा, पेट) को प्रमुख स्थान दिया जाता है। इसकी आदर्श माप 52.8 से कम नहीं होनी चाहिए।

पशु चुनाव के आधार

साधारणतया, एक व्यवस्थित फार्म पर प्रतिवर्ष 10-15% मादा एवं 1-2% नर शूकरों को प्रतिस्थापित किया जाता है। शूकरों में चुनाव के आधार हेतु व्यक्तिगत चुनाव, वंशावली चुनाव, पारिवारिक चुनाव एवं संतति परीक्षण आदि प्रकिया अपनायी जाती है।

व्यक्तिगत चुनाव, शूकरों के निजी शारीरिक गूणों के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार के चुनाव में ऐसे गुणों को प्राथमिकता दी जाती है जिसकी हेरीटेबिलिटी ज्यादा है। वंशावली चुनाव में ऐसे पशुओं को चयनित किया जाता है जिनके करीबी संबंधियों का प्रदर्शन बेहतर रहा हो। पारिवारिक चुनाव संबंधियों एवं निजी शारीरिक गूणों, दोनों पर आधारित होता है।

संतति चुनाव में संतान के प्रदर्शन के आधार पर शूकरों का चूनाव किया जाता है। ऐसे चुनाव प्रक्रिया में यदि संतानों की संख्या ज्यादा ली जाय तो चुनाव के विशुद्धता में वृद्धि होती है। व्यक्तिगत चुनाव के विपरीत, यह प्रक्रिया कम हेरीटेबल गुणों के लिए भी अपनायी जा सकती है।

पशु चुनाव के प्रकार

शूकरों का चुनाव गुण, या कई गुणों को साथ में लेकर किया जा सकता है । विभिन्न पशु चुनाव के प्रकारों में ये निम्नलिखित है:

क. टेन्डम विधि: इस प्रक्रिया में एक समय में एक जरूरी गुण को आधार करके चुनाव किया जाता है। उत्तरोत्तर उस गुण में विकास पाने के बाद दूसरे जरूरी गुण को सम्मिलित किया जाता है।

ख. इन्डिपेन्डेंट कलिंग लेवेल: इसमें दो या अधिक गुणों का आदर्शित माप निर्धारित किया जाता है,

जिन पशुओं में ये गुण आदर्शित माप से अधिक पाये गये, उन्हें ही चयनित किया जाता है।

ग. **वरण इन्डेक्स:** इस प्रकिया में सभी प्रमुख गुणों को एक आर्थिक मान दे कर एक इन्डेक्स बनाया जाता है जिन पशुओं का इन्डेक्स आदर्शित मान से ज्यादा होता है, उनका ही चयन किया जाता है। यह सर्वाधिक प्रयुक्त चुनाव प्रकिया मानी जाती है।

प्रजनन प्रक्रिया

चयनित पशुओं के विकास को उत्तरोत्तर बढ़ाने के लिए निम्नलिखित रूप से प्रजनन किया जा सकता है ।

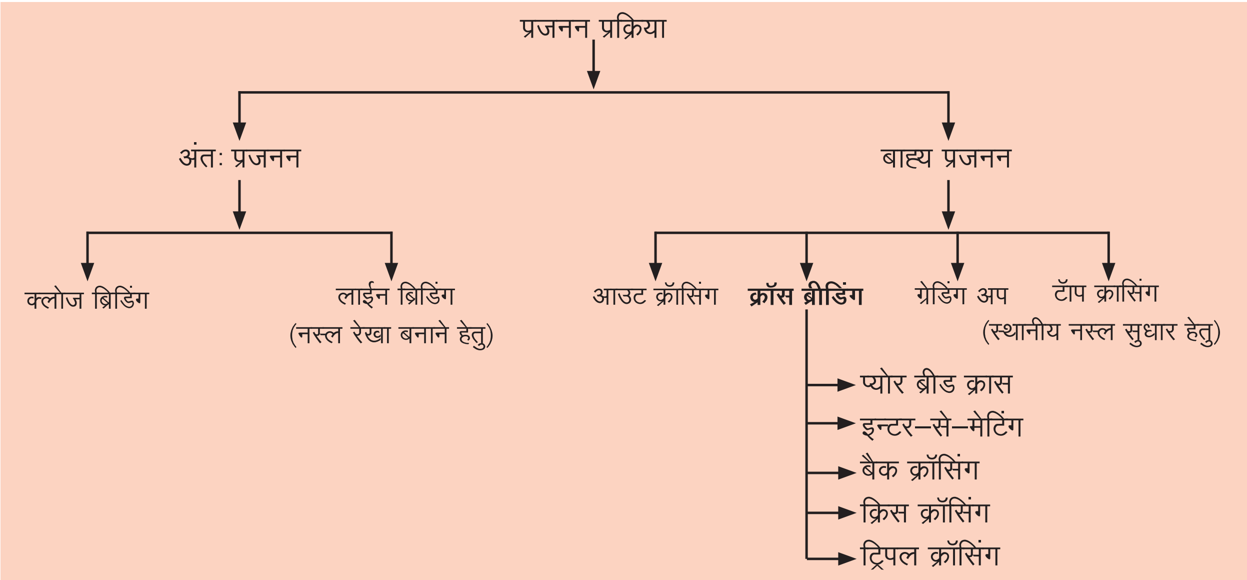

एक विकसित नस्ल की उन्नति के लिए आउट क्रासिंग या चयनित प्रजनन प्रयुक्त होती है। एक खराब प्रदर्शन करने वाले स्थानीय नस्ल के प्रतिस्थापना हेतु ग्रेडिंगअप प्रक्रिया अपनायी जाती है। स्थानीय वातावरण के अनुकुल नस्ल विकसित करने के लिए कास ब्रीडिंग प्रक्रिया दो या तीन नस्ल व्यवहार करके की जाती है:–

शूकर प्रजनन के सामान्य निर्देश

प्रतिवर्ष अधिक से अधिक स्वस्थ शूकर शावक पाने हेतु एक व्यवस्थित प्रजनन प्रक्रिया अपनाना जरूरी होता है। इस के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. एक मादा शूकर को 8-10 महीने में जब वह 80-100 किलो का वजन प्राप्त कर ले, प्रजनन हेतु प्रयोग करना चाहिए।
2. पहली बार एक से दो गर्मी छोड़कर प्रजनन करना चाहिए।
3. मादा शूकरों को प्रति गर्मी में 12 घंटे के अंतराल पर दो बार संसेचित करना चाहिए।
4. अत्यन्त करीबी प्रजनन को रोकना चाहिए क्योंकि 10 प्रतिशत करीबी प्रजनन में वृद्वि से प्रति ब्यॉत 1/3 शावक संख्याओं में कमी एवं माँ से अलग होने के पश्चात संख्या आधी हो जाती है।
5. प्रजनन प्रयुक्त दल में प्रजननजनित रोग यथा ब्रूसेलेसिस, टॉक्सोप्लाजमोसिस, एवं लेप्टोस्पाईरोसिस नहीं होना चाहिए।

उत्तर प्रदेश में बकरी पालन की उपयोगिता

सत्येन्द्र पाल सिंह, शिल्पी गोयल[1] एवं संजीव सिंह[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, राजा बलवंत सिंह कालेज, बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश)

आबादी की दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है। लेकिन बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में यहां खेती योग्य जमीन का क्षेत्रफल कम होता चला जा रहा है। आबादी के दबाब के चलते प्राकृतिक संसाधन भी क्षीण होते जा रहे हैं। प्रदेश में लगभग 85 प्रतिशत से अधिक किसान सीमांत और लघु सीमांत की श्रेणी में आते हैं। इतना ही नहीं बल्कि प्रदेश के ग्रामीण अंचल में बहुत बड़ी संख्या में भूमिहीन किसान–मजदूर रहते हैं जिनके पास दैनिक मजदूरी के अलावा रोजगार का दूसरा कोई साधन नहीं हैं। प्रदेश में ऐसे लोगों के परिवारों के लिये बकरी पालन व्यवसाय की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है। बकरी पालन एक ऐसा कार्य है जिसे करने के लिये बहुत अधिक संसाधन, शिक्षा, और श्रम की आवश्यकता नहीं होती है। ग्रामीण, किसान, भूमिहीन, मजदूर, महिलाऐं आदि बकरी पालन करके अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि बकरी पालन कम समय में, कम श्रम और कम धन के साथ अधिक मुनाफा देने की क्षमता रखता है। देश व प्रदेश सरकार बकरी पालन हेतु कई योजनायें भी संचालित कर रही है, जिसका लाभ उठाया जा सकता है।

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (2007) के अनुसार विश्व में बकरियों की सख्या 85 करोड़ 2 लाख 20 हजार है जिसमें से लगभग 12 करोड़ 54 लाख 56 हजार बकरियां भारत में पाई जाती हैं। विश्व के अन्य देशों की तुलना में 14.76 प्रतिशत बकरियां सिर्फ भारत देश में पाई जाती हैं। जबकि उ. प्र. के संदर्भ में देखा जाये तो 2007 की पशु गणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में 1 करोड़ 45 लाख 94 हजार बकरियों की संख्या है। भारत में बकरियों की 23 वर्णित नस्लें हैं, जिसमें उत्तर प्रदेश की दो प्रमुख नस्लें– बरबरी एवं जमुनापारी शामिल हैं। इसके अलावा प्रदेश के विभिन्न अंचलों एवं जनपदों में दोगली और देशी किस्म की बकरियाँ भी पाली जाती हैं। प्रदेश में मुख्य रूप से बकरी पालन मांस, खाल और दुग्ध उत्पादन के लिये किया जाता है। उत्तर प्रदेश में पाई जाने वाली बरबरी एवं जमुनापारी नस्ल की बकरियां उत्पादन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यह दोनों नस्लें अपने अलग–अलग गुणों के लिये पहचानी जाती हैं।

बरबरी नस्ल

उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली बरबरी, बकरी की एक प्रमुख नस्ल है। जोकि आगरा, मथुरा, अलीगढ़, एटा, हाथरस, काशीराम नगर, फिरोजाबाद, मैनपुरी के अलावा राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, करौली एवं हरियाणा के पलवल जिलों में पाई जाती है। ऐसा माना जाता है कि इसका उद्‌गम पूर्वी अफ्रीका के बरबरा स्थान से हुआ है। संभवत मध्य काल में व्यापारियों द्वारा इसे पूर्वी अफ्रीका से भारत में लाया गया होगा। यह मध्यम आकार एवं गठीले शरीर की बकरी है। इस नस्ल की बकरियों के शरीर पर बादामी, चाकलेटी कभी–कभी काले एवं भूरे रंग के छोटे–बड़े धब्बे पाये जाते हैं। इनके कान नुकीले छोटे हिरण जैसे खड़े होते हैं। सींग मध्यम आकार के, पीछे की ओर मुड़े हुए तथा वयस्क नरों में दाढ़ी भी देखी जाती है। अयन गोलाकार, थन मघ्यम लम्बाई के नोकदार होते हैं। पूंछ छोटी पीछे की ओर मुड़ी एवं पूछ के नीचे पुठ्ठों पर बहुत कम बाल होते हैं। बरबरी बकरी की सामान्यतः लम्बाई 65–75 सेंमी एवं ऊंचाई 55–65 सेंमी होती है।

यह एक द्विकाजू नस्ल है जो मांस और दूध उत्पादन के लिये अच्छी मानी जाती हैं। इनसे ब्यांतकाल में 600 से 800 ग्राम दूध प्रतिदिन प्राप्त हो जाता है। बरबरी बकरी की प्रजजन क्षमता काफी अच्छी होती है। इनसे एक बर्ष

[1]. शिक्षा निदेशालय (डी एस एस एस बी), एस के वी, हरीनगर आश्रम, नई दिल्ली

[2]. राकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

चित्र 1 से 4 – बरबरी बकरियाँ

में ही बच्चे पैदा होना शुरू हो जाते हैं। इस नस्ल की बकरियां लगभग 14 माह में दो बार ब्याने तथा प्रति ब्यांत कम से कम दो बच्चे देने के कारण मांस उत्पादन के लिये शहरी क्षेत्रों में इनकी बहुत मांग है। बरबरी बकरी को घर पर बांधकर दाना–भूसा खिलाकर आसानी से पाला जा सकता है। साथ ही साथ इन्हें चराकर भी बखूबी पाला जा सकता है। एक बर्ष की आयु के नर का शारीरिक भार 20 से 25 किग्रा. और मादा का भार 18 से 20 तक हो जाता है। जल्दी–जल्दी ब्यांने और घर पर बांधकर पालन होने के कारण इस नस्ल की बकरियों की देश के अन्य भागों में भी काफी मांग है। एक बर्ष की आयु पर नर का औसतन मूल्य 3000 से 3500 रूपये एवं मादा का मूल्य 2200 से 2700 रूपये एवं प्रजनन बकरे का मूल्य 4500 से 5000 रूपये तक प्राप्त हो जाता है।

जमुनापारी नस्ल

यह नस्ल भी उत्तर प्रदेश की प्रमुख महत्वपूर्ण नस्ल है, जोकि दुग्ध उत्पादन में बहुत अच्छी मानी जाती है। जमुनापारी बकरियां उत्पादन में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं तथा अपने प्रजनन क्षेत्र में शुद्ध रूप में पायी जाती हैं। इटावा जनपद की चकरनगर तहसील क्षेत्र इस नस्ल का उद्‌गम स्थान है। जमुनापारी मुख्यतः सफेद रंग की होती है, जिसके सिर, कान एवं गले पर हल्का या गाढ़ा बादामी रंग का धब्बा भी पाया जाता है। इसके अलावा कुछ बकरियों के सिर एवं कान पर काले धब्बे भी पाये

चित्र 5 – जमुनापारी बकरी

जाते हैं जोकि संख्या में बहुत कम होते हैं। जमुनापारी बकरियों में उभरी नाक, लम्बे लटके कान तथा जांघों में बालों का गुच्छा होता है। साथ ही ऊपरी जबड़ा निचले से छोटा होने के कारण तोते जैसी आकृति प्रदान करता है। इस नस्ल की बकरियां एक दिन में 2 से 3 लीटर तक दूध दे देती हैं और एक दुग्धकाल में 325 लीटर तक दूध देने की क्षमता रखती हैं। सामान्य पोषण पर एक वर्ष में नर का शारीरिक भार 35 से 45 किग्रा तथा मादा का शारीरिक भार 28 से 35 किग्रा तक का हो जाता है। इस नस्ल की बकरी वर्ष में एक बार ब्याती है और एक अथवा कभी–कभी दो बच्चों को जन्म देती हैं। मांस उत्पादन के लिये इस नस्ल की बकरी को बहुत उपयुक्त नहीं माना जाता है। क्योंकि इसके शरीर में मांस से ज्यादा हड्डियों का वजन होता है।

तालिका 1: बरबरी एवं जमुनापारी बकरियों की उत्पादन क्षमता एवं जनन संबंधित लक्षण

लक्षण विवरण		बरबरी	जमुनापारी
लैंगिक परिपक्वता	दिन (आयु)	288	553
	वजन (किग्रा.)	16	25
प्रजनन ऋतु		वर्षभर किन्तु अत्यधिक गर्मी व ठण्ड में मंदी	मई–जुलाई अक्टूबर–नवम्बर
मदकाल अवधि (घण्टे)		38	38
मदचक्र (दिन)		19	19
प्रसवोपरान्त मदकाल (दिन)		56	149
गर्भकाल (दिन)		145	148
दुग्धकाल (दिन)		80–110	140–180
दुग्ध उत्पादन/ब्यांत (किग्रा)		65–90	150–200
एक वर्ष पर शरीर भार (किग्रा)		नरः 20–25 मादाः 18–20	नरः 35–45 मदाः 28–35

नस्ल का चुनाव

देखने में आ रहा है कि उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों और जनपदों में जो ग्रामीण बकरी पालन कर रहे हैं वह बकरियों की उन्नत नस्लों पर कतई ध्यान नहीं दे रहे हैं। ज्यादातर बकरी पालक देशी टाइप की बकरियों का ही पालन कर रहे हैं। बरबरी बकरी वाले क्षेत्रों में बरबरी बकरी सिरोही, जमुनापारी और देशी नर बकरों से क्राँस हो रही हैं जिससे पैदा नस्ल को बकरी पालक अलबरी नाम से पुकारते हैं। यही हाल जमुनापारी बकरी के साथ भी है। बकरी पालक प्रजनन में उसी नस्ल के शुद्ध नर प्रजनन बकरों को विशेष महत्व नहीं दे रहे हैं। इसके चलते उनकी जनन क्षमता प्रभावित हो रही है। इसके पीछे मुख्य वजह शुद्ध नस्ल के नर बच्चों को कम उम्र में बधियाकरण कराकर मांस हेतु बेच दिया जाता है जिसके चलते शुद्ध बरबरी और जमुनापारी नस्ल की कमी होती चली जा रही है। उत्तर प्रदेश के बकरी पालकों को चाहिये कि वह अपनी आवश्यकता एवं अपने क्षेत्र की जलवायु की अनुकूलता के अनुरूप ही बरबरी या जमुनापारी बकरी की नस्ल को ही प्राथमिकता दें। इसके लिये बेहतर होगा कि बकरी पालक किसान, देशी बकरियों में नस्ल सुधार को प्राथमिकता दें। एक रेवड़ में 20 मादा बकरियों पर कम से कम एक नर बकरे को अवश्य रखें तथा इसे क्रमशः तीन वर्ष उपरांत आवश्यक रूप से बदलते रहें। बरबरी और जमुनापारी नस्ल के शुद्ध वयस्क नर बकरों को भाकृअनुप–केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम (फरह) मथुरा से भी खरीदा जा सकता है।

आर्थिक महत्व

उत्तर प्रदेश के संदर्भ में बकरी पालन का आर्थिक दृष्टिकोण से महत्व बहुत ज्यादा है क्योंकि ग्रामीण परिवेश में खेती किसानी पर निर्भरता कम होती चली जा रही है। उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन कृषि श्रमिक, सीमांत और लघु सीमांत कृषक अधिकांशतः बकरी पालते हैं, जिससे इनके परिवारों को अतरिक्त आर्थिक लाभ मिल जाता है। साथ ही गरीब परिवारों के बच्चे और महिलायें अपने खाली समय में बकरियों को चराकर समय का सदुपयोग भी कर लेते हैं। उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालन रोजगार का बहुत ही उपयोगी विकल्प है। क्योंकि गाय–भैंस की बढ़ती हुई कीमतों की तुलना में बकरी की कीमत काफी कम हैं, इसके अलावा इसके लालन–पालन पर भी डेयरी व्यवसाय की तुलना में काफी कम खर्च आता है। बकरी पालन ग्रामीण बेरोजगारों के लिये रोजगार का एक बहुत ही अच्छा विकल्प बन सकता है। प्रदेश में जिस तेजी से बकरी के मांस, खाल, दूध की मांग बढ़ रही है उसे देखते हुये आगामी दशकों में बकरी पालन की उपयोगिता और बढ़ेगी। बकरी का मांस हर जाति संप्रदाय के लोगों द्वारा समान रूप से खाया जाता है। वहीं बकरी दूध के औषधी गुणों को देखते हुये इसकी मांग हर साल बढ़ रही है। पिछले कुछ वर्षो से डेंगू वाइरल बुखार के मरीजों में गिरती प्लेटलेट्स को बढ़ाने में मद्दगार होने के चलते बकरी दूध की मांग बहुत बढ़ गई है। हांलाकि इस पर कोई शोध नहीं हुआ है परंतु लोगों के विश्वास को नकारा भी नहीं जा सकता है। रोग के दरम्यान शहरी क्षेत्रों में बकरी दूध की कीमतें सातवें आसमान तक पहुंच जाती हैं। उत्तर प्रदेश में बकरी पालन की उपयोगिता को देखते हुये यहां दी जा रही वैज्ञानिक बातों को अमल में लाकर अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है।

बकरी पालन की पद्धतियाँ

बकरी पालन की तीन प्रमुख पद्धतियां हैं:

1. **सघन (इन्टेन्सिव) पद्धतिः** इसके अन्तर्गत बकरियों को घर अथवा फार्म पर रखकर पालन किया जाता है। यह पद्धति उस समय अपनाई जाती है जब चारागाह क्षेत्रों का अभाव होता है। इस पद्धति में बकरियों से उनकी क्षमता के अनुरूप उत्पादन लिया जा सकता है, लेकिन इसमें अधिक श्रम की आवश्यकता होती है।

चित्र 6 – बकरियाँ चारागाह क्षेत्र में

2. **अर्द्धसघन (सेमी इन्टेन्सिव) पद्धतिः** इस पद्धति के अंतर्गत बकरियों को चारागाह में चराने के साथ ही घर अथवा फार्म पर अलग से चारा दाना भी खिलाया जाता है। चारागाह कम होने के कारण आवश्यक मात्रा में चारे की पूर्ति नहीं हो पाती है। अतः इस कमी को पूरा करने के लिये घर पर अतिरिक्त चारा दाना दिया जाता है।

3. **मुक्त विचरण (एक्सटेन्सिव) पद्धतिः** इस पद्धति में बकरियों को पूरी तरह चारागाह में चराकर पालन किया जाता है। इसके अतरिक्त कोई अलग से चारा दाना घर अथवा फार्म पर नहीं खिलाया जाता है। इस पद्धति से बकरी पालन में लागत कम आती है। लेकिन उत्पादन भी कम ही प्राप्त होता है।

4. अधिकांश बकरी पालक बकरियों को चारागाह में चराकर पालन करते हैं। लेकिन वर्तमान दौर में चारागाह की कम उपलब्धता और अच्छा उत्पादन लेने के लिये बकरी पालकों को चाहिए कि वह चारागाह में चराने के अलावा बकरियों को अतिरिक्त चारे–दाने की पूर्ति अवश्य करें, जिससे बकरियों की क्षमता के अनुरूप भरपूर उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

आवास व्यवस्था

बकरियों का आवास सुरक्षित होने के साथ ही उसमें हवा, पानी, प्रकाश, जल निकासी का समुचित प्रबंधन होना चाहिये। बकरी आवास बनाते समय ध्यान रखें कि उसमें उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक प्रयोग करें जिससे लागत कम की जा सके। बकरियों के आवास में छत से ढ़की और खुली दोनों प्रकार की जगहों की आवश्यकता होती है। ढ़की जगह में जानवर धूप, ओस, लू, गर्मी, ठण्डं और बरसात से सुरक्षित रहता है। जबकि खुली जगह में वह व्यायाम तथा आराम करता है। सम्पूर्ण आवास की एक तिहाई जगह ढ़की हुई तथा दो तिहाई जगह खुले बाड़े के रूप में प्रयोग में लायी जाती है। बकरे और बकरियों को उनकी उम्र एवं कार्य के अनुसार कम और ज्यादा जगह की आवश्यकता होती है। बकरियों को आवश्यकता के अनुरूप जगह नहीं मिलने पर उनका स्वास्थ्य प्रभावित होता है। उनकी वृद्धि कम होने के साथ – साथ उत्पादन क्षमता में भी गिरावट आ जाती है।

तालिका 2: उम्र के अनुसार बकरियों के लिये जगह की आवश्यकता

उम्र/समूह	ढ़की जगह की आवश्यकता (वर्ग मीटर)	बाड़े में खुली जगह की आवश्यकता (वर्ग मीटर)
जन्म से 3 माह तक के बच्चे	0.2-0.3	0.4-0.6
3 से 9 माह तक के बच्चे	0.6-0.75	1.2-1.5
9 से 12 माह तक के बच्चे	0.75-1.0	1.5-2.0
जवान बच्चे	1.0	2.0
वयस्क बकरे	1.5-2.0	3.0-4.0
गाभिन एवं दूध देने वाली बकरियां	1.5	3.0

आहार व्यवस्था

चारागाह उपलब्ध हों तो 8 से 10 घंटे चराना पर्याप्त रहता है। ऐसी स्थिति में घर पर अलग से चारा दाना खिलाने की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन देखने में आ रहा है कि बकरियों को पर्याप्त चारागाह की उपलब्धता नहीं मिल पा रही है। इसके साथ ही बकरियों से उनकी क्षमता के अनुरूप अच्छा उत्पादन लेने के लिये उन्हें अलग से आहार देना नितांत आवश्यक हो जाता है। इसलिये बेहतर उत्पादन लेने के लिये घर पर अलग से चारा–दाना देने की आवश्यकता है। बकरियों को 100 किग्रा. शरीर भार पर 3 से 4 किग्रा. शुष्क पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है। हरा चारा 1 से 2 किग्रा के अलावा अरहर, चना, मटर, मसूर आदि का भूसा भी खिलाना आवश्यक है। बकरियों को 15 दिन से 3 माह तक उनकी इच्छानुसार, 3 माह से 6 माह तक 150 से 200 ग्राम, 6 माह से 12 माह तक 200 से 300 ग्राम तथा वयस्क बकरी–बकरा को 300 से 400 ग्राम दाना मिश्रण की मात्रा प्रति बकरी–बकरा प्रति दिन की दर से खिलाना चाहिये।

बकरियों को पर्याप्त मात्रा में जई, बरसीम, रिजका, लोबिया, ज्वार, आदि का हरा चारा खिलाया जा रहा है तो दाना मिश्रण की मात्रा को आधा कर देना चाहिये। शारीरिक रक्षा के अतिरिक्त प्रजनन, गर्भावस्था एवं दुग्ध उत्पादन के लिये अलग से दाना मिश्रण देना जरूरी है। शरीर वृद्धि हेतु 200 ग्राम, प्रजनन काल से एक माह पूर्व तक 300 से 400 ग्राम, गर्भ के अन्तिम माह में 300 से 400 ग्राम तथा दुग्ध उत्पादन हेतु 400 से 500 ग्राम प्रति किग्रा दुग्ध उत्पादन पर दाना मिश्रण की मात्रा प्रति बकरी–बकरा प्रति दिन देने से अच्छा उत्पादन लेने के

साथ ही बकरा–बकरियों का स्वास्थ्य बेहतर बनाये रखा जा सकता है। दाना मिश्रण में 10 से 12 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन तथा 65 से 70 प्रतिशत कुल पाच्य तत्व होना चाहिये। इसके साथ ही राशन शुद्ध, स्वच्छ एवं कीटाणु रहित हो इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। बकरियों को साबुत की बजाय दला हुआ दाना देना अच्छा रहता है, जिसे वह सुगमता से पचा लेती हैं। बकरी पालक बकरियों से अच्छा उत्पादन लेने हेतु हमेशा संतुलित राशन ही खिलायें। उपलब्धता के आधार पर संतुलित राशन निम्न प्रकार तैयार कर सकते हैंः–

तालिका 3ः बकरियों हेतु संतुलित राशन

सामग्री/अवयव	मात्रा (किग्रा)
दली हुई जौ/मक्का/जई/कुछ मात्रा में बाजरा	45.0
सरसों/मूंगफली/सोयाबीन आदि की खली	20.0
गेहूं की चोकर	15.0
दालों/चना के छिलके–चूनी/कुछ मात्रा में मेंथी	12.0
गुड़/शीरा	05.0
खनिज लवण मिश्रण	02.0
साधारण नमक	01.0
कुल योग	100.0

स्वास्थ्य सुरक्षा और रोगों से बचाव

बकरी पालक गरीब ग्रामीण किसान उनके स्वास्थ्य की सुरक्षा और रोगों के बचाव पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते हैं। इसके संबंध में बकरी पालकों में जानकारी का अभाव है। लेकिन बकरी पालन से अच्छा लाभ तभी मिल सकता है जब उनके स्वास्थ्य के बेहतर प्रबंधन के साथ रोगों से समय–समय पर पूरा बचाव किया जाये। इसके लिये बकरियों की समय–समय पर स्वास्थ्य जांच के अलावा हर तीन से चार माह के अंतराल पर पेट के कीड़ों कृमिनाशक दवा देते रहना चाहिये। इसके अलावा वाह्यः परजीवियों से बचाव करना भी आवश्यक है। बकरियों में बकरी प्लेग नामक बीमार जिसे पीपीआर (पेस्टीडेस पेस्टिस रूमीनेन्ट्स) के नाम से जाना जाता है काफी देखने को मिल रही है। अतः इसके बचाव हेतु 3 माह से बड़ी बकरी–बकरा को टीका अवश्य लगवा देना चाहिये। एक बार लग जाने के उपरांत यह टीका 3 वर्ष तक काम करता है। इसके अलावा बकरियों में मुख्यतः खुरपका–मुंहपका, गलघोंटू, एन्ट्रोटोक्सीमिया आदि संक्रामक रोग होते हैं। अतः इनके बचाव के लिये निकटवर्ती पशु चिकित्सालय पर सम्पर्क कर समय–समय पर टीकाकरण कराते रहना चाहिये।

ध्यान देने योग्य कुछ बातें

बकरी पालन करते समय सामान्यतः निम्नलिखित बातें आवश्यक रूप से ध्यान रखें।

- बकरियों के प्रजनन में अंतः प्रजनन से बचाव करें, इसके लिये 15 से 20 बकरियों के झुण्ड पर 2 से 4 वर्ष की आयु का एक पूर्ण स्वस्थ नर शुद्ध नस्ल का बकरा रखें जिसे हर 2 से 3 साल के अंतराल पर बदलते रहना चाहिये।
- समय–समय पर बकरियों के समूह से अनुपयोगी बकरियाँ जैसे लगड़ी–लूली, नाजुक, छोटी, कमजोर, खराब थन वाली, कम दूध देने वाली, अशुद्ध नस्ल, बीमार, जिनकी टांगे आपस में भिड़ती हों आदि बेकार बकरियों को अपने फार्म से हटाते रहना चाहिये।
- देखा गया है कि ज्यादातर बकरियां और उनके बच्चे सर्दियों में ठंड के प्रकोप के कारण मर जाते हैं। इसलिये सर्दियों के दिनों में बकरियों को ठंड से बचाव के लिये विशेष ध्यान रखना चाहिये। ठंड के दिनों में बकरियों के आकार के अनुसार 50 से 100 ग्राम मेंथी दाना, 40 से 80 ग्राम गुड़, 4 से 6 लहसुन की कलियां (पुती) तथा अरहर का भूसा आवश्यक रूप से खिलाना चाहिए। रात के समय बाड़ों में बकरियों को ठण्ड् से बचाने हेतु आग से उन्हें तपाना भी बेहतर रहता है।
- बकरियों को हमेशा स्वच्छ एवं ताजा पानी ही पिलाना चाहिए।

- बकरियों के आहार में नमक और खनिज लवण मिश्रण का समावेश अवश्य करें।
- बकरी बाड़ों की नियमित साफ–सफाई पर ध्यान रखें, इस हेतु बाड़ों में सप्ताह में कम से कम एक दिन चूना अथवा फिनाइल के घोल का छिड़काव अवश्य करना चाहिए।
- अपनी बकरियों को ऐसी जगह पर चराने नहीं ले जायें जहां अन्य रोगग्रस्त अथवा बीमार बकरियाँ भी चरने के लिये आती है। वहां से छूत लगने का भय बना रहता है।
- बकरियों को पेड़–पोधों की पत्तियां खिलाकर आहार पर आने वाली लागत को कम किया जा सकता है।
- मांस के लिये तैयार किये जाने वाले नर बकरों का एक माह के भीतर बधियाकरण करा देना चाहिये।
- मांस हेतु बिक्री किये जाने वाले नर बकरों को बकरी ईद के मौके पर अथवा त्यौहारों के अवसर पर बिक्री करने से अच्छी कीमत प्राप्त की जा सकती है।

चित्र 7 एवं 8

उच्च तुंगता वाले हिमालयी क्षेत्र में भेड़ और बकरी की स्थिति तथा पशुपालन व्यवस्था

विजय के भारती, प्रभात कुमार, साहिल कालिया एवं रवि बिहारी श्रीवास्तव

रक्षा उच्च तुंगता अनुसन्धान संस्थान (डिहार), रक्षा अनुसन्धान एवं विकास संगठन, लेह (जम्मू एवं कश्मीर)

परिचय

उच्च तुंगता पर निवास करने वाले किसानों एवं जवानों को आजीविका के लिए भेड़ और बकरी पालन पर निर्भर रहना पड़ता है। इस क्षेत्र में कड़ाके की ठंढ़ और शुष्क जलवायु होने के कारण पशुओं के विकास और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निम्न तापमान (+30 से –35 डिग्री सेल्सियस), वायुदाब तथा अनुपयुक्त चारा होने के कारण लेह–लदाख (३०४८–३६५८ मीटर एमएसएल) में उपस्थित बाहरी जानवरों की जीवन अनुकूलता असहनीय बन जाती है। जलवायु की ऐसी परस्थितियाँ पशुपालन के प्राकृतिक वास के लिए उचित नहीं हैं। लेह–लद्दाख मे सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक तथा तकनीकी दृष्टिकोण से पशुधन उत्पादन और विशेष रूप से छोटे जानवरों से हाने वाले उत्पादन उपेक्षित हो जाते है। उच्च तुंगता पर स्वदेशी भेड़ और बकरी प्रबंधन प्रणालियों के शोध हेतु विज्ञान प्रबंधन प्रणाली की उपयोगिता काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

लेह–लद्दाख में मांस के लिए वाणिज्यिक तौर पर भेड़ और बकरी पालन हेतु संभावनाएं

बकरियों में प्रतिकूल परिस्थितियो के लिए अनुकूलन की विशिष्ट क्षमता व गुण होते हैं। ये गुण उनके भयावह ठंढ़, शुष्क हवा तथा असमतल बंजर भूमि वाले पर्वतीय इलाके में रहने हेतु काफी हद तक उत्तरदयी है। बकरी की वर्तमान भौगोलिक स्थिति दुनिया भर में अलग–अलग तरह से देखी जाती है। प्रायः दुधारू प्रकार की बकरियां शीतोष्ण कटिबंध में अधिक तथा पौष्टिक मांस वाले बकरियों की संख्या मुख्य रूप से उपोष्ण कटिबंधीय और उष्ण कटिबंधीय एशियाई और अफ्रीकी देशों मे ज्यादा पाई जाती हैं। चूँकि भारत मे रहने वाले लोग पुरातन परम्परा से काफी हद तक जुडे हुए होते हैं और जाति, सम्प्रदाय और धर्म की विविधता होने के कारण यहाँ के मांसाहारी लोग ज्यादातर, भैंस, गाय और सूअर के मांस से ज्यादा भेड़–मांस (मटन) तथा बकरी–मांस (चेवन) खाना ज्यादा पसंद करते हैं। इसलिए रक्षा उच्च तुंगता अनुसन्धान संस्थान (डिहार), लेह नें ठंढ़े रेगिस्तान के लिए एक विशेष जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा ब्रायलर भेड़ और संकर बकरी उत्पादन करने की तकनीक विकसित की है। यह नवनिर्मित नस्ल वाले जानवर प्रतिकूल वातावरण में भी अपना जीवन सहजता से निर्वाह कर अच्छी गुणवत्ता वाले मांस उत्पादन में अहम भूमिका अदा कर रहे हैं। वैज्ञानिको के सहयोग से विकसित यह तकनीक स्थानीय किसानों और उपस्थित भारतीय सेना के लिए मील का पत्थर साबित होता प्रतीत हो रही है। स्थानीय लोगों के लिए यह परिणाम लघु व्यापार के लिए भी काफी महत्वपूर्ण बन गये हैं तथा आजीविका के लिए सराहनीय सा प्रतीत होता नजर आ रहा है।

लेह–लद्दाख में भेड़ और बकरी पालन की मुख्य विशेषताएं

लेह–लद्दाख की प्रतिकूल परिस्थितियों में छोटे जुगाली करनेवाले पशु–उत्पादन में काफी समस्याएं होती हैं। प्रतिकूल वातावरण, अनाज तथा चरागाहों की कमी, सुदूर इलाकों के गावों मे रहने वाले जानवरों के सामान्य स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इसके अलावा, पशुओ के अनुपयुक्त स्वास्थ्य देखभाल, पशु प्रजनन तकनीक की कमी, चारा का अभाव और आम आदमी में जानवरों की

देखभाल में लापरवाही से पशुओं के सतत संरक्षण तथा विकास में संतोषजनक परिणाम देखने को नही मिलता है। लेह–लद्दाख का पर्यटन के रूप में तीव्र गति से विकास होने के कारण स्थानीय लोगों का ध्यान अब होटल प्रबंधन या अन्य पर्यटन–संबंधी व्यवसाय की ओर आकृष्ट होता जा रहा है। इससे पशुधन उत्पादन भी काफी हद तक सकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ है। छोटे जुगाली करनेवाला इन जानवरों के कारण किसानो मे मांस उत्पादन के लिए एक बार फिर से प्रेरणा जागी है। हाल के वर्षो में यहाँ स्थानीय किसानों ने शिक्षा तथा विकास के सुधार मे चल रही केद्रीय तथा स्थानीय सरकारों, रक्षा वैज्ञानिकों (डिहार), भारतीय सेना, गैर सरकारी संगठनों के चल रहे कार्यक्रमों का अनुकरण करते हुए आजीविका के समर्थन में पशुधन उत्पादन प्रणालियों के द्वारा गरीबी उन्मूलन और बुनियादी ढांचे में सुधार, के लिए प्रेरणा शक्ति हासिल किया है। यहाँ पर भौगोलिक तथा जलवायु परिस्थितियाँ मे विविधिता होने के कारण भेड़ और बकरियों के चारा और चरागाह वाले भूमि की उपलब्धता भी संतोषजनक नही मानी जाती है। इस कारण किसान जानवरों को चराई के लिए विभिन्न प्रवासी मार्गो के द्वारा जल स्रोत वाली जगहों पर समयानुसार ले जाते हैं तथा सर्दी के मौसम में कम ऊँचाई पर तथा गर्मी के मौसम में अपेक्षाकृत ऊँची–ऊँची चारागाह वाले पहाड़ियों पर चराई के लिए लेकर जाते हैं।

गर्मी के समय स्थानीय विलो, सीबकथॅार्न, पोपुलर तथा हिमालय के पेड़–पौधों की झाड़ीदार पत्तियों तथा स्थानीय लूसर्न का मिश्रण पशुओं के पौष्टिक आहार तथा खनिज लवण का स्रोत होता है। घास संरक्षण के लिए चारागाह या चारा पेड़ों का वृक्षारोपण किसानों के लिए नया है, हालांकि कुछ किसानों को घास उत्पादन के लिए लूसर्न, जई, जौ आदि के रूप मे भी आशा की किरण नजर आ रही है. यहाँ की शुष्क हवा तथा संक्रमण रहित वातावरण गर्मी के दिनों मे एकत्रित जानवरों के खाद्य संरक्षण में भी अहम भूमिका निभाती है। पशु चिकित्सा में उदासीनता यहाँ पर एक बड़ी समस्या है। स्थानीय किसान परम्परागत रूप से जानवरों के उपचार में काफी माहिर हैं परन्तु आधुनिक बीमारी के आगमन होने से चिकित्सकों की भागीदारी भी अहम् बन गई है। पशु की छाती रोग (उच्च तुंगता बीमारी/पर्वत बीमारी/उच्च तुंगता फेफड़े का एडिमा आदि) अस्वाभाविक श्वसन, दिल वृद्धि दर, उच्च रक्तचाप, कम ऑक्सीजन दबाव जैसी बीमारियां अक्सर बाहरी पशुओं के अनुकूलता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है

डिहार के अनुसंधान और ठंढ़ रेगिस्तान मे भेड़ और बकरी उत्पादन की दिशा में प्रयास

उच्च तुंगता मे ठंढ़ रेगिस्तान, अत्यधिक तापमान और कठोर जलवायु परिस्थितियां पशुपालन को बहुत कठिन बना देतीं हैं। चूकिं लद्दाख सामरिक दृष्टि से देश का एक महत्वपूर्ण स्थान है अतः सशस्त्र बलों की बड़ी संख्या इस क्षेत्र में तैनात की गई है। सशस्त्र बलों के कुशल प्रदर्शन के लिए सैनिकों को स्वस्थ पोषण की आवश्यकता होती है। लेह– लद्दाख मे चौकियों पर तैनात सैनिकों की ताजा मांस की कुल आवश्यकता लगभग 3146 किग्रा दिन है। इसके अलावा, लेह क्षेत्र की नागरिक आबादी के लिए लगभग 12000 किलो दैनिक ताजा मांस की मांग है। परन्तु इस क्षेत्र में अनुमानित मांस उत्पादन केवल 3000 किलोग्राम दिन है। अतः इस क्षेत्र में सैनिकों और स्थानीय नागरिको को क्रमशः 100 % और 60 % मांस की उपलब्धता की कमी देखी जा सकती है। इस समस्या को देखते हुए डिहार के शोधकर्ता इस क्षेत्र में स्थित पशुओं के विकास हेतु भेड़ और बकरी के संकर नस्लों को उत्थान में तत्परता से लगे हुए हैं तथा काफी हद तक सफलता भी हासिल की है।

तालिका 1: मांस वाले बकरी और भेड़ के लक्षण और विशिष्ट बाधाओं में लद्दाख के लिए अनुकूलित संकर पशुओं का विकास

पशु विकास के लक्षण	पशु विकास होने के लक्षण के प्रति पर्यावरण के प्रतिकूल प्रभाव	इस क्षेत्र के पशु विकास मे होने वाले लक्षणों के महत्त्व
तेजी से विकास	अल्प–ऑक्सीयता, पशुओं के विकास मे बाधक	इस क्षेत्र मे तैनात सैनिकों और क्षेत्रीय नागरिकों के लिए मांस उत्पादन मे बढ़ोत्तरी की जरुरत
जीवन हेतु रोग–प्रतिरोधी क्षमता	उच्च तुंगता के तनावपूर्ण वातावरण से पशुओं में निमोनिया और खतरनाक रोगों के प्रति अतिसंवेदनशीलता तथा शरीर की कोशिकाओं एवं ऊतकों की मृत्यु	इस क्षेत्र में कड़क ठंढ़ से कुशल और स्वच्छ मांस आपूर्ति के लिए पशुओं के रोग–प्रतिरोधी क्षमता उत्तरजीविता के प्रति उत्तरदायी
वजन विकास दर	विपरीत जलवायु वजन विकास दर को विपरीत रूप से प्रभावित करती है	वजन विकास दर पशुओं मे किसानो को सकारात्मक विकास के लिए जरुरी होता है।
बाल/ऊन की विशेषता	बाल/ऊन पशु के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक सुरक्षा कवच का कार्य करतें हैं तथा कड़क एवं कठोर वातावरण से बचाव करता है।	यह एक बेहतर सुरक्षा के साथ शारीरिक ताप के बहिर्गमन से भी बचाव करता है और सर्दी के महीने में शारीरिक नुकसान होने से सुरक्षा प्रदान करता है।
आहार रूपांतरण अनुपात	इस क्षेत्र मे पशुओं के आहार पूर्ति में चारा की कमी पशुओं के आहार रूपांतरण एवं विशिष्ट पोषक तत्वों की आवश्यकता के साथ–साथ अल्पाइन चराई को पचाने की क्षमता की दिशा में ध्यान दर्शाता है।	यह पशुओं के पालन मे खर्च का 50% से अधिक पैसा बेहतर आहार में एवं रख रखाव मे चला जाता है।
अल्प–ऑक्सीयता वाले क्षेत्रों में अनुकूलता	अल्प–ऑक्सीयता तथा कडक ठंढ़ उच्च तुंगता ऊंचाई पर पशुओं को अधिक शिकार बनाता है।	उच्च तुंगता पर जानवरों का अनुकूलन उनके विभिन्न रोगों जैसे फेफड़े का एडिमा तथा जोरों के दिल की विफलता की पहचान होती है जिस वजह से जानवरों के स्वास्थ्य सुधार तथा मृत्युदर मे भी साकारत्मक परिणाम मिलता है।
मांस की विशेषताएं	उच्च तुंगता वाला तनावपूर्ण पर्यावरण प्रोटीन, वसा, खनिज–लवण तथा ऊर्जा का असंतुलित उपापचय शरीर में मांस की संरचना और इसकी गुणवत्ता को प्रभावित करती है।	खास करके सर्दिओं मे सैनिकों को सुरक्षित, स्वस्थ, स्वच्छ और बेहतर पोषण प्रदान करने के लिए ताजा मांस अहम् भूमिका निभाता है।

ब्रॉयलर भेड़ प्रौद्योगिकी उत्पादन

पशुओं की सीमित उपलब्धता के कारण स्थानीय स्तर पर ताजा मांस की कमी बनी रहती है। इस कमी को पूरा करने के लिए बाहर से मांस आयात करना आर्थिक रूप से महंगा साबित होता है साथ ही इसकी गुणवक्ता भी प्रभावित होती है। इस समस्या को हल करने के लिए डिहार के शोधकर्ताओं नें इस क्षेत्र के लिए तेजी से बढ़ने वाली तथा मांस आपूर्ति की समस्या के निदान हेतु ब्रॉयलर भेड़ को विकसित किया है। ब्रायलर भेड़ उत्पादन के लिए मुख्य रूप से दो बातों को ध्यान मे रखा गया है: (अ) प्राकृतिक चयन, तथा (ब) संकरण तकनीक। इसके तहत मुजफ्फरनगरी और चाँगथांगी भेड़ के प्रजनन से ब्रॉयलर भेड़ उत्पन्न किया गया है।

तालिका 2: मुजफ्फरनगरी, चाँगथांगी और उनके संतान (F1) भेड़ नस्लों की तुलना (शरीर भार कि.ग्रा. में)

विवरण	मुजफ्फरनगरी	चान्गथांगी	मुजफ्फरनगरी xचाँगथांगी (F1)	चाँगथांगी xमुजफ्फरनगरी (F1)
जन्म भार	3.40 ± 0.47	1.85 ± 0.07	3.60 ± 0.60	2.66 ± 0.42
दूसरा सप्ताह	4.20 ± 2.54	3.10 ± 0.90	4.15 ± 2.65	3.48 ± 2.40
चौथा सप्ताह	5.50 ± 2.11	3.80 ± 1.69	7.06 ± 2.05	4.98 ± 2.04
छठा सप्ताह	6.77 ± 3.90	5.20 ± 3.11	10.13 ± 3.10	5.86 ± 2.62
आठवां सप्ताह	9.30 ± 3.68	6.50 ± 4.10	11.73 ± 3.8	17.20 ± 1.96
वजन में औसत दैनिक वृद्धि (ग्रा.)	105.36 ±17.77	83.04 ±25.90	145.18 ± 27.74	81.07 ±7.27

(जाधव एवं सहयोगी., 2011)

इस ब्रॉयलर भेड़ का वजन आठवें सप्ताह तक प्रतिदिन 145 ग्राम की दर से बढता है जो कि अपने माता तथा पिता के प्रतिदिन के वजन दर से भी काफी ज्यादा है। इस ब्रॉयलर भेड़ के रक्त जैव रासायनिक अवयव की जांच के द्वारा वैज्ञानिकों नें इस नस्ल को उच्च तुंगता वाले क्षेत्रो के लिए अनुकूल क्षमतावाला और बेहतर पोषक तत्व प्रदान करने वाला स्रोत बताया है। ब्रॉयलर भेड़ रक्षा बलों के साथ–साथ ऊंचाई पर स्थित लद्दाख के स्थानीय किसानों और सहकारी समितियों के लिए भी वरदान साबित हो रही है।

भेड़ के लिए स्थानीय आहार

इस क्षेत्र में पशुओं के लिए पारंपरिक आहार और चारा की अनुपलब्धता पशु उत्पादकता में सुधार लाने के सीमित कारकों में से एक है। डिहार ने इस क्षेत्र के स्थानीय प्राकृतिक स्रोतों से, संतुलित आहार विकसित किया है जो भेड़ तथा बकरियों के लिए एक किफायती आहार है। इसके मुख्य अवयवों मे 20% गेहूं का भूसा, 15% ल्यूसर्न घास, 10% पत्ते (विलो और ध्रवीय पेड़ पत्तियों के मिश्रण), 10% सीबकथॅर्न की पत्तियां, 5% सीबकथॉर्न खली, 5% खर्बानी केक आदि हैं। जिसमें 12% सोयाबीन भोजन, 4% गेहूं चोकर, 18.6 % कुचला जौ अनाज, 0.2% खनिज मिश्रण, और 0.2% नमक डाला गया है। इन अवयवों के संयुक्त प्रभाव से पता चला है कि 10.16 ± 0.74 ग्राम आहार से प्रति किलोग्राम वजन बढ़ने से 77.06 ± 5.61 रु. का लाभ मिलता है। अतः इन आहार के परिणामो से दुनियाभर के ठंढ़ रेगिस्तानी भाग में पल रहे भेड़ के लिए सकारात्मक संभावित संकेत मिलते है। इन सारी उपलब्धियों को अर्जित कर अब डिहार के शोधकर्ता इस क्षेत्र में मांस तथा दूध आपूर्ति के उद्देश्य से बकरी, भेड़ तथा गायों के बेहतर परिणाम के

लिए तंत्रिकावर्धक स्वास्थ्य खुराक के रूप में औषधीय बहुपौष्टिक (मल्टीनुत्रिएन्ट) टॉफी और कम लागत से निर्मित संतुलित राशन के लिए काम कर रहे हैं।

मांस के लिए क्षेत्र विशिष्ट संकर बकरी (ब्रॉयलर बकरी) का विकास

डिहार द्वारा विकसित ब्रायलर भेड़ पालन के उपयुक्त सफलता के बाद, अब यहाँ के शोधकर्ता स्थानीय स्तर पर ताजा मांस उत्पादन की दिशा मे अनुसंधान एवं विकास में लग गए हैं। इससे बकरी मांस उत्पादन मे बहुत जल्द ही बढोतरी होने की संभावना नजर आने लगी है। इसके उच्च कोटी के मांस के स्वाद तथा गुणवत्ता के कारण स्थानीय आबादी और सैनिकों की ओर से इसकी माँग तेजी से बढ़ रही है। हालाकि इस मांस की उपलब्धता अभी सीमित है परन्तु तकनीक के स्थानीय लोगो में स्थानान्तरण से यह आसार भी इस वर्ष के अंत तक पूरा होने की संभावना नजर आने लगी है। पालतू जुगाली बकरियों की एक मुख्य विशेषता यह है कि वे ज्यादातर अपना जीवन मिट्टी, पौधों और विविधिता वाले जलवायु के साथ बिताती है जिससे इस के पशुपालन तकनीक मे जयादा समस्या नहीं आती है। बकरियों की एक मुख्य विशेषता यह है की ये वातावरण के उद्दीपन के अनुसार किसी भी विपरीत परिस्थिति (ठंढ़ शुष्क, गर्म शुष्क, गर्म और आर्द्र शीतोष्ण) को सहजता से अनुकूल बना लेती है। इसी विशेषता का अनुसरण कर डिहार का यह प्रयास ठंडे रेगिस्तानी क्षेत्र में बकरी नस्ल के द्वारा सोने पे सुहागा सा प्रतीत हो रहा है। यह प्रयोग ब्लैक–बंगाल (का.ब.) और सिरोही (सीरो), जमुनापारी, मारवाड़ी, बरबरी, जखराना, पश्मीना और चेगू के आनुवंशिक लक्षणों के ध्यान मे रखते हुए किया गया है। यद्दपि स्थानीय बकरी जैसे बकरवाल और चाँगथांगी नस्लों के बेहतर अनुकूलनशीलता और वृद्धि दर होने से अस्सी के दशक के दौरान किए गए एक अध्ययन में बेहतर प्रजनन पाया गया है तथापि अक्लेमेटाईजेसन/आरंभिक अनुकूलन के अध्ययन से यह भी निष्कर्ष आया है कि निम्न ऊँचाई पर रहने वाली ब्लैक–बंगाल और सिरोही बकरियां लद्दाख के कठोर परिस्थितियों मे भी बहुत अच्छी तरह से अनुकूलित है। इनमें से ब्लैक–बंगाली बकरी जो कि एक साल मे प्रायः दो बार, एक साथ ही दो, तीन या कभी–कभी चार बच्चे को भी जन्म देती है और 9–10 महीने बाद पुनः प्रजनन के लिए तैयार हो जाती है। इस नस्ल का मांस काफी उत्कृष्ट और स्वादिष्ट भी है। इसी प्रकार सिरोही नस्ल का नर शारीरिक जीवित औसत वजन 50 किलोग्राम, मादा बकरी का 23 किलोग्राम और जन्म के समय वजन 2.0 किलोग्राम देखा गया है। इस नस्ल की बकरियां प्रायः 19 महीने के बाद पहला बच्चा देती है। ये प्रायः एक बार मे एक बच्चे की ही माँ बन पाती है और एक साल मे प्रायः दो बच्चे ही जन्म देती है। इस नस्ल के मांस भी काफी अच्छी गुणवत्ता वाली मानी जाती है।

तालिका 3: विभिन्न बकरिओं से प्राप्त मांश के उत्पादन अवययों का आंकलन

नस्ल	जैव वजन	गर्म कारकस	ड्रेसिंग (%)	हड्डी (%)
सिरोही	37.4 कि.ग्रा.	21.8 कि.ग्रा.	52	13
ब्लैक–बंगाल	10.00 कि.ग्रा.	4.47 कि.ग्रा.	44	–

ये नस्ल से इस क्षेत्र के लिए अनुकूलनशील तथा स्थानीय बकरी चाँगथांगी से संयुग्मन (प्राकृतिक प्रजनन और कृत्रिम गर्भाधान) के लिए अच्छा विकल्प है। उच्च तुंगता मे अनुकूलन के लिए मौजूद डीएनए के कारण अनुकूलता के लिए काफी महत्वपूर्ण है। हम आण्विक सुधारों के लिए मिश्रित प्रजनन और चयन के तरीकों का अनुकरण कर रहे हैं। इस क्षेत्र मे मांस–वृद्धि और अनुकूलनीय लक्षण ों के लिए डीएनए के अलील बिंदु (मार्कर की सहायता की चयन प्रक्रिया/मास) की पहचान भी की जा रही है. इस प्रयोग से विशिष्ट तनाव और चुनौतियों को सहजता से समाधन भी किया जा सकता है। चाँगथांगी नस्ल की बकरियां इस क्षेत्र की स्थानीय हैं और लद्दाख के ऊंचाई

वाले अपर्याप्त ऑक्सीजन वाले क्षेत्रौं के लिए भी काफी अनुकूलित हैं। क्षेत्र विशिष्ट संकर बकरी उत्पादन के लिए दो अलग अलग नस्ल की बकरियों का चयन किया गया था। इसमें से मादा सिरोही नस्ल मांस वृद्धि के लिए तथा नर चाँगथांगी उच्च तुंगता मे अनुकूलन वाले उद्देश्य के लिए प्रयुक्त पर आधारित है। प्रारंभिक प्रयोग (और प्रजनन प्रदर्शन) के परिणाम बहुत उत्साहजनक हैं। क्षेत्र विशिष्ट संकर बकरी का अब वाणिज्यिक उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण पर ध्यान दिया जा रहा है। इससे एक ओर एफ. स.डी के माध्यम से सेना के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली मांस की आपूर्ति संभव हो रही है और दूसरी ओर यह सैनिकों के पौष्टिक खाद्य पदार्थो की गुणवक्ता एवं उपलब्धता को सहज बनाता है। इसके अतिरिक्त यह स्थानीय रूप से ताजा, स्वच्छ मांस उत्पादन करके इस क्षेत्र के नागरिकों के पोषण आपूर्ति की स्थिति में सुधार और रोजगार सृजन से उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुद्रढ करने मे योगदान दे रहा है। चूँकि डिहार की यह तकनीक काफी नूतन है और इस महत्वाकांक्षी परियोजना के लिए स्थानीय तथा देश के सीमांत पर तैनात भारतीय सैनिकों की भूमिका भी अहम है इसलिए इस तकनीक को बढावा देने के लिए इनलोगों को तकनिकी तौर पर प्रशिक्षण भी समय–समय पर दिया जा रहा है। हाँलाकि यह बात सच है कि उच्च तुंगता पर पशुओं का प्रबन्धन काफी दुर्गम और चुनौती का कार्य है लेकिन डिहार के शोधकर्ताओं के अथक प्रयास और लगन से पशु प्रबन्धन में एक नया आयाम झलकने लगा है जिससे न सिर्फ पशु स्वस्थ हैं बल्कि पशुओं के प्रजनन तथा उनके शारीरिक विकास में भी संतोषजनक परिणाम आने लगे है। बकरी का मांस उत्पादन की दृष्टि से भी काफी लाभ होने लगा है।

उच्च तुंगता पर अनुकूलन हेतु संतोषजनक प्रदर्शन के लिए फार्म प्रबंधन रणनीति

यह सर्वविदित है कि किसी पशु या नस्ल के सभी प्रकार के वातावरण में खाद्य योग्य उत्पादन कुल अन्तर्ग्रहण के रूपांतरण का समुचित परिणाम नहीं हो सकता और न ही इसका किसी भी कृत्रिम कारण से आनुवंशिक पुनर्निमाण कर सकते हैं। इस चुनौती को स्वीकार कर डिहार के शोधकर्ताओं ने संकर प्रजनन द्वारा संकर पशु (अधिक मांस उत्पादन) का उत्पादन कर माता – पिता से भी बेहतर अनुकूलता वाली एक नई नस्ल को जन्म दिया है जो उच्च तुंगता वाले ठिकानों पर भी अनोखा प्रदर्शन कर रहा है।

इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पशु रोग भी बकरीपालन के लिए प्रमुख बाधा है। समय से पहचान और रोगों की रोकथाम के लिए एक स्वस्थ सुरक्षा रोग निवारण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। क्षेत्र में बीमारियां जैसे निमोनिया, चेचक, पशु का छाती रोग, मोतियाबिंद, पी. पी.आर., कोलीबैसिलोसिस, ब्रूसीलोसिस, असमय बिना वजह गर्भपात तथा विशेष रूप से अर्द्ध गहन प्रबंधन परिस्थितियों में ठंड तनाव के कारण नवजातों की मृत्यु दर एक चुनौती है। इस समस्या को दूर करने के लिए संतुलित पोषण, प्राकृतिक तथा कृत्रिम (विटामिन इ, सी, सेलेनियम, जिंक इत्यादि एंटीऑक्सीडेंट की उचित खुराक, कोलस्ट्रम की प्रारंभिक खिला और संक्रमणरहित पशु रखाव की प्रबन्धन प्रणाली को भी अपनाया गया है। कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए कृत्रिम बुखारी (हीटिंग) की व्यवस्था भी की गई है।

आवश्कयता आविष्कार की जननी होती है इसलिए उच्च तुंगता वाले क्षेत्रों में उचित चारागाह, पशु रोग अन्वेषण तथा सही रख–रखाव से लघु जुगाली वाले पशुओं की पशुपालन व्यवस्था को और सुदृढ़ किया जा सकता है।

निष्कर्ष

उपयुक्त बातों से यह निष्कर्ष निकलता है की उच्च तुंगता पर भेड़ और बकरियों की जीवन शैली प्रतिकूल बनी रहती है। अतः यहाँ पर जानवरों की उचित देख–रेख महत्वपूर्ण तो होती ही है साथ में इनके लिए उचित पौष्टिक आहार भी अहम् है।

लेह–लद्दाख क्षेत्र की कठिन परिस्थितियों में पशु आनुवंशिक संसाधनों का मूल्य और महत्व

मोनिका सोढ़ी, प्रीति वर्मा, संदीप मान, प्रभात कुमार[1], विजय भारती[1], प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

लद्दाख जिसे "ऊंचे दर्रों (passes) की भूमि" के नाम से भी जाना जाता हैं, उत्तरी भारत के जम्मू और कश्मीर प्रान्त में एक स्थान है, जो उत्तर में काराकोरम पर्वत और दक्षिण में हिमालय पर्वत के बीच में स्थित है। लद्दाख की सीमाएं पूर्व में तिब्बत से, दक्षिण में लाहौल–स्पीति से, पश्चिम में जम्मू कश्मीर व बलोचिस्तान से और उत्तर में कराकोरम दर्रे के क्षेत्र से मिलती हैं। लद्दाख की ज्यादातर उंचाई 11,000 फीट (3,350 मीटर) से ऊपर है। यह जम्मू और कश्मीर में सबसे कम आबादी वाले क्षेत्रों में से एक है लद्दाख में बहने वाली प्रसिद्ध सिन्धु नदी इसकी जीवन रेखा का काम करती हैं। लेह और कारगिल लद्दाख के दो महत्वपूर्ण जिले हैं। लद्दाख देश का सबसे उच्चतम, ठंडा और शुष्क क्षेत्र है व यहाँ की जलवायु अत्यंत शुष्क एवं कठोर है। यहां गर्मियां छोटी, शुष्क और खुशनुमा होती हैं। गर्मियों में तापमान 3 से 35 डिग्री सेल्सियस रहता है और सर्दियों में यह तापमान –20 डिग्री सेल्सियस नीचे चला जाता है जिस कारण यहाँ की अधिकांश धरती कृषि योग्य नहीं है। यहां वर्षा बहुत कम तथा बर्फबारी ज्यादा होती है। लगातार बर्फबारी के कारण इसकी चोटियां बर्फ से ढकी रहती हैं। ऐसे ठंडे शुष्क क्षेत्र में जहाँ भूमि संसाधन कम है वहाँ पशुधन ही लद्दाखियों के जीवन यापन का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। लद्दाख के स्तनधारी पशुओं में मुख्य रूप से गाय, भेड़ व बकरी पाए जाते हैं। भारवाही पशुओं में याक, जंस्कारी घोड़े, दो कूबड़ वाले ऊँट आदि पशु शामिल हैं। इसके इलावा लद्दाख में हिम तेंदुएं भी पाए जाते है। लंबी पूंछ वाले यह जीव सफेद रंग के और बर्फ से मिलते जुलते हैं। इसलिए इनको बर्फानी तेंदुआ या हिम तेंदुआ भी कहा जाता है। यहाँ के क्षेत्रीय जानवरों के बाहरी फर लंबे बालों से बने होते हैं जो इनको हवा एवं पानी से सुरक्षित कर कड़क ठंढ़ से राहत दिलाते है। अंदरुनी ऊनी फर शरीर की गर्मी को बाहर निकलने नहीं देती। इस लेख का मुख्य उद्देश्य लेह लद्दाख में पालतू पशुधन संसाधनों की वर्तमान स्थिति, उनकी उपयोगिता और लद्दाख की कठोर परिथस्थियों में पशुधन उत्पादन के महत्व की जानकारी देना हैं।

चित्र 1 – लेह लद्दाख के दुर्गम क्षेत्र एवं कठोर परिस्थितियाँ

---

[1] रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान, लेह (जम्मू एवं कश्मीर)

लेह लद्दाख के प्रमुख पालतू पशु संसाधन

लद्दाख क्षेत्र के स्तनधारी एवं भारवाही पशु दोनों ही स्थानीय लोगों के जीवन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लद्दाख वासी के जीवन यापन के क्षेत्र में गाय , बकरी, भेड़ , घोड़े , ऊंट आदि पशु उपलब्ध हैं । लद्दाख के दो जिलो लेह और कारगिल में उपलब्ध विभिन्न पशुओं की संख्या सारणी 1 में दी गई हैं। जैसा की सारणी 1 से विदित होता है, यहाँ पर भैंस, टट्टू, खच्चर और सूअर नहीं पाए जाते हैं।

तालिका 1: लद्दाख के लेह और कारगिल जिलो में उपलब्ध विभिन्न पशु सम्पदा एवं उनकी संख्या

जिला	गाय	याक	भेड़	बकरी	घोड़ा	गधे	ऊंट
लेह	35370	21874	60799	185856	5418	7936	141
कारगिल	45604	16798	161683	88478	7841	7116	0

गौधन

देशी गाय : लद्दाख में देसी गाय अच्छी संख्या में पाई जाती हैं।यह काले या भूरे रंग की होती हैं।इनकी लैक्टेशन अवधि 18 महीने से ज्यादा है। कठोर परिस्थितियों, पारंपरिक कृषि पतियों, पशु चारे के अभाव और पानी की कमी के बावजूद भी स्थानीय स्वदेशी गाय तीन से चार किलो दूध देती है और स्थानीय लोगों की जरूरतों को पूरा करती है। इस प्रकार स्थानीय गाय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जुलाई 2011 में लेह लद्दाख के विभिन्न गावों (शेय, थिकसे, खर्दुग, चोगलमसर, हुंदर और छूछूत) में देसी गाय के दूध उत्पादन से सम्बंधित सर्वेक्षण किया गया (लेह जिले में डेयरी फार्मिंग की समस्याएं और सम्भावनाएँ: खुर्शीद शाह) (सारणी 2)। इस सर्वेक्षण में घर घर से एकत्र जानकारी से यह पता चला कि पारंपरिक कृषि पद्धतियों, सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों, सीमित चारे और पानी की कमी होने के बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों में दूध उत्पादन 3 से 4 किलो है। इस सर्वेक्षण से हमें यह जानकारी भी मिलती है की लेह में गाय के चारे हेतु अधिक भूमि उपलब्ध नहीं है और यहाँ के क्षेत्र अनुपजाऊ भी है। इस कारण विभिन्न गावों में गायों की संख्या और नस्लों की विभिन्नता के साथ साथ दूध उत्पादन में भी विभिन्नता देखी गई।

तालिका 2: लेह के विभिन्न गाँवों की गायों में विभिन्नता (जून, 2011)

गाँव	घरों की संख्या	गाय	दूध उत्पादन (लीटर)	प्रतिशतता	उपजाऊ क्षेत्र	अनुपजाऊ क्षेत्र
शेय	100	220	1100	33.54	884	166
थिकसे	50	101	505	15.4	330	40
खर्दुग	50	99	300	9.14	403	49
चोगलमसर	100	24	120	3.65	78	56
हुंदर	50	125	750	22.87	619	128
छूछूत	50	86	504	15.37	272	48
कुल	400	655	3279	100	2586	487

- **विदेशी गाय:** देशी गाय के साथ–साथ लेह में जरसी, होल्स्टीन जैसी विदेशी गाय भी पाई जाती हैं। अच्छे खान पान के साथ ये गायें प्रायः 6–10 लीटर प्रति दिन के हिसाब से दूध देती हैं। परन्तु तीसरी और चौथी पीढ़ी मे इनकी दूध देने की क्षमता घट कर 3–6 लीटर प्रति दिन तक ही रह जाती है। जर्सी प्रतिदिन दो लीटर दूध देती हैं और इनकी लैक्टेशन अवधि 6–8 महीने है। विदेशी नस्लों की गाय में दूध की मात्रा चाहे देशी नस्ल से अधिक रहती है किन्तु लेह के कठिन वातावरण (कम ऑक्सिजन व कम तापमान) में इनकी सामान्य गतिविधियाँ बाधित होती हैं। साथ ही साथ विदेशी नस्लों को भारी मात्रा में चारे की भी आवश्यकता होती है जो वहाँ आसानी से नहीं मिलता। बर्फबारी के कारण 6–8 महीने तो हरा चारा मिलना नामुनकिन ही हो जाता है। लेह में लोगो का मानना है कि शुरू के दो–तीन पीढ़ी के बाद बाहरी पशुओं की स्थिति बहुत ही दयनीय हो जाती है। इन पशुओं मे रोग से लड़ने की प्रतिकारी क्षमता में भी कमी हो जाती है और रोग के साथ इनका दुग्ध उत्पादन भी कम हो जाता है।
- **संकर गाय:** देशी व विदेशी गायों की संकर नस्लों के इलावा, लेह क्षेत्र में गाय और याक की संकर नस्लें जो और जोमो भी पाई जाती हैं। संकर नर को 'जो' तथा संकर मादा को 'जोमो' कहते हैं। जो जहाँ खेतों की जुताई और सामान ढोने के लिए ईस्तेमाल किया जाता हैं वही जोमो लेह लद्दाख क्षेत्र में दूध के उत्तम स्रोतों मे से एक है। यह प्रतिदिन 5 से 6 किलो दूध देती है। इसकी प्रजनन क्षमता भी बहुत ज्यादा होती है और यह हर साल बच्चा पैदा करने की क्षमता रखती हैं। किंतु यह तेज गर्मी सहन करने में असमर्थ है और गर्मियों के दौरान इसका दूध उत्पादन कम हो जाता हैं।
- सन 2007 मे हुई 18 वीं पशुधन जनगणना के अनुसार लेह में उपलब्ध देशी, विदेशी व संकर गायों की संख्या सारणी 3 में दिखाई गई हैं। इस क्षेत्र में विदेशी गायों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही हैं। यह संख्या क्षेत्रीय प्राकृतिक गुणवत्ता को तो प्रभावित कर ही रही है, साथ ही साथ इनकी संख्या को यहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक वातावरण में सतत कायम रखने के लिए भारतीय शोधकर्ताओं के लिए बहुत बड़ी चुनौती बन गई है।

तालिका 3: लेह के विभिन्न ब्लॉकों में देशी, विदेशी और संकर गायों की संख्या

ब्लॉक	घरो की संख्या	विदेशी	देसी	कुल गाय	याक	जो/जोमो संकर गाय
खलत्सी	2499	574	3242	3816	2252	2605
खरु	1311	816	3825	4641	881	732
न्योमा	2137	92	2569	2561	5150	217
लेह	6749	9268	3377	12645	175	3100
दुर्बोक्	843	0	2605	2605	3438	0
नूब्रा	3041	668	9295	9963	1524	2841
कुल	16580	11418	24813	36231	13420	9495

याक

याक ठंडे रेगिस्तान का सबसे बड़ा जानवर है जिसे मुख्य: रूप से मांस, फाइबर, ईंधन, और परिवहन के लिए उत्तम माना जाता हैं। इसे पहाड़ों का जहाज भी कहा जाता है। जम्मू–कश्मीर राज्य की याक की कुल आबादी का 62.4 प्रतिशत लद्दाख क्षेत्र के लेह और कारगिल जिले में पाया गया है। यह जानवर चांगथांग और नुब्रा के पहाड़ी क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। याक आकार में गाय से छोटे होते हैं। इनकी ऊँचाई 6 फुट से 7.2 फुट तक होती है। नर याक 350 से 580 कि.ग्रा. के होते हैं और मादा याक 225 से 255 कि.ग्रा. की होती हैं। इनका शरीर काले घने, लम्बे और खुरदरे बालों से ढँका हुआ होता है जो इनको कठोर ठंढ़ से सुरक्षित रखते हैं। इनका मुख्य भोजन घास–पात है। ये पानी बहुत पीते हैं और जाड़ों में बर्फ खाकर अपनी प्यास बुझाते रहते हैं। लद्दाखियों के लिये याक एक मुख्य धन है। याक के शरीर का हर अंग किसी न किसी उपयोग में आता है। याक के मोटे बालो से कपड़े और टेंट के लिए मजबूत रस्सियाँ बनाई जाती हैं। याक के सिर और पूंछ से गहने बनाये जाते हैं जिसे तोहफे के रूप में दिया जाता है। इसके अतिरिक्त याक लद्दाख वासियों को दूध, मक्खन, पनीर, शिकार, चमड़ा, ऊन तथा गोबर देता है। गोबर का उपयोग आग तापने व भोजन बनाने में किया जाता हैं। लद्दाखी याक का मीट बड़े ही शौक से खाते हैं। याक के दूध से प्राप्त मक्खन से बनी चाय को "मक्खन चाय" कहते हैं जोकि लेह लद्दाख क्षेत्र की सबसे लोकप्रिय पेय मानी जाती है। यह पेय चाय पत्तियों से ना बनकर दूध, याक के मक्खन, नमक और हिमालय क्षेत्र में उपलब्ध पौधों से प्राप्त आसव के मिश्रण से बनती हैं। दिसंबर के सर्द महीने में जब लद्दाखियों की नसें जमने लगती है और उनके हाथ कांपने लगते है तब लद्दाखियों के लिए मक्खन चाय की तुलना में आराम दायक कुछ भी नहीं होता। ऊंचाई चढ़ने की याक की अद्‌भुत क्षमता के कारण ना केवल पहाड़ों की कठिन ढलानों में इनको सामान ढोने में उपयोग किया जाता हैं बल्कि इस पर पर्यटक सवारी कर भरपूर आनंद लेते हैं। यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि याक के बगैर हिमालय के कठिन वातावरण में यात्रा और व्यापार असंभव होता।

बकरी

बकरी जिसे आमतौर पर "गरीब आदमी की गाय" कहा जाता हैं, एक गरीब ग्रामीण के सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गाय के बाद बकरी एक ऐसा जानवर है जिसे लद्दाखी दूध और मांस के लिए पालते हैं।

- **पश्मीना/चांगथांगी बकरी:** क्षेत्रीय बकरी चांगथांगी के नाम से जानी जाती हैं जो की इसकी उत्पत्ति स्थान चांगथांगी पर आधारित है। लेह क्षेत्र की बकरी की आबादी जो की 3.20 लाख है उसमे पश्मीना/ चांगरा बड़ी संख्या में पाई जाती हैं। इसे चाँगलूक भी कहा जाता हैं । यह बकरी छोटे आकार की है लेकिन व्यवहार में साहसी और मजबूत होती है। इसकी गर्दन छोटी और कान मध्यम आकार के है। इसके सींग पतले और नोकीले हैं। यह बकरी –40 डिग्री सेल्सियस में भी अपना जीवन काफी सहजता से व्यतीत करती है। इसका औसत वजन नर के लिए 31 किलो और मादा के लिए 26 किलो है। इस नस्ल के बकरी के प्रजनन के लिए जुलाई से दिसंबर तक का समय आदर्श माना जाता हैं (गनई एट ऑल. 2011)। इसका पूरा शरीर मोटे बालो तथा लम्बी फाइबर से ढका हुआ है और इसके कंधे लंबी फाइबर से ढके रहते हैं। इसका मुख्य उत्पाद पशमीना रेशा है जिसकी सुंदरता, गर्माहट, कोमलता और रंगों और नमी को अवशोषित करने की क्षमता इसको सभी पशु रेशो में एक अनूठा स्थान दिलाती है। पश्मीना रेशे से बनी शॉल बहुत ही अच्छी और गर्म होती है और दुनिया भर में इसका निर्यात किया जाता है। पश्मीना का एक धागा सिर्फ 12 से 14 माइक्रोन्स का होता है। कश्मीरी कारीगर कई

पीढियों से प्रसिद्ध पश्मीना शॉल बनाने का काम करते हैं। पश्मीना शॉल प्रायः हाथ से बुनी जाती हैं तथा इनमें बेहतरीन आकर्षक कढ़ाई भी की जाती है। एक पश्मीना शॉल की कीमत 13,000 रुपये से लेकर 40,000 रुपये तक होती है। यही नहीं चाँगथंगी बकरी के बालों से रस्सियाँ, टोकरी और मोटे कंबल भी बनाए जाते हैं और खाल को कपड़े बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं (रिजवी 1980)।

- **अंगोरा बकरी :** अंगोरा बकरी लद्दाख क्षेत्र में पाली जाती है और यह मोहर नाम के एक अच्छे गुणवत्ता वाले रेशे के उत्पादन के लिए जानी जाती हैं। स्थानीय लोग इस रेशे को भेड़ की ऊन के साथ मिश्रण कर ऊनी वस्त्र बनाने के लिए प्रयोग में लाते हैं।
- **अल्पाइन बकरी:** यह एक महत्वपूर्ण दुधारू नस्ल है जिसका उद्‌गम फ्रांस में हुआ है। इसका औसतन दुग्ध उत्पादन 1.5–2.00 किलोग्राम प्रति दिन है। नर बकरे का औसतम वजन 75 किलोग्राम और मादा बकरी का 62 किलोग्राम वजन होता है दूध उत्पादन को बढ़ाने के लिए स्थानीय भेड़ो का अल्पाइन बकरी के साथ बड़े पैमाने पर क्रॉस प्रजनन किया जा रहा है जिसमें अब तक 40% की सफलता मिली हैं।
- **एशिआई ईबेक्स:** बकरी के प्राचीनतम नस्लों मे से एक नस्ल एशिआई ईबेक्स है। यह बहुत ही सुंदर बकरी हैं जिसके पास 147 सेमी वाले लंबे सुडौल सींग होते हैं। ये बिना किसी दर्द के भी कड़ी चट्टानों पर आराम से चढ़ाई कर सकती है (टी ऐट ऑल. 2006)।

भेड़

लद्दाख में बकरी के साथ–साथ भेड़ भी बड़ी संख्या में पाई जाती हैं जम्मू कश्मीर की कुल भेड़ आबादी का 5.3 प्रतिशत लद्दाख क्षेत्र में हैं इसका इस्तमाल मटन व् ऊन के लिए किया जाता हैं ।

- **चाँगथांगी भेड़**: उच्च ऊंचाई पर कठोर पर्यावरण हालत में जीवन जीने के लिए अपनी क्षमता की वजह से यह एक महत्वपूर्ण भेड़ नस्ल है। यह व्यापक रूप से लद्दाख के चांगथांग क्षेत्र में वितरित है। यह भेड़ बड़े आकार की होती हैं और इसकी ऊँन आमतौर पर रंगीन और मोटी होती हैं । इस भेड़ के बाल आमतौर पर पर मई / जून और सितंबर / अक्तूबर में काटे जाते हैं । प्रति भेड़ साल में लगभग 1 से 1.5 किलोग्राम चिकने ऊन का उत्पादन करती हैं। इस भेड़ को पहाड़ों में एक परिवहन पशु के रूप में भी उपयोग किया जाता है।
- **भराल (नीली भेड़)**: लद्दाख क्षेत्र में यह सबसे ज्यादा पाई जाने वाली भेड़ हैं। इसके सिर और शरीर की लम्बाई क्रमशः15–165 सेमी और पूंछ की लंबाई 10 से 20 सेमी तक होती है (टी ऐट ऑल. 2004)।
- **युरिअल (ओरिएंटलिस ओविस)**: यह भेड़ लेह में पाई जाने वाली पूर्वी एशिया में दुनिया की सबसे छोटी भेड़ प्रजाति है। इस प्रजाति का औसत वजन लगभग 85 किलोग्राम हैं। इसके सींग 99 सेमी तक लंबाई के होते हैं। ये भेड़ आमतौर पर 3,000–4,000 मीटर की ऊंचाई की पहाड़ी पर चरती हैं। ये भेड़ दिसंबर से जनवरी के दौरान प्रजनन कर मई के आसपास अपने बच्चे को जन्म देती हैं। युरिअल का लगातार शिकार इनकी संख्या को काम करता जा रहा है इसलिए आज युरिअल सबसे ज्यादा शिकारी की शिकार बन रही हैं जिसके कारण उनकी संख्या में तेजी से कमी आ रही है। इसलिए उनकी सुरक्षा करना जरूरी हैं।

जंस्कारी घोड़े

परिवहन संसाधनो की कमी के कारण घोड़े लेह में लोगों की आवजाई का मुख्य साधन हैं। जम्मू और कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र के जंस्कार क्षेत्र में पाए जाने वाले घोड़े की नस्ल को जंस्कारी के नाम से जाना जाता हैं।

ये घोड़े ज्यादातर ग्रे रंग के होते हैं लेकिन ये काले या भूरे रंग में भी पाए जाते हैं। इनका औसत वजन 992 पाउंड होता हैं और इनका कद 45 से 48 इंच होता हैं जो समान घोड़े के औसत ऊंचाई से काफी कम हैं। इनके शरीर के बाल लंबे और चमकदार होती है। ये घोड़े इस प्रतिकुल ठंडे मौसम और ऊंचाई वाले क्षेत्रों मे भी भारवहन का काम सहजता से करते है। अन्य नस्लों के साथ तेजी से वर्ण संकरन के कारण इस नस्ल के घोड़े की संख्या में कमी आई है जिसकी वजह से ये घोड़े विलुप्त होते जा रहे हैं। जम्मू और कश्मीर के पशुपालन विभाग ने हाल ही में चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से इस नस्ल के सुधार और संरक्षण के लिए लद्दाख के कारगिल जिले में पादम् जांस्कर में एक जंस्कारी घोड़ा ब्रीडिंग फार्म स्थापित किया है। रक्षा वैज्ञानिकों ने संकर खच्चरों का भी विकास किया है जो 'जांस्कर टट्टू' के नाम से प्रचलित । ये टट्टू अधिक ऊंचाइयों तक आसानी से भार ले जा सकते है। इन खच्चरों का विकास ऊपर पहाड़ों में स्थित पदों के लिए ताजा खाना व् अन्य आवश्यक वस्तुओं की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए किया गया है। रक्षा वैज्ञानिकों का कहना है कि इन जानवरो के बढ़ते विकास को देखकर स्थानीय लोग अपनी आजीविका के लिए इन जानवरों के पालन में अपनी रुचि दिखा रहे हैं।

दो कूबड़ वाले ऊँट

यह ठंडे क्षेत्र के सबसे विशाल काय वाले पालतू जानवर है। राष्ट्रीय ऊंट अनुसंधान केंद्र, बीकानेर के अनुसार इनकी छोटी सी आबादी लद्दाख की नुब्रा घाटी (जम्मू और कश्मीर) में पाई जाती है। इनके पैरों के तलवे संयोजी ऊतक की लोचदार परत से बने होते है। ये एक सुर में शरीर को आगे और पिछले पैरों के साथ एक ढुलमुल गति से चलते हैं। इनकी चाल प्रति घंटे 40 मील तक होती है। इनकी कूबड गोल, नरम और लचीले होते है जो इनकी ठंढ रेगिस्तानी क्षेत्रो मे पानी तथा वसा संरक्षण के प्रति विशेष रूप से सहायक होती है। ये ऊँट मजबूत एवं छोटे कद के होते हैं। इनके शरीर का रंग हल्के या गहरे भूरे रंग का होता है। इनके सिर के ऊपरी भाग से गर्दन के निचले भाग, कूबड़ एवं टांगों पर लम्बे बाल पाए जाते हैं जो इनको ठंड से बचाते हैं। एक वयस्क ऊँट का शारीरिक भार 450 से 550 किलोग्राम तक होता है। इनमें नर ऊँट , मादा ऊँट की अपेक्षा अधिक भारी होते हैं। दो कूबड़ वाले ऊँट का उपयोग दूध, मांस व बोझा ढोने के लिये भी किया जाता है। ये ऊंट रोजाना 6–8 घंटे के लिए काम कर सकते हैं और लगभग 1 क्विंटल का भार ढ़ो सकते है जिसकी वजह से इन ऊंटों को व्यापारी पहले पैक पशुओं के रूप में मसाले, फल, कपड़े, आदि

चित्र 2 – लेह लद्दाख में पाए जाने वाले पशु

लोड करने के लिए इस्तेमाल करते हैं। यहीं नहीं, आज दोनों घरेलू और अंतराष्ट्रीय पर्यटकों के लिए यह ऊँट एक प्रमुख आकर्षण भी बन गया है जो ऊंट सवारी लेने के लिए यहाँ आते हैं। एक ऊंट पर 15 मिनट की सवारी के लिए 200 रुपये के आसपास खर्च होते है। चूंकि ऊंट सफारी ही वहां के खेत मालिको का व्यवसाय है इसलिए खेत मालिकों ने सरकार से अपने पशुओं के लिए आश्रयों बनाने और उन्हें अपने कारोबार में मदद करने के लिए वित्तीय सहायता देने की मांग की है। इनकी संख्या मे तेजी से कमी होने के कारण इस को वर्गीकृत कर आई.यू.सी.एन. लाल सूची के अतिसंकटग्रस्त प्रजाति मे 'गंभीररूप से संकटग्रस्त' के क्षेणी में रखा गया है। अतः आज समय की मांग है की हम इस प्रजाति की रक्षा के लिए हर संभव प्रयास करें ताकि यह प्रजाति आने वाले समय में पर्यटकों के आनंद के साथ साथ लद्दाखियों की आजीविका का भी माध्यम बनी रहे।

लेह में पशुधन से जुड़ी समस्याएँ एवं उचित सुझाव

लेह जैसे कठोर क्षेत्र में स्थानीय लोगों के लिए पशुधन ही उनकी आजीविका का माध्यम हैं। परन्तु उन्हें इसके लिए कई तरह की कठिनायों का सामना करना पड़ता हैं जिसमे से मुख्य निम्नलिखित हैं:

- पशुओं के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओं व परिवहन की समस्या होती हैं ।
- **कम चारे की उपलब्धता:** कम तापमान (–20 से –35 डिग्री सेंटीग्रेड) और अधिक वर्षा न होने के कारण यहाँ की पहाड़ियां बर्फ से ढकी रहती हैं जिसकी वजह से यहाँ कम वनस्पतियाँ और छोटी फसले ही उगती हैं। अतः पशुओं को खाने के लिए पर्याप्त चारा भी नहीं मिल पाता है।
- लेह के मानव संसाधन भारत के बाकी हिस्सों की तुलना में कम है। अशिक्षित लोग और पशु के संबंध में बुनियादी कौशल जानकारी कि कमी के कारण यहाँ दूध का अधिक उत्पादन प्रभावित होता हैं।
- पशुपालन के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओं जैसे पशुओं के लिए साफ सुथरा और हवादार आवास, अच्छा चारा और पशु चिकित्सा उपलब्ध नहीं हैं।
- जर्सी जैसी विदेशी गायो की नस्ल यहाँ के ठंडे वातावरण और सामान्य स्तर पर आक्सीकृत तनाव की स्थिति में जीवन जीने में असक्षम हैं। अतः संकर प्रजनन द्वारा नस्ल विकास प्रभावित होता हैं।
- विदेशी नस्लों को भारी मात्रा में उच्च स्तर के चारे और संसाधित बाजारी फीड की भी आवश्यकता होती हैं जोकि यहाँ पर आसानी से उपलब्ध नहीं हैं ।

सुझाव

स्थानीय पशु किसी खास वातावरण के लिए धरोहर होता है। बढ़ती हुई दूध और मांस के लिए अगर संकर नस्लों को विकसित करना जरूरी है तो साथ ही स्थानीय नस्लों की शुद्ध पैतृक लाइन की संख्या को कायम रखना भी आवश्यक है। इसके लिए इन क्षत्रो मे जैव–अनुसंधान संस्थान, आधुनिक जैव–तकनीकी तथा जैव–प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना अत्यत जरुरी है इसके लिए निम्नलिखित उपाय जरूरी है:

- पालतू पशुओं के लिए अधिक चारा उपलब्ध कराने के लिए जरूरी हैं कि सिंचाई सुविधा द्वारा बंजर भूमि को कृषि योग्य भूमि बनाया जाए ।
- सर्दियों के महीनों में पशुओं को कड़ाके की ठंड से बचाने के लिए सरकार द्वारा पशु आश्रय के लिए अधिक सुविधाएं प्रदान की जाए ।
- पशुपालन विभाग को आधुनिक उपकरणों और वित्तीय सहायता के साथ वैज्ञानिक तर्ज पर विकसित किया जाए ।
- सीमित चराई वाले इलाको में इमारतों और सड़कों के निर्माण पर प्रतिबंध लगा दिया जाए ।
- लोगों को उपलब्ध स्थानीय संसाधनों के उपयोग

और डेयरी उत्पादन के महत्व के बारे में शिक्षित किया जाए।

- चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से चांगथांगी भेड़ में ऊन उपज में वृद्धि की जाए।
- अच्छे प्रजनन और पशु चिकित्सा सेवा के माध्यम से चांगथांगी बकरी से प्राप्त पश्मीना उत्पादन में वृद्धि की जाए।
- चांगथांगी भेड़ो और बकरियों में रंग के लिए जिम्मेदार जीन को निष्कासित किया जाए।
- दूध और मांस का उत्पादन बढ़ाने के लिए और संकर नस्लों के विकास के साथ साथ देसी नस्लों में उच्च कोटि सीमन के प्रयोग से सुधार किया जाए।
- पर्यावरण के तनाव और कठिन जलवायु परिस्थितियों में जीवित रहने की क्षमता व कम गुणवत्ता वाले चारे और पानी के आभाव का सामना करने की बेहतर क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए स्थानीय पशुओं के गुणों व् गुणधर्मो के संरक्षण के लिए इनको चिह्नित करना बहुत जरूरी हैं।

लेह पशुधन के विकास के लिए किये गए प्रयास एवं शोध कार्य

- दूध उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने लेह में डेयरी फार्म्स बड़ी संख्या में खोले हैं (सारणी 4)। इन डेयरी फर्मो की बदौलत आज लद्दाखी न केवल अपनी जरूरते पूरी कर पा रहे है बल्कि वहां के सैनिको को भी दूध सप्लाई कर रहे हैं। डेयरी क्षेत्र को मजबूत करने के लिए ये बहुत जरूरी हैं की किसानों को वैज्ञानिक शिक्षा के साथ–साथ उपलब्ध स्थानीय संसाधनों के उपयोग और डेयरी उत्पादन के महत्व के बारे में शिक्षित किया जाए और साथ ही उनके पशुओं के लिए उचित पशु चिकित्सा सुविधाएं भी प्रदान की जाएँ। रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान (DIHAR) के वैज्ञानिक इस और प्रयासरत हैं ।

तालिका 4: लेह के विभिन्न डेयरी फार्मो में दूध का उत्पादन (2009–10)

क्रमांक	डेयरी फार्म	उत्पादन मात्रा (लाख/लीटर)
1	कैटल ब्रीडिंग फार्म, चांसपा	0.103
2	याक ब्रीडिंग फार्म, नुब्रा	0.103
3	बुल मदर फार्म , अग्लिंग	0.140
4	मिनी डेरी फार्म,न्योमा	0.01
5	कुल	0.376

पशुधन विभाग

- दुध का उत्पादन बढ़ाने के लिए व सरहदों पर तैनात जवानों को ताजा दूध मुहैया कराने के लिए रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान के रक्षा वैज्ञानिकों ने पहाड़ी याक का मैदानी दुधारु साहिवाल गाय के साथ प्रजनन कर संकर नस्ल विकसित की है जो न केवल कम ऑक्सीजन और जमा देने वाली ठंड में भी जीवित रहती हैं बल्कि ऐसी प्रत्येक गाय से रोजाना 18 लीटर दूध भी मिल रहा है जिसमें अच्छी वसा की मात्रा पायी जाती है (बीडीके ब्यूरो, 2011) । पहले जहां सैनिकों को डिब्बा बंद पाउडर दूध से काम चलाना पड़ता था अब संकर गाय उन्हें पर्याप्त मात्रा में दूध उपलब्ध करा रही हैं। रक्षा वैज्ञानिकों ने अपने अथक प्रयास से वहां एक संकर बकरी भी विकसित की है। –50 डिग्री सेल्सियस से भी कम

चित्र 3 – नूरीः दुनिया की पहली क्लोन पश्मीना बकरी

तापमान में भी स्वस्थ तरीके से जीवन जी सकने में सक्षम इस बकरी का विकास मुजफ्फरनगरी बकरी और स्थानीय (लद्दाख) बकरी के शुक्राणु–अंडे के निषेचन (फर्टिलाइजेशन) से किया गया है। संकर बकरी में स्थानीय बकरी की तुलना में मांस तो ज्यादा है ही, इनकी उत्पादकता भी सैनिकों की जरूरत के लिहाज से पर्याप्त है (संजय सिंह, सहारा न्यूज ब्यूरो)। लेह में स्थित रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान के साथ में शेरे कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के पशु चिकित्सक भी पशुधन के विकास कार्य के लिए विभिन्न प्रयास कर रहे हैं। दुनिया की पहली क्लोन पश्मीना बकरी "नूरी" का जन्म शेरे कश्मीर कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में 15 मार्च, 2012 को हुआ (चित्र 3। नूरी पश्मीना के बढ़ते उत्पादन के लिए कश्मीर व लद्दाख के लोगों के रोजगार के लिए एक आशा की किरण हैं।

- भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो करनाल में लेह पशुओं में बीटा कैसिइन ए1/ए2 प्रारूप की स्थिति को जानने के लिए एक विस्तृत अध्ययन किया गया। A1 β–कैसिइन दूध मानव स्वास्थ्य रोगों के लिए अत्यंत हानिकारक होता हैं जो की डायबटीज, ह्रदय रोग, तत्काल शिशु मृत्यु संलंगण (एसआईडीएस), धमनीकाठीय, एक प्रकार का पागलपन (साइजोफ्रिनिया) और आत्मकेंद्रित जैसे खतरनाक रोगो का कारण होता है तथा ए 2 β–कैसिइन दूध मानव उपभोग के लिए सुरक्षित माना गया हैं (मिश्रा एट आल. 2009)। अध्ययन से पता चला की लेह पशुओं के दूध मे ए 2 एलील की प्रबलता अधिक रूप में हैं जिसका अभिप्राय यह है कि इसका दूध पीने के लिए सुरक्षित है।

- भाकृअनुप–पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल व रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयास से लेह क्षेत्र में पाये जाने वाली विभिन्न प्रकार की नस्लों में कुछ ऐसे जींस समूह कि पहचान का कार्य शुरू किया गया है जो उन्हें कम तापमान और आक्सीकृत तनाव की स्थिति में भी अपना जीवन जीने के लिए सक्षम रखते हैं। इसके लिए लेह गाय में गर्मी के तनाव और आक्सीकृत तनाव के प्रभाव को अध्ययन करने के लिए लेह गाय के खून से पीबीएमसी को अलग करके हीट शौक प्रोटीन और हाइपोक्सिआ उत्प्रेरण फैक्टर –1 की अभिव्यक्ति अध्ययन की जा रही है यह उम्मीद है कि किये जा रहे प्रयास से कम तामपान अनुकूलन और आक्सीकृत तनाव के लिए जरूरी जैविक–तंत्र तथा आनुवंशिक–घटकों को समझने में सहायक सिद्ध होगी। हाल में ही जीनोम अनुक्रम असेंबली, इनके तुलनात्मक मानचित्रण तथा सिंगल निउक्लिओटाइड पॉलिमोर्फिस्म (एस. एन. पी.) चिप की उपलब्धता से आनुवंशिक सुधार से सम्बंधित अध्ययन में तीव्रता आई है। इसके संयोग में, लेह लद्दाख की विभिन्न पशुधन प्रजातियों में उत्पादन तथा अनुकूलनशीलता के लिए उत्तरदायी कई सारे विभिन्न जींस/आनुवंशिक क्षेत्रों को पहचानने तथा इनके अन्य नस्लों के साथ साथ जीन तुलना प्रोफाइल अभिव्यक्ति में सफलता मिलेगी। ऐसे कार्य में ग्लोबल अभिव्यक्ति प्रौद्योगिकियाँ (सम्पूर्ण जीनोम अनुक्रमण, आर. एन. ए अनुक्रमण) काफी विश्वशनीय एवं प्रभावशाली होगी।

- **उच्च तुंगता तथा सीरम एंटीऑक्सीडेंट स्थिति**
  समुद्र तल से 11500 फुट ऊपर पर स्थित रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान तथा भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के संयुक्त प्रयास से इन कार्यो पर शोध के लिए उच्च तुंगता और कम तुंगता वाले क्षेत्रों से विभिन्न पशु नस्लों का चयन किया गया है। विभिन्न पशु नस्लों के रक्त नमूनों से तनाव सम्बंधी तालिका काफी ही रोचक आंकड़ा प्रस्तुत करती है। आण्विक विज्ञान

के अध्ययन से यह भी पता चला है कि अधिक ऊंचाई पर रहने वाले स्थानीय पशुओं मे तनाव के खिलाफ एक प्रभावी अनुकूली प्रतिक्रिया का संचालन होता है जिसमे एंटीऑक्सीडेंट रक्षा तंत्र सक्रिय हो जाता है।

निष्कर्ष

लेह क्षेत्र की गायों में शुष्क जलवायु और वातावरण के साथ–साथ कम तापमान और कम ऑक्सीजन की स्थिति (हाइपॉक्सिक) के प्रति सहनशीलता रखने की अद्वितीय क्षमता हैं। सीरम एंटीऑक्सीडेंट पर किये गए अध्ययन के परिणामों से पता चला है कि उच्च तुंगता के पर्यावरण तनाव से बचने के लिए क्षेत्रीय स्वस्थ पशु अपने आपको संरक्षित एवं स्वस्थ रहने के लिए अधिक एंटीऑक्सीडेंट स्रावित करने की क्षमता रखते है।

यहां पाई जाने वाली बकरी की अत्युत्तम नस्ल चांगथांगी बकरी भी परिस्थितिक आला जैसे कि कम तापमान, कम चारे और पानी की परिस्थितियों के लिए अनुकूलित है। इसके इलावा, जन्स्कारी एवं स्पीती घोड़ो और डबल कुब्बड़ वाले ऊंटों कि नस्लों को ऊंचाई पर कम ऑक्सीजन कि परिस्थिति (हाइपॉक्सिक) जैसे हालात में कार्यवाहक क्षमता के लिए जाना जाता है। उच्च तुंगता के स्थानीय पशु अत्यधिक विकसित जर्मप्लाज्म का एक समृद्ध स्रोत हो सकते है इसलिए इनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

लद्दाखियों के लिए पशुधन ही उनकी अर्थव्यवस्था का मुख्य स्त्रोत है। यहाँ के पशु अत्यंत कठोर जलवायु परिस्थितियों में जीवन जीने के लिए विकसित और अनुकूलित हैं। लद्दाख क्षेत्र के कठिन जलवायु परिस्थितियों व कृषि तथा चारा उत्पादन को देखते हुए यहाँ पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की गाय (देसी, विदेशी और संकर) में से देसी गांय को पालना ही सबसे लाभदायी हैं जो ना केवल कम भोजन पर गुजारा कर सकती हैं बल्कि गर्मी और कड़ी सर्दी को भी सहन कर सकती हैं। कठिन जलवायु परिस्थितियों के अनुकूलन क्षमता व कम गुणवत्ता वाले चारे पर निर्भरता और पर्यावरण के तनाव का सामना करने की बेहतर क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए स्थानीय पशुओं को संरक्षण के लिए इनका चरित्रांकन करना जरूरी हैं।

पशुधन उत्पादकों को जलवायु परिवर्तन और चरम जलवायु घटनाओं से निपटने के साथ–साथ अपने पशुधन की अनूठी विशेषताओं (गर्मी–तनाव को सहने, रोग प्रतिरोधक क्षमता, इत्यादि) को संरक्षित करते हुए भविष्य की चुनौतियों का सामना करना होगा। अतः वर्तमान में आवश्यकता है कि तापमान अनुकूलित पशु प्रजातियों/नस्लों की पहचान कर उनके जीन/जीन समूह उत्पादन विशेषताओं का स्पष्ट आनुवंशिक विनियमन कर स्थायी पशु उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण पशुधन प्रजातियों के प्रबंधन तथा विकास के लिए रणनीतियां तैयार की जाये।

संदर्भ

- टी नमगैल, फॉक्स जे एल, भटनागर वाई वी (2004) । भारतीय ट्रांस हिमालय क्षेत्र में सिंपैट्रिक तिब्बती अर्गली भेड़ ओविस अम्मोन हॉग्सनि और नीले भेड़ सुदोइस नयौर पर्यावास के बीच अलगाव .जूलॉजी का जर्नल. 262: 57–63
- टी नमगैली (2006)। उत्तरी भारत लद्दाख में एशियाई औबेक्स और ब्लू भेड़ के बीच शीतकालीन पर्यावास का विभाजन. पर्वत पारिस्थितिकीय जर्नल। 8: 7–13
- रिजवी एस एस (1980)। कारगिल और लेह के जिलों में पालतू जानवरों के लिए प्रजनन की नीतियां। प्रशासक। XXV(4): 719–752.
- बीडीके ब्यूरो, पहाड़ी याक मैदानी साहिवाल की श्सरोगेट मदरश, जून 23 2011, भारत डिफेंस ?? ब्यूरो
- संजय सिंह, लेह में फौजियों को अब मिलेगा घर जैसा खानाः सहारा न्यूज ब्यूरो – 1 अक्तूबर, 2012
- खुर्शीद शाह, लेह जिले में डेयरी फार्मिंग की समस्याएं

और सम्भावनाएँ (जम्मू एवं कश्मीर): http://www.academia.edu/4268918/PROBLEMS_AND_PROSPECTS_OF_DAIRY_FARMING_LEH_DISTRICT_j_and_k_

- राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र, बीकानेर http://nrccamel-res-in/hindi/
- मिश्रा बी.पी. मुकेश एम, प्रकाश बी, सोढ़ी मोनिका, कपिला आर, किशोर ए, कटारिया आर एस, जोशी बी के, भसीन वी, रसूल टी जे एवम बूर्जबरुआः के एम (2009) स्टेटस आफ मिल्क प्रोटीन, बीटा–केसिन वेरीअंट एमंग इंडियन मिल्च एनिमल्स। इंडियन जर्नल्स आफ एनिमल साइंसिस 79(7): 722–725
- बुनियादी पशुपालन सांख्यिकी, 2010। http://jkanimalhusbandary-net/census_18-htm

पशुधन प्रकाश 2015 में प्रकाशन हेतु लेख आमंत्रण

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा **'पशुधन प्रकाश'** पत्रिका का प्रकाशन प्रतिवर्ष किया जाता है। पशु विज्ञान एवम् पशु चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशु पालकों, शोधकर्त्ताओं एवम् छात्रों के लिए उपयोगी मौलिक लेख **भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो** के राजभाषा एकक को ए–4 साईज के पन्नों पर टंकित कराकर **31 मार्च, 2015** तक भेज दें। लेख में यदि कोई छायाचित्र है, तब उनकी **'जे.पी.ई.जी.'** फाईल लेख के साथ सी.डी. में या ई–मेल द्वारा अवश्य भेजें। लेख ई–मेल द्वारा pashudhanprakash@gmail.com पते पर भी भेजे जा सकते हैं। कृपया निम्न प्रमाण पत्र लेख के साथ अवश्य भेंजे:–

प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख " ..(लेख का शीर्षक).....", (लेखकों के नाम).. द्वारा लिखित एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा जर्नल में प्रकाशित नहीं करवाया गया है।

आपके द्वारा अध्ययन किये गये पालतू पशु/पक्षियों के गैर पंजीकृत समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

–सम्पादक मंडल

जैव विविधता - मानव जाति की जीवन रेखा

मनीषी मुकेश, प्रवेश कुमारी, बी के जोशी, प्रीती वर्मा, संदीप मान एवं मोनिका सोढ़ी

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

जैव विविधता सभी प्राणियों में पायी जाने वाली विभिन्नता व परिवर्तनशीलता का दर्पण है और यह पृथ्वी की सबसे मूल्यवान प्राकृतिक उपहारो में से एक है। बैक्टीरिया से लेकर पेड़ पौधों और जानवरों की सभी प्रजातियाँ अपने आप में एक विशाल आनुवंशिक गुणो का स्त्रोत होती हैं। और यह विविधता उन्हें पर्यावरण में खुद को बनाये रखने में सक्षम बनाती है। पृथ्वी पर जीवन की अंतहीन विविधता उपलब्ध है। अब तक लगभग 400 हजार पौध प्रजातियों और 130 लाख जानवरो की प्रजातियों को चिन्हित किया जा चुका है। लेकिन इसके अतिरिकत अभी भी लाखो कीड़े, सूक्ष्म जीव, पक्षी, पौधे और जानवर ऐसे हैं, जिनको चिन्हित किया जाना शेष है। इसका अर्थ यह हुआ कि जैव– विविधता के संदर्भ में हमारी उपलब्ध जानकारी घास के ढेर में पड़ी सुई के समान है।

जैव विविधता और विकास

जैव–विविधता प्रजातियों में पायी जाने वाली विभिन्नता और उनके लाखो वर्षो के लगातार विकास का परिणाम हैं। लाखो वर्ष पूर्व, जीवन के आधार "जीवद्रव्य" उत्पन्न हुए और इसके साथ ही पौधों और पशुओं के विकास का सिलसिला शुरू हुआ । ये जीवद्रव्य जीवित व् एककोशिक थे। धीरे–धीरे समय के साथ यह जीवद्रव्य बहुकोशिक और फिर जटिल जीवन रूप में बदलते गये। अधिकतर पौधों की प्रजातियाँ शैवाल से उत्पन्न हुई हैं। इन पौधों की प्रजातियों का जीवन या तो सरल कोशिका विभाजन से या फिर बीजाणुओं द्वारा शुरू हुआ। फिर इन पौधों पर फूलों का विकास हुआ और बीजों की उत्पत्ति हुई। लगभग 500 मिलियन वर्ष पहले महासागर में जीव जंतुओं के जीवन की शुरुआत हुई और फिर एक लम्बे समय तक इन जीव जंतुओं के विकास का क्रम जारी रहा। इस विकास के फलस्वरूप जीवाणुओं के गुणधर्मो में भी बदलाव आया और अंततः पृथ्वी पर मानव का जन्म हुआ।

भारत में जैव विविधता

भारत ना केवल सांस्कृतिक, भौगोलिक, सामाजिक और जलवायु विविधता से उपहारित है, बल्कि जैव विविधता से भी सुशोभित है। जिसमें मुख्य रूप से स्थलीय जैव विविधता और समुद्री जैव विविधता शामिल है। भारत का भौगोलिक क्षेत्र विश्व के कुल क्षेत्र का 2.5% है। इसके बावजूद विश्व की कुल प्रजातियों की 8 प्रतिशत भारत में पायी जाती हैं। भारत की जैव विविधता को विश्व में भी एक बहुत ही अनोखा स्थान प्राप्त है। भारत जैव विविधता के 17 विशाल केन्द्रों में से एक है। विश्व के 34 जैविक आकर्षणों में से तीन – पश्चिमी घाट, पूर्वोत्तर भारत और हिमालयी क्षेत्र, भारत में स्थित हैं। भारत में कुल 126 हज़ार फूलों और जानवरों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। अभी तक लगभग 81 हजार पौधों की और 45 हज़ार पशुओं की पहचान कर उनका वर्णन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में तकरीबन 800 फसल प्रजातियां, 320 जंगली पौध प्रजातियाँ और 3000 औषधीय पौध प्रजातियाँ भी शामिल हैं। भारतीय जीव जंतुओं की प्रजातियों में 372 स्तनधारी, 1,228 पक्षी, 446 सरीसृप, 204 उभयचर, 2,546 मछलियाँ, 40,000 कीड़े और 5000 मोलस्क प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत, कुल मिलाकर विश्व के 8.58% स्तनधारियों, 13.66% पक्षियों, 7.91% सरीसृप, 4.66% उभयचरों, 11.72% मछलियों और 11.80% पौधों की प्रजातियों का घर है। इन में से कुछ प्रजातियाँ भारत में लगभग विलुप्त हो चुकी हैं और कुछ विलुप्त होने के कगार पर हैं। और इस विलुप्ति का मुख्य कारण हैं– (i) पर्यावरण का असन्तुलन (ii) उचित

लक्षणों के वर्णन में कमी (iii) अद्धितीय गुणों के विषय में कम जानकारी ।

जैव विविधता : पर्यावरण का संतुलन

जैव विविधता का संरक्षण सुख सुविधा का साधन ही नहीं, बल्कि एक आवश्यकता है। हमारे जीवन को बनाये रखने के लिये पौधें, जानवर और सूक्ष्म जीव हमें कई आवश्यक सेवाएं प्रदान करते हैं जो हमारे अच्छे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। जानवरों तथा पेड़–पौधों की देशी प्रजातियों में विशेष गुण धर्मो से सम्बंधित जीन अथवा जीन–समुचय वंशानुगत तौर से उपस्थित होते हैं और हो सकता हैं कि यही गुण धर्म भविष्य में होने वाले जलवायु परिवर्तन के लिए भी बेहतर रूप से अनुकूल हो। इसलिए हमें विभिन्न प्रजातियों का संरक्षण उनमें होने वाले परिवर्तनो तथा उनके विशेष निवास स्थान के साथ करना होगा। जैव विविधता की सुरक्षा निम्नलिखित कारणों के लिए भी महत्वपूर्ण हैः–

पारिस्थितिक स्थिरता/ पारिस्थितिकी मूल्य : हर प्रजाति एक पारिस्थितिक प्रणाली में एक विशेष कार्य करती हैं। उपलब्ध जैव–विविधता के वर्तमान व भविष्य में सतत् उपयोग हेतु योग्य बनाये रखने के लिये परिस्थितिकी तंत्र का उचित रख–रखाव अत्यंत आवश्यक हैं। इस रख–रखाव के अंतर्गत वनों द्वारा जलवायु नियंत्रण, कीट नाशक नियंत्रण, पौधों का परागीकरण, मिटटी की बनावट और संरक्षण, जल का शुद्धिकरण व उसके पोषक तत्वों का संरक्षण, जलवायु परिवर्तन में स्थिरता, बाढ़, सूखा और अन्य आपदाओं में कमी व वातावरण में गैसों का संचलन आदि शामिल हैं। उदाहरण के लिए स्पेक्बूम (पोर्टुलाकेरिय अफ्रा), कार्बन डाइआक्साइड को नियंत्रण कर ग्लोबल वार्मिग को रोकने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोध बताते हैं कि पारिस्थितिकी तंत्र जितना अधिक विविध होगा वो उतना अधिक उत्पादक और उतना ही बेहतर पर्यावरण के स्ट्रेस (दबाव) का सामना करने में भी सक्षम होगा।

खाद्य एवम् औद्योगिक उत्पाद, पशु, पक्षी, मछलियाँ, पौधे और वन, मानव जीवनयापन के मुख्य साधन हैं। विश्व में पौधो की 30,000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं और उनमें से केवल 30 फसल प्रजातियाँ ही मानव भोज्य पदार्थो के लिये उपयोग में लायी जाती हैं तथा उनमें से भी चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा आदि प्रमुख हैं जो भोजन से प्राप्त 95% उर्जा का संचार करती हैं। इसी तरह 40 में से केवल 14 पशु प्रजातियाँ विश्व के 82% भोजन और कृषि उत्पादन में योगदान देती हैं। दूध, मांस और अंडे भी इन्ही जानवरो से प्राप्त होते हैं। गाय और भैंस के दूध से कई डेयरी उत्पाद जैसेकि – दही , मक्खन आइसक्रीम इत्यादि बनाये जाते हैं जो कि प्रोटीन तथा कैल्शियम सहित कई उच्च गुणवता वाले पौषक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। हाल ही में दूध में पाए जाने वाले प्रोटीन में से एक β–केसीन के ए1 और ए2 अलील्स के मुद्दे ने काफी महत्व पाया हैं। क्योंकि यह धारणा हैं कि दूध में ए2 β–केसीन की खपत मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं। जबकि ए1 दूध का उपयोग कई स्वास्थ्य सम्बंधी बीमारियों से जुड़ा हैं। राकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (करनाल) में हुए अनुसंधान से हमें यह पता चला हैं कि हमारी सभी देशी पशु और भैंसों की नस्ले खासकर दुधारू नस्लों में β–कैसिइन ए2 एलील बड़ी मात्रा में पाया जाता हैं और इसलिए यह मानव उपभोग के लिए सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त ऊन, रेशम, फर, चमड़ा जैसी कई वस्तुएँ हमें जानवरों से प्राप्त होती हैं। पशुओं का इस्तेमाल हम सामान ढोने के लिए भी कर सकते हैं। दूसरी और पेड़ पौधें हमें न केवल औद्योगिक उत्पाद जैसे तेल, स्नेहक, इत्र, कागज, मोम, रबर, लेटेक्स, रेजिन, जहर और काग प्रदान करते हैं बल्कि कपड़ो के लिए फाइबर, आवास और गर्मी के लिए लकड़ी भी प्रदान करते हैं।

पशु जैव विविधता

पशुधन प्रजातियों का पालन लगभग 12,000 साल पहले शुरू हुआ। भोजन, परिवहन, ईधन, और अन्य कृषि

प्रयोजनों के लिए मानव ने पशुओं को पालना शुरू कर दिया। हालांकि 40 स्तनधारी प्रजातियों को भोजन के लिए पाला जाता है लेकिन पशुधन से उत्पादन का प्रमुख योगदान केवल 14 प्रजातियों से ही रहा हैं। इन पशुधन प्रजातियों के भीतर लगभग दस हजार नस्लों को वर्गीकृत किया गया हैं। भारत दुनिया में सातवाँ सबसे बड़ा देश है और इसमें लगभग 75 प्रतिशत लोग कृषि और पशुपालन संबंधित व्यवसायों से जुड़े हुए हैं।

सदियों से, भारत जैव विविधता का एक प्रमुख केंद्र रहा हैं। हम अत्यंत भाग्यशाली हैं की हमारे पास स्वदेशी पशुओं के जर्मप्लाज्म की विस्तृत विविधता हैं। जो अपने वशिष्ट कृषि जलवायु क्षेत्रों में वितरित हैं और दुनिया के कई मेगा जैव विविधता केंद्रों में से एक हैं। भारत के पालतू पशुओं के व्यापक स्पेक्ट्रम का प्रतिनिधित्व भारतीय देशी गौ नस्लें (37), भैंस (13), भेड़ (39), बकरी (23), पोल्ट्री (15), उंट (8), घोड़ो (6) के अलावा मिथुन और याक सहित कुछ दुर्लभ प्रजातियों द्वारा किया जाता है। ये नस्लें अपनी एक या एक से अधिक विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध हैं। क्योंकि सदियों से हमारी अधिकांश स्वदेशी नस्लें एक निश्चित जलवायु परिस्थितियों के तहत उपयोगिता के लिये विकसित हुई हैं और कुछ अद्वितीय गुण प्राप्त किए हैं। उनके यह गुण उन्हें दूसरी नस्लों से अलग करते हैं और अपने वशिष्ट वातावरण के लिये उपयुक्त और उपयोगी बनाते हैं। प्राकृतिक रूप से विकसित होने के फलस्वरूप भारतीय नस्लें कठोर और चरम जलवायु परिस्थितियों के साथ साथ स्ट्रेस में, प्रचलित उष्णकटिबंधीय बीमारियों के लिए विकसित प्रतिरोधक गुण, अनुपजाऊ फसल और कम गुणवत्ता वाले चारे और पीने वाले पानी की कमी के कारण जीवन यापन करने के लिए अच्छी तरह से सक्षम हो गई हैं। अतः विविध देशी जर्मप्लाज्म में कई ऐसी महत्वपूर्ण जीन शामिल हैं जो आर्थिक और पर्यावरण अनुकूलन लक्षण रखती हैं।

विशाल पशुधन आनुवंशिक संसाधन भारतीय कृषि का एक अभिन्न अंग रहा हैं और इनकी कई नस्लों में न केवल जीवित रहने के लिए, बल्कि विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में उत्पादन, प्रजनन और मसौदा शक्ति को भी बनाए रखने की क्षमता भी है। उदाहरण के लिए, भारतीय मूल मवेशी पशु थारपारकर, नागौरी, साहिवाल, कांकरेज , राठी, गिर आदि में कठोर कृषि जलवायु क्षेत्र में जीवित रहने की क्षमता है। इसी तरह भारतीय भेड़ नस्लों में मौजूद विविधता भी उल्लेखनीय है। गरौल भेड़ सदाबहार पारिस्थितिकी में अपनी पैदावार और अनकूलन के लिए दुनिया भर में जानी जाती हैं। दूसरी ओर मालपुरा, चोकला, मारवाड़ी और शुष्क क्षेत्रों से अन्य कई भेड़ नस्लें रेगिस्तान स्थितियों से अच्छी तरह से अनुकूलित हैं। बकरी की भी कई ऐसी नस्लें हैं जो उच्च तापमान, नमी या दोनों परिस्थितियों के लिए अनुकूलित हैं उदाहरण के लिए अंडमान बकरी लवणीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलित है, चांगथंगी बकरी जो की पश्मीना के लिए जानी जाती हैं, अधिक ऊंचाई के लिए अनुकूलित हैं जबकि जखराना अर्ध शुष्क स्थिति के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित है। इसके अलावा, घोड़ों की जंसकरी एवम् स्पीति नस्लें और डबल कूबड़ ऊंट अधिक ऊंचाई पर ऑक्सीजन की कमी में भी काम करने की क्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं। पोल्ट्री की कई देशी नस्लें जैसे कि अंकलेश्वर, असील, पंजाब ब्राउन, कड़कनाथ आदि अपने साहस, लड़ने की शक्ति तथा अंडे और मांस की गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। हाल ही में, भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो में देशी पशुओं और भैंसों को तापीय सहिष्णुता प्रदान करने के लिए जीन/ अलील्स और नियामक तंत्र की पहचान और चिन्हित करने के प्रयास शुरू किए गए हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया हैं की वर्तमान प्रयास जैविक तंत्र और आनुवंशिक घटक जो की देशी पशुओं को विदेशी पशुओं की तुलना में तापीय सहिष्णुता का मुकाबला करने में मदद करती हैं, उसे बेहतर रूप से समझने में सहायता करेंगे।

इसके अतिरिक्त ब्यूरो में पशुओं और पोल्ट्री की अधिकांश नस्लों का माइक्रोसैटेलाइट और माईटरोकॉंड्रिया के द्वारा अध्धयन किया जा चुका है। जिसमें हमें इन नस्लों में

उपस्थित जीन के आनुवंशिकी लक्षणों और पशुधन की आनुवंशिक सरंचना को समझने में मदद मिली है।

जैव विविधता और मानव गतिविधियाँ

जैव विविधता की क्षति सबसे अहम संकटों में से एक है। नष्ट हुई प्रजातियों की जाँच एवं जीन समुच्चय का लुप्त होना एक मुख्य चुनौती हैं। आज का मनुष्य जो जैविक पदानुक्रम का शिखर है, जैव विविधता की क्षति का मुख्य दोषी है क्योंकि इस क्षति को पशुधन से अधिक उत्पादन एवं अधिक उपज देने वाली नस्लों का उपयोग कर तेज़ी से बढ़ाया गया है और यही कारण है कि आज हमारी जैव विविधता खतरे में है। प्रजातियों के विलुप्त होने के लिए जिम्मेदार मुख्य कारकों में से कुछ निम्नलिखित हैं:–

1. **जनसंख्या विस्फोट और शहरीकरण:** बढ़ रही मानव आबादी का पर्यावरण और जैव विविधता पर एक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हैं। दुनिया की आबादी हर साल 87 की दर से बढ़ रही हैं। जिसमें 80 लाख से अधिक व्यक्ति लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के विकासशील देशों से जुड़ रहे हैं। भारत में हर मिनट में 31 नए बच्चे जन्म ले रहे हैं और इस तरह हम अपनी आबादी में प्रतिदिन 45,000 व्यक्ति जोड़ रहे हैं। नतीजतन, हर साल हम 16 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों का भोजन खर्च वहन करते हैं। आज भारत की अनुमानित जनसंख्या तकरीबन 953 मिलियन हैं। जनसंख्या के इस उछाल से गांवों, कस्बों और शहरों के लिए अधिक स्थान और कृषि उपज, कारखानों और अन्य बुनियादी सुविधाओं के विकास के लिए अधिक भूमि की जरुरत बढ़ा दी। परिणाम स्वरूप पशु, पक्षी जीवन के अन्य रूपों के निवास समाप्त हो गए हैं तथा पौधो एवं जंतुओं की कई प्रजातियाँ नष्ट हो गयी हैं। फलस्वरूप जैव विविधता में तेजी से कमी आयी हैं। आवास का नष्ट होना जैव विविधता की क्षति का प्रमुख कारण हैं। जब पेड़ों को काटा जाता हैं, कुँए भरे जाते हैं, घास के रह जाते हैं और इस तरह इसके परिणाम स्वरुप कई प्रजातियों की आबादी में कमी आ जाती हैं या फिर वह विलुप्त हो जाती हैं।

2. **विदेशी प्रजाति को प्राथमिकता:** एक भौगोलिक क्षेत्र में प्रवेश करने वाली नई प्रजाति को विदेशी या गैर प्रजाति कहा जाता हैं। इस तरह की विदेशी प्रजातियों को सम्मिलित करने से जैविक व्यव्हार में परिवर्तन देशी प्रजातियों के विलुप्त होने का कारण हो सकता है। डेयरी पशुओं के मामले में उच्च दुग्ध उत्पादन के कारण विदेशी जर्मप्लाज्म के आने की वजह से, कई पारंपरिक रूप से अद्वितीय अनुकूलित और प्रतिरोधक लक्षणों वाली नस्लों की आबादी में भारी गिरावट के साथ आनुवंशिक क्षति हुई है। सिर्फ कुछ उच्च उत्पादन करने वाली प्रजातियों/ नस्लों पर ध्यान व उनके अत्यधिक दोहन के परिणाम स्वरूप देशी नस्लें विलुप्त होने के कगार पर हैं।

3. **जलवायु परिवर्तन और पशुधन जैव विविधता:** वैश्विक जलवायु परिवर्तन आज के मुख्य पर्यावरणीय खतरों में से एक हैं। औद्योगिक क्रांति के बाद ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ने के कारण पृथ्वी की औसत सतह के तापमान में प्रति सदी 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई हैं। जलवायु परिवर्तन और इसके प्रतिकूल प्रभावों जैसे ग्लेशियरों का पिघलना, समुद्री जल स्तर का बढ़ना, तापमान वृद्धि, तूफान और अन्य मौसम की घटनाओं ने मनुष्यों, पशुओं, पौधों और सूक्ष्म जीवों सहित पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुँचाई हैं। जिसके कारण कई प्रजातियों को अपने अस्तित्व के लिए कठिन संघर्ष करना पड रहा हैं। भूमि क्षरण का बढ़ना, पौधे और पशु आनुवंशिक संसाधनों में कमी, पशुधन के कारण पर्यावरण प्रदूषण, पानी की कमी और उभरते संक्रामक रोगों के खतरों ने श्रेष्ठ पशु उत्पादन और खाद्य सुरक्षा के लिए कई

नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। इसके अतिरिक्त इस जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में मनुष्य कई संक्रामक रोगों, गर्मी से संबंधित मौतों, और वायु प्रदूषण के प्रसार में वृद्धि से भी पीड़ित हो सकता है। अब यह व्यापक रूप से मान्य है कि जैव विविधता और जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र कार्यप्रण ााली के माध्यम से भी एक दुसरे से जुड़े रहते हैं। मिलेनियम पारिस्थितिकी तंत्र आकलन ने जलवायु परिवर्तन को भविष्य की जैव विविधता की क्षति में एक प्रमुख कारक बताया हैं और यह संकेत दिया हैं कि ऐसा होना विकास की प्रमुख चुनौतियों जैसे शुद्ध जल, ऊर्जा सेवाएं, और भोजन के प्रावधान सहित एक स्वस्थ वातावरण के रखरखाव, और पारिस्थितिकी के संरक्षण प्रणालियों, उनकी जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र से सम्बंधित दूसरी सेवाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। लगातार बढ़ते तापमान से, पशुओं में गर्मी से तनाव, फसल की अस्थिर पैदावार,कीट और रोगों के फैलने का प्रकोप लगातार बढ़ेगा। यह उम्मीद है कि जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव कृषि उत्पादकता पर और परोक्ष रूप से भोजन और चारे की उपलब्धता भी पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के कारण सन् 1400 से लेकर अब तक 875 प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। हालाँकि, यह संख्या केवल दस्तावेज़ों में विलुप्त होने की जानकारी देती हैं। जबकि वास्तव में यह आंकड़ा 1,40,000 की विलुप्ति का माना जा रहा हैं। जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ कृषि के आधुनिक तरीकों और परिवहन की प्रणालियों ने भी पर्यावरण और जैव विविधता को काफी क्षति पहुंचाई है।

कुल मिलाकर यह कहना अनुचित न होगा कि मानव गतिविधियों ने जैव विविधता को वैश्विक स्तर पर खतरे में डाल दिया है। पौधे या पशु प्रजातियाँ तब संकट ग्रस्त होती है जब वे स्वयं को बदलते पर्यावरण में ढाल नहीं सकती और उनकी संख्या इतनी कम हो जाती है कि वे विलुप्ति के कगार पर पहुंच जाती हैं। आज लगभग 1500 पौधे और 300 पशु प्रजातियाँ विलोपन संकट में हैं और सैकड़ों विलुप्त हो रही हैं। उदाहरण के लिए गेंडा, बाघ, घड़ियाल, कस्तूरी मृग और भालू हमारे देश की कुछ लुप्तप्राय प्रजातियों में से हैं। 75 लाख से अधिक साल पहले विशाल डायनासोर पृथ्वी पर घूमा करते थे लेकिन क्योंकि वे बदलते परिवेश और परिस्थितियों के साथ खुद को बदल नहीं सके इसलिए वे जल्द ही विलुप्त हो गए। मम्मोथ, कुंद और अन्य प्रजातियों का भी अंत ऐसे ही हुआ।

प्राकृतिक चयन और जैविक विकास की इस प्रक्रिया में कुछ प्रजातियाँ जो खुद को पर्यावरण में ढाल नहीं पाई वो नष्ट हो गई लेकिन परिणाम स्वरूप विविधीकरण प्रबल हुआ और पौधे और जानवरों की प्रजातियों की संख्या में वृद्धि लगातार बढ़ने लगी। यह मोटे तौर पर अनुमानित किया गया है कि वर्ष 1600 के बाद से 1980 के दशक तक लगभग 115 स्तनपायी और 171 पक्षियों के अलावा सरीसृप, उभयचरों और मछलियों कि अनगिनत प्रजातियों विलुप्त हो चुकी हैं और कुछ विलुप्त होने कगार पर हैं। यह तो केवल एक अनुमान है, असल में नुकसान अधिक हुआ है क्योंकि इसमें सैकड़ों बेनाम और अज्ञात प्रजातियों का विलुप्त होना शामिल नहीं होता। यह माना जाता हैं कि अब हर दिन लगभग 50 प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं और बढ़ते प्रदूषण और घटती हरियाली के साथ इसकी वृद्धि होने की संभावना है। 50 से 59 प्रतिशत प्रजातियाँ उष्णकटिबंधीय जंगलों में रहती हैं और और वैश्विक जलवायु परिवर्तन के इस युग में यह क्षेत्र अब सबसे लुप्तप्राय पारिस्थितिक तंत्र बन गए हैं।

यदि जैव विविधता के विनाश की वर्तमान प्रवृत्ति निरंतर जारी रही तो यह आशंका जताई गई है कि अगले 45–50 वर्षो के भीतर विश्व की प्रजातियों का एक चौथाई हिस्सा विलुप्त हो जायेगा। उष्णकटिबंधीय समुद्री और सदाबहार क्षेत्रों में से कुछ जैसे भारत और बांग्लादेश के सुंदरबन, तंजानिया और केन्या में झीले और नदियाँ, नाइजीरिया

में नाइजर डेल्टा, थाईलैंड की खाड़ी, पाकिस्तान में सिंधु नदी का डेल्टा, और मलेशिया, फिलीपींस, इंडोनेशिया, क्वींसलैंड (ऑस्ट्रेलिया), अमेरिका (टेक्सास से फ्लोरिडा के दक्षिण तट), पनामा, इक्वाडोर और कैरेबियन के कुछ क्षेत्र एक बड़े संकट में हैं। जैव विविधता में कमी का प्रभाव गंभीर और दीर्घकालिक हैं क्योंकि इससे हुए नुक्सान अपरिवर्तनीय होते हैं।

जैव विविधता की विशेषता और संरक्षण

किसी किस्म/ नस्ल या आबादी के विलुप्त होने का मतलब है कि उपस्थित उसकी अनूठी जीन या जीन संयोजन का नुकसान होना, जो कि जीनोटाइप और पर्यावरण के बीच के जटिल संबंधों के परिणाम स्वरूप बनते हैं तथा विशेष अनुकूली और रोग प्रतिरोध विशेषताओं के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये स्थानीय किस्मे/ नस्लें, कम या शून्य निवेश उत्पादन प्रणाली के तहत खाद्य सुरक्षा को पूरा करने के लिए और भविष्य में भोजन की मात्रा और गुणवत्ता की मांग में प्रत्याशित परिवर्तन के साथ –साथ आनुवंशिक विविधता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए, स्थानीय रूप से अनुकूलित वनस्पति, जीवों के उपयोग और उचित मानवीय हस्तक्षेप के विकास द्वारा कृषि विशेषज्ञों परिसंपत्तियों को सुरक्षित रखने में मदद ली जा सकती हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, स्वदेशी आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण का महत्व सर्वोपरि हैं। जैव विविधता के संरक्षण के लिए सबसे पहला और मुख्य कदम है, इसे चिह्नित करना। प्रणालीगत रूप से प्रजातियों की पहचान और चिह्नित करने का काम पिछले दो शताब्दियों से प्रगति में हैं। लेकिन जो प्रजातियाँ अभी तक एकत्रित, वर्णित और नामित की गयी हैं उनकी संख्या, वास्तविक उपलब्ध संख्या से बहुत कम हैं। पृथ्वी पर सभी ज्ञात और वर्णित जीवों की संख्या 1.7 से 1.8 मिलियन के बीच है जो वास्तविक संख्या के 15 प्रतिशत से भी कम हैं। कुल प्रजातियों की अनुमानित संख्या 5 से 50 लाख के बीच है तथा औसतन 14 लाख हैं। अभी तक विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, बहुत सी प्रजातियां को वर्णित नहीं किया गया है। हर प्रजाति, बैक्टीरिया से लेकर उच्च पौधों और जानवरों तक, आनुवंशिक जानकारी का एक विशाल भंडार है। उदाहरण के लिए, माइक्रोप्लाज़्मा में जीन की संख्या लगभग 450–700, धान्य में 50000–32000, पशुओं में 22000, ई. कोलाई में 4000, ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर में 13000 और मानव में 35000–45000 हैं। आनुवंशिक विविधता एक आबादी को अपने पर्यावरण के लिए अनुकूल और प्राकृतिक चयन को प्रतिक्रिया देने के लिए सक्षम बनाती हैं, इसलिये इनका संरक्षण आवश्यक है। अतः अधिक आनुवंशिक विविधता से भरपूर प्रजाति, बदलते हुए पर्यावरण की स्थिति में आसानी से अनुकूलित हो सकती है।

आनुवंशिक संसाधन विविधता का संरक्षण इसलिये भी आवश्यक है क्योंकि ये किसान, चरवाहे और प्रजनकों को उनके पालतू पशुओं को जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ उपभोक्ताओं की बढ़ती जैविक उत्पादों की मांग का सामना करने के लिए भी सक्षम बनाती हैं। हालांकि प्रजातियों का एक बड़ा हिस्सा, बदलती जलवायु के लिए अनुक्रियाशील हैं, परन्तु कुछ नस्लें अभी भी विषम जलवायु और कम निवेश की स्थिति में भी अच्छे उत्पादन में सक्षम हैं।

विचारणीय तथ्य

जैव विविधता, पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैव विविधता का विनाश परिस्थितिकी के विलुप्त होने, प्राकृतिक आपदाओं तथा धीरे–धीरे समाप्ति की और जाने के लिये एक खुला निमंत्रण हैं। आज पर्यावरण भीषण खतरे में है। इससे मानव जीवन और जैव विविधता भी खतरे में हैं। विकास के दौरान आवश्यक जैव मंडल को भारी नुकसान हुआ हैं। जैव मंडल में इस असंतुलन के कारण ना केवल जीवन की शैली क्षति ग्रस्त हुई है, बल्कि जैव विविधता और उसमें रहने वाले जीवों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया हैं। जैव मंडल और जीवन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर एक को नष्ट कर दिया जाता है तो दूसरा भी स्वचालित रूप से नष्ट और बर्बाद हो जाता हैं।

मानव समाज के लिए आवश्यक सेवाओं की रक्षा के लिए पारिस्थितिक तंत्र की बहाली आवश्यक है।

कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियाँ और संगठन हैं जो प्राकृतिक और जैविक संसाधनों के संरक्षण में लगे हुए हैं और उन्होंने कई योजनाएं और कार्यक्रम तैयार किये हैं। हालांकि, केवल कार्यक्रम, संधियों, सम्मेलनों और प्रोटोकॉल और उनकी पुष्टि ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि जैव विविधता का संरक्षण और परिरक्षण आम लोगों के समर्थन, राजनीतिक इच्छाशक्ति, जागरूकता, प्रतिबद्धता और व्यावहारिक और परिणाम उन्मुख कदम पर भी निर्भर करता है। जैव विविधता को खतरा, स्थानीय और विश्व स्तर दोनो पर ही हर किसी के लिए चिंता का विषय होना चाहिए।

सरकार के निरंतर हस्तक्षेप के द्वारा ही जैव विविधता की क्षति को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सरकार के कार्यक्रम, संरक्षित क्षेत्रों के विस्तार और उनको मजबूत बनाने के साथ ही संकटग्रस्त प्रजातियों तथा उनके निवास पर केन्द्रित हैं। भारत सरकार ने संरक्षित वन्य जीवन और वनों की रक्षा और संरक्षण के लिए लगभग 80 राष्ट्रीय पार्क और 441 अभयारण्यों का निर्माण किया है। यह भारत के वन क्षेत्र का 19% और उसकी कुल भूमि का 4.3% हैं। लेकिन फिर भी अभी तक वन्य जीवन सुरक्षित नहीं हैं। आज भी पशु, पक्षी, सरीसृप, कीड़े, झाड़ियाँ, जड़ी बूटियाँ, पेड़ और पौधे हर दिन विलुप्त होते जा रहे हैं। सरकार की नीतियाँ तो केवल सहायक होती हैं। परन्तु ऐसी स्थिति से उबरने के लिये प्रत्येक नागरिक का योगदान भी आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति को हमारे प्रकृतिक जैविक संसाधनो की रक्षा व सुरक्षा के प्रति जागरूक होना होगा क्योंकि जैव–विविधता के संरक्षण के द्वारा हम अपने आप को भी सुरक्षित करते हैं। जैव–विविधता मानव जाती की भी जीवन रेखा है। इसलिए वन, मिट्टी, पानी और जैव विविधता का संरक्षण अति आवश्यक हैं।

आज जैव विविधता की निरंतरता को बनाये रखना अति आवश्यक है क्योंकि अब तक जो कुछ दशकों में नष्ट किया गया हैं उसे बहाल करने के लिए सैकड़ों हजारों वर्ष लगेंगे। इसलिए, समय की मांग है कि मानव व जैव–विविधता के बीच एक परिपक्व एवम् स्थिर सामंजस्य बनाया जाए जिसके लिये लोगो को शिक्षित करना होगा ताकि वो जैव विविधता के मूल्यो को समझ सकें। पोषक तत्व प्रदूषण को रोकने के लिये व विदेशी जर्मप्लाजम के अनावश्यक प्रयोग से बचने के लिये मत्स्य पालन, जंगलों और कृषि में अधिक स्थायी तरीकों को शामिल कर जैविक संसाधनो पर पढ़ रहे सीधे प्रभाव को कम करने के प्रयास में व्यक्तिगत रुचि लेनी होगी ।

बकरी का दूध गाय के दूध का बेहतर विकल्प

रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं एम एस टांटिया

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु अनुवंशिक संसोधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

बकरी के दूध की संपूर्णता का आधार इसके घटक है, जिनसे मिलकर यह बना है। इस समीक्षा का मुख्य उद्देश्य लोगों को बकरी के दूध की गुणवत्ता के बारे में बताना है जिससे किसानों द्वारा गायों व भैंसों की तरह ही बकरी पालन को भी बढ़ावा मिल सके क्योंकि बकरी भूमध्य क्षेत्र व मध्य पूर्व के देशों में अर्थव्यवस्था का प्रमुख हिस्सा है।

हमारे देश में बकरियों की नस्ल सरंक्षण का उद्देश्य भी पूरा हो जाएगा क्योंकि बकरी पालन को बढ़ावा मिलने से "जिसका महत्त्व होता है उसका संरक्षण भी आसान हो जाता है"। बकरी के दूध से बनाए जाने वाले उत्पादों को उनके विशेष स्वाद, प्रकृति, गुणों व बनावट के कारण गाय के दूध के उत्पादों का विकल्प माना जा सकता है। इन उत्पादों की गुणवत्ता–नस्ल, पर्यावरण, शारीरिक संरचना, अनुवांशिकी तथा उपलब्ध कराए जाने वाले चारे एवं विशेष रूप से दूध की रचना पर निर्भर करती है।

तालिका 1: नस्ल के अनुसार बकरी के दूध की संरचना (%)

नस्ल	देश	कुल ठोस	वसा	प्रोटीन	केसीन	लैक्टोज	राख
ब्रिटिश सानेन	यू.के.	11.9	3.48	2.61	2.30	4.30	0.80
न्यूबियन	यू.के.	–	4.94	3.60	–	4.51	–
अल्पाइन/सानेन	फ्रांस	3.6	3.2	–	–	–	–
सारडिनियन	इटली	–	5.1	3.9	–	–	0.71
स्थानीय	ग्रीस	14.8	5.63	3.77	3.05	4.76	0.73
दमिश्क	साइप्रस	13.2	4.33	3.75	2.97	–	0.83
मूरसाइनो ग्रानडीना	स्पेन	–	–	4.09	3.21	–	–

तालिका 2: भारतीय बकरी नस्लों व संकर नस्लों के दूध की संरचना

नस्ल	शरीर भार (किलो ग्राम)	दूध उत्पादन (किलो ग्राम)	दूध ऊर्जा (कि. कैलोरी)	वसा (%)	प्रोटीन (%)	लैक्टोज (%)	कुल ठोस (%)
बीटल	41.1±0.69	1141±52	8.42±0.14	4.5±0.14	3.41±0.08	5.5±0.13	14.2±0.22
बीटल × जमुनापरी	32.5±0.92	898±69	7.09±0.48	4.9±0.11	3.8±0.11	5.2±0.18	14.7±0.30
बीटल × बारबरी	24.9±0.69	1016±52	8.15±0.36	5.0±0.14	3.4±0.08	5.5±0.13	14.7±0.23
बीटल × ब्लैकबंगाल	21.7±0.90	628±68	5.28±0.47	5.51±0.19	3.7±0.11	5.8±0.17	15.7±0.30

(सभी इकाईयाँ दूध उत्पादन प्रतिदिन के अनुसार हैं)

तालिका 3: बकरी (टोगेनबर्ग व सानेन) व गाय (हॉलस्टीन) के दूध की औसत संरचना

क्रमांक	दूध तत्व	बकरी का दूध	गाय का दूध
1.	पानी (%)	88.29	88.19
2.	लैक्टोज (%)	4.35	4.59
3.	वसा (%)	3.5	3.4
4.	प्रोटीन (%)	3.10	3.17
5.	ऐश (%)	0.79	0.70
अकार्बनिक तत्व (मि.ग्राम/100 सी.सी.)			
1.	कैल्शियम	114.0	106.0
2.	फॉसफोरस	18.0	88.0
3.	आयरन	0.068	0.072
4.	कॉपर	0.053	0.057
नाइट्रोजनिक भाग (फ्री–फैट आधार पर)			
1.	केसीन	0.3639	0.3811
2.	एल्बुमिन	0.0679	0.0467
3.	ग्लोब्यूलिन	0.0425	0.0443
4.	नॉन प्रोटीन	0.0419	0.0316
विटामिन		मात्रा (आई. यू./100 ग्राम)	
1.	ए	2500	2500
2.	बी2	28	16
3.	सी	25	–
4.	डी	7.9	7.9

दूध के विभिन्न घटक

नाइट्रोजनिक भाग: इसमें मुख्य रूप से प्रोटीन पाए जाते हैं। डेयरी उत्पादों को भी मुख्य तौर पर प्रोटीन स्त्रोत के रूप में ही इस्तेमाल किया जाता है। बकरी के प्रोटीनों में अनुवांशिक बहुरूपता पाई जाती है। यह अनुवांशिक बहुरूपता दूध के क्वानटीटेटीव व क्वालिटेटीव पैरामीटरों को प्रभावित करती हैं एवं विभिन्न प्रकार की ऐलरजीक क्रियाओं का कारण भी है।

केसीन दूध में पाया जाने वाला मुख्य प्रोटीन है। केवल बकरी के दूध को ही मानव दूध का विकल्प माना जा सकता हैं क्योंकि यह हाइपोऐलरजिक होता है। बकरी का दूध कम ऐलरजिक हैं क्योंकि इसमें αS-1 केसीन नामक प्रोटीन नहीं पाया जाता। बीटा–केसीन, बकरी के दूध के केसीन का मुख्य घटक है, जिसके प्रति आंत में संवेदनशीलता कम होती है। कुछ देशों में दूध के लिए भुगतान कुल प्रोटीन पर निर्भर करता है एवं कुल प्रोटीन लैक्टेशन स्टेज, मौसम, उम्र व खाने पर एवं मुख्य रूप से नस्ल पर निर्भर करती है। बकरी के दूध में अन्य मुख्य प्रोटीन लैक्टोफेरिन पाया जाता है जोकि लैक्टेशन स्टेज के अनुसार परिवर्तनशीलता दिखाता है।

तालिका 4: बकरी व गाय को दूध की मक्खन वसा की संरचना

क्रमांक	फैटी एसिड	मात्रा (%)	
		बकरी का दूध	गाय का दूध
संतृप्त (सेचुरेटिड कुल)		70.0	63.3
1.	पालमिटिक (16:0)	34.4	28.5
2.	स्टीयरिक (18:0)	7.8	12.1
3.	कैपरोइक (6:0)	7.2	3.6
4.	लॉरिक (12:0)	3.9	2.3
5.	ब्यूटाइरिक (4:0)	2.4	2.4
6.	कैपराइलिक (8:0)	1.4	0.7
असंतृप्त (अनसेचुरेटिड कुल)		30.0	36.7
1.	ऑलीक (18:1)	25.2	30.5
2.	हैक्साडेकेनॉइक (16:1)	2.7	3.3
3.	टेटराडेकेनॉइक (14:1)	0.4	1.1
4.	आराकिडोनिक (20:4)	1.5	1.6

एक अध्ययन के अनुसार बकरी के लैक्टोफरिन में बैक्टीरियोस्टेटिक गुण पाए जाते हैं। जो बायोऐक्टिव पेप्टाइडस बकरी के दूध से बनाए गए हैं, उनकी संरचना गायों के दूध से बने पेप्टाइडस के समान ही है।

इसके इलावा न्यूक्लियोटाइड्स व न्यक्लियोसाइड् (गैर प्रोटीन नाइट्रोजनिक भाग) भी महत्वपूर्ण हैं। बकरी का दूध राइबोन्यक्लियोटाइड यू. डी. पी. से भरपूर पाया गया है, परन्तु अन्य मुख्य गैर प्रोटीन नाइट्रोजनिक भाग, ओराटिक अम्ल बकरी के दूध में गाय के दूध से कम पाया गया है। आरएनए व डीएनए, कोशिका नवीकरण के लिए जरूरी हैं, विशेष रूप से आंत की म्यूकोसा की कोशिकाओं के नवीकरण में/ये वायरस संक्रमण के प्रति रोगप्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाते हैं। इसलिए यह यूरोप में बच्चों के लिए बनाए जाने वाले इन्फैंट फार्मूला में इस्तेमाल होते हैं।

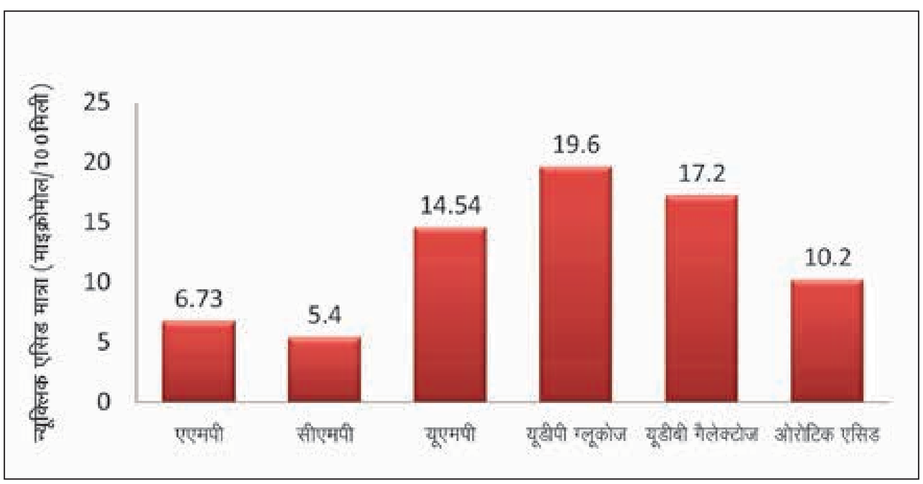

चित्र 1 – बकरी के दूध में पाए जाने वाले विभिन्न न्यूक्लिक एसिड

बकरी के दूध में मुख्य रूप से पाया जाने वाला मुक्त अमीनो एसिड टॉरिन है (9 एम जी/100 मिलीलीटर के करीब)। ये सिस्टीन व मीथियोनिन के अपचय से बनते हैं। मुक्त अमीनो एसिड मानव शरीर में दृष्टि बढ़ाने एवं मस्तिष्क तथा हृदय के उचित प्रकार से काम करने के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त ये डीटॉक्सीफिकेशन और फैटी एसिड आत्मसात में भी भूमिका निभाते हैं।

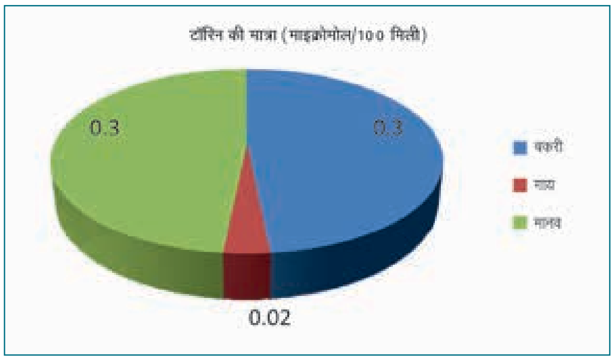

चित्र 2 – बकरी, गाय व मानव दूध में टॉरिन की मात्रा

वसा: यह दूध का मात्रात्मक एवं गुणात्मक रूप से सबसे अधिक विभिन्नता वाला घटक है। वसा अनुवांशिकता, पर्यावरण एवं खिलाने पर भी निर्भर करती है। यदि बकरी के दूध की तुलना गाय के दूध से, वसा को ध्यान में रखकर की जाए तो यह पाया गया है कि खाने में वसा के बढ़ाने से बकरी के दूध में भी वसा की मात्रा बढ़ जाती है। परन्तु इसमें गाय के दूध के विपरीत प्रोटीन की मात्रा पर प्रभाव नहीं पड़ता है। बकरी के दूध में कम αS-1 केसीन होता है जिसका प्रभाव वसा पर पड़ता है। इसलिए इसमें कम मध्यम चेन फैटी एसिड व उच्च Δ-9- डिसेचुरेशन पाई जाती है।

मध्यम चेन वाले फैटी एसिड कुपोषण या वसा अवशोषण सिंड्रोम से पीड़ित लोगों के लिए ऊर्जा का स्त्रोत है। इसी कारण इन्हें लंबी चेन वाले फैटी एसिड के साथ उचित अनुपात में नवजात शिशुओं एवं बूढे लोगों के लिए बनाए जाने वाले आहार में प्रयोग किया जाता है।

कार्बोहाइड्रेट्स: लैक्टोज, दूध में विद्यमान मुख्य कार्बोहाइड्रेट है। लैक्टोज की मात्र को, पशु आहार में दिए जाने वाले पौधों के तेल की मात्रा बढ़ाने से भी बढ़ाया भी सकता है। लैक्टोज, ग्लूकोज एंव गैलक्टोज में टूटकर शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। बकरी के दूध में गाय के दूध से 4 गुना अधिक सियालिक अम्ल पाया जाता है (230 मिली ग्राम/ किलोग्राम ताजा दूध) सियालिक अम्ल एक ओलिगोसैक्राइड है जो कि नवजात शिशु की आंत में लाभदायक बीफिडो बैक्टीरिया की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। बिफिडो–बैक्टीरिया आंत में पीएच को कम कर देते हैं जिससे कुछ हानिकारक बीमारियाँ पैदा करने वाले बैक्टीरिया वृद्धि ही नहीं कर पाते हैं।

झिल्ली तकनीक के द्वारा हाल ही में बकरी के दूध में (मूरसिनो–ग्रानडीना नस्ल) 25 ओलिगोसैक्राइड व कुछ वृद्धिकारक पाए गए हैं। इसके अलावा बकरी के दूध में आंत प्रतिरोधी इनफैलामैटरी रिसपोन्स वाले तत्व तथा गैन्गलियोसाइड भी पाए जाते हैं। गैन्गलियोसाइड ऐसे सियालिक एसिड हैं जो कि ऐन्टीरो टोक्सिन एवं बच्चों में संक्रमण के खिलाफ लड़ सकते हैं। सबसे बढ़िया बात यह है कि पाश्चुराइजेशन का सियालिक अम्ल व गेनगिलियोसाइड पर प्रभाव नही होता इसलिए गर्म करने पर भी बकरी के दूध में इसकी पोष्टिकता बनी रहती है।

खनिज पदार्थ: अगर हम खनिज पदार्थो को ध्यान में रखकर बकरी के दूध को अन्य दूधों से अलग करना चाहें तो क्लोराइड व पोटाशियम चिन्हित होते हैं। इनकी मात्रा बाकरी के दूध में अन्य दूध की अपेक्षा बहुत अधिक पाई जाती है।

बकरी के दूध में कैल्शियम व आयरन की जैविक उपलब्धता गाय के दूध से कहीं अधिक होती है क्योंकि न्यूक्लियोटाइड की अधिक मात्रा होने के कारण ये आंत में अच्छी तरह से सोख लिये जाते हैं। बकरी के दूध में सिलिनियम का प्रोटीन से जुड़े होने के कारण इसकी जैविक उपलब्धता मानव दूध के समान ही है। सूखी बकरी के दूध में कॉपर, जिंक तथा सिलिनियम की जैविक उपलब्धता सूखी गाय के दूध से भी अधिक होती है। ऐसा इनका मध्यम चेन फैटी एसिड एवं घुलनशील प्रोटीन से जुड़े रहने के कारण भी हो सकता है क्योंकि

जुगाली करने वाले जानवरों में आयरन, जिंक व कॉपर घुलनशील प्रोटीन केसीन से जुड़ा होता है।

तालिका 5: बकरी के दूध में पाए जाने वाले खनिज पदार्थ

क्र. सं	खनिज पदार्थ	मात्रा (मि. ग्राम/ कि. ग्रा.)
1.	कैल्शियम	1260
2.	फॉस्फोरस	970
3.	पोटैशियम	1900
4.	सोडियम	380
5.	क्लोराइड	1600
6.	मैग्नीशियम	130
7.	कैल्शियम/ फॉस्फोरस	13
8.	जिंक	3400
9.	आयरन	550
10.	कॉपर	300
11.	मैंगनीज	80
12.	आयोडीन	80
13.	सिलीनियम	20

विटामिन: बकरी के दूध में उच्च मात्राा में विटामिन बी, मुख्य रूप से नियासिन पाया जाता है।

बकरी का दूध है गाय के दूध का विकल्प

- करीब 10 में से 1 मनुष्य को गाय के दूध में पाए जाने वाले αS-1 केसीन से भी एलर्जी होती है। इसके लक्षण लैक्टोज इन्टॉलरेंस जैसे ही होते हैं। क्योंकि बकरी के दूध में αS-1 केसीन नहीं होता, इसलिए ऐसे रोगियों के लिए भी यह रामबाण है।
- बकरी के दूध में प्रचुर मात्रा में कैल्शियम पाया जाता है जोकि उच्च रक्तचाप, ओस्टीयोप्योसिस व हड्डियों से संबंधित बीमारियों से सुरक्षा करता है। ओस्टीयोपोरोसिस मेनोपोजल स्त्रियों में अधिक पाई जाती है इसलिए उनकी कैल्शियम की कमी को भी बकरी का दूध आसानी से पूरा कर सकता है क्योंकि उसमें गाय के दूध से 13% अधिक कैल्शियम है।
- इसके अलावा इसमें गाय के दूध से 25% अधिक विटामिन बी, 6.47% ज्यादा विटामिन ए, 134% अधिक पोटाशियम एवं 350% ज्यादा नियासिन होता है।

तालिका 6: बकरी के दूध में पाए जाने वाले विटामिन

विटामिन	मात्रा (मि. ग्रा/ कि. ग्रा.)
वसा घुलनशील	
ए (रेटिनोल)	0.04
डी	0.06
ई (टोकोफिरोल)	0.04
पानी घुलनशील	
बी1 (थियामिन)	0.05
बी2 (रिबोफ्लेविन)	0.14
बी3 (नियासिन)	0.20
बी5 (पैन्टोथीनिक अम्ल)	0.31
बी6 (पायरिडोक्सिन)	0.05
बी7 (बायोटिन)	2.06
बी9 (फोलिक अम्ल)	1.00 (माइक्रोग्रा/ कि. ग्रा)
बी12 (कोबालमिन)	0.06 (माइक्रोग्रा/ कि. ग्रा)
सी (एसकोरबिल अम्ल)	1.30 (मि. ग्रा/ कि. ग्रा)

जिन लोगों को गाय के दूध से डायरिया, अस्थमा, सूजन एवं चिड़चिड़ेपन जैसे बिमारियाँ हो जाती है, उनके लिए बकरी का दूध ही गाय के दूध का एक स्वभाविक विकल्प है। यह पीड़ित मरीजों को आसानी से पच जाता है। बकरी के दूध में भी गाय व मानव दूध की तरह लैक्टोज होती है, परन्तु फिर भी जिन लोगों को लैक्टोज इन्टॉलरेन्स नामक एलर्जी होती है, यह उनमें भी आसानी से पच जाता है तथा ज्यादा अच्छी तरह से आंत में सोख लिये जाने के कारण कोलन में बहुत थोड़ी मात्रा में ही अवशेष रह जाती है।

बकरी के दूध के अच्छी तरह से पचने व आंत में अवशोषण के पीछे कई कारण निहित हैं:

1. इसके दूध से केसीन दही, थोड़ी एवं नरम बनती है जोकि मानव पाचन तंत्र द्वारा आसानी से सोख ली जाती है।
2. इसके दूध के वसा ग्लोब्यूल का आकार बहुत छोटा, करीब दो माइक्रोमीटर होता है जबकि गाय के दूध का 21 से 31 माइक्रोमीटर होता है। इसलिए ये छोटी ग्लोब्यूल अच्छी तरह से डिसपर्स (फैल) हो जाती है एवं अधिक समरूप मिश्रण बनाती है।
3. बकरी के दूध में छोटे व मध्यम चेन के फैटी एसिड पाए जाते हैं जिनके एस्टर लिंकेज को लाइपेज ऐन्जाइम आराम से व जल्दी से तोड़ सकते हैं।
4. बकरी के दूध में अगलुटीनीन नहीं होता, इसलिए वसा ग्लोब्यूल का झुंड (क्लस्टर) नहीं बन पाता।

बकरी के दूध का औषधीय गुण

डेंगु बुखार, ऐडीज एजीप्टी नामक मच्छरों के द्वारा मानव में फैलाया जाता है जो कि मानव खून में प्लेटलेट्स की संख्या को घटा देता है। इसके लिए कोई प्रभावशाली उपचार भी नही है। साल में 50 से 100 मिलियन लोग इस बुखार से प्रभावित होते हैं।

बकरी का दूध डेंगु के मरीजों के लिए एक प्राकृतिक औषधि का काम करता है। बकरी का दूध इन मरीजों में कुछ खनिज पदार्थो के पाचन एवं मैटाबोलिक इस्तेमाल को बढ़ा देता है जैसे आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस व मैग्नीशियम जिससे शरीर में द्रव का संतुलन बना रहता है। यह कॉलेस्ट्रोल का बाइलेरी स्त्राव भी बढ़ा देता है एवं प्लाज्मा कॉलस्ट्रोल को कम कर देता है, परंतु फॉस्फोलिपिड, बाइलेरी एसिड व लिथोजेनिक लेवेल समान ही रहता है। इसमें गाय के दूध से 2½ गुना अधिक सिलिनियम होता है। सिलिनियम खून का थक्का बनाने वाले तत्त्वों (फैक्टरों) को भी नियंत्रित करता है। सिलिनियम करीब 25 ऐसे प्रोटीनों का अंग है जो एंजाइम की तरह काम करते हैं एंव एन्टीऑक्सीडेंट प्रोपर्टी होने के कारण कोशिका को नष्ट होने से बचाते हैं। जैसा की विदित है, टी–कोशिका व इंटरलुकिन दोनों ही रोग प्रतिरोधक शक्ति के मुख्य अंग है। यह टी–कोशिका की फंक्शन को भी बढ़ा देता है और इंटरलुकिन की वृद्धि को भी प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त वायरस की वृद्धि को कम करने में भी सिलिनियम का योगदान है। डेंगु बुखार अनीमिया की स्थिति भी पैदा कर देता है, परन्तु बकरी का दूध आयरन की जैविक उपलब्धता बढ़ाकर एवं आयरन की टारगेट कोशिका में आयरन की मात्रा बढ़ा कर हेमेटोलोजिकल परिमाणों को ठीक कर स्वास्थ्य सुधार में मदद करता है।

निष्कर्ष

बकरी के दूध में वसा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन व अन्य नाइट्रोजनिक तत्त्व, खनिज पदार्थ एवं विटामिन उचित अनुपात में होने के कारण ही यह सभी उम्र के लोगों के लिए सम्पूर्ण आहार का काम करता है। मेनोपोजल स्त्रियों, बच्चों एवं बुजुर्गों के आहार को बकरी का दूध सम्पूर्णता प्रदान कर सकता है। गाय के दूध से एलर्जी वाले मरीजों के लिए यह एक औषधि की तरह आवश्यक एवं मौलिक तत्त्वों को प्रदान कर एक रामबाण की तरह काम करता है। अतः बकरी पालन को बढ़ावा देकर व उनका उचित रख–रखाव कर मानव जीवन लाभान्वित हो सकता है।

बकरी का दूध गाय के दूध से श्रेष्ठ क्यों?

- बकरी के दूध से एलर्जी कम होती है।
- बकरी का दूध स्वाभाविक रूप से सम्मिश्रित है।
- बकरी के दूध को पचाना आसान है।
- बकरी का दूध शायद ही कभी लैक्टोज असहिष्णुता का कारण बनता है।
- बकरी का दूध मानव शरीर से अधिक मेल खाता है।

आण्विक चिन्हक व इनका मात्स्यिकी विज्ञान में उपयोग

मेघा कदम बेडेकर एवं गायत्री त्रिपाठी

भाकृअनुप–केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, अँधेरी वेस्ट, मुंबई (महाराष्ट्र)

मत्स्य पालन व जल संवर्धन हमारी आर्थिकी व संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। मछलियों में विविधता इतनी अधिक है की पारम्पारिक विधि से इनका वर्गीकरण व जनसंख्या विश्लेषण करना लगभग असंभव है। आणविक चिन्हक (मोलिक्यूलर मार्कर) डीएनए पर प्रस्तुत वो स्थान हे जो अनुवंशिक है तथा जीन में पहचाने जा सकते हैं।

पैतृक विभिन्नता किसी भी जाति के जीव को वातावरण के अनुकूल परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने की क्षमता प्रदान करता है, तथा यह एक जीव जाति के उत्तरजीविता के लिये भी अत्यंत आवश्यक है। पैतृक विभिन्नता दो जीवों के बीच होती है जो एक जनसंख्या, एक जाति तथा वर्गीकरण के लिये आवश्यक है। सभी जीव पर्यावरण अथवा कोशीकीय स्तर पर होने वाले अंतः क्रिया के कारण उत्परिवर्तित होते हैं। आणविक चिन्हक पैतृक विशिष्टता पहचानने का प्रभावी उपकरण है।

डीएनए चिन्ह द्वारा पूर्ण जाति के समूह की विभिन्नता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। सर्वाधिक उपयोगी तकनीकों में रिस्ट्रिकटेड लेन्थ पॉलिमाफिजम (आरएफएलपी), रैन्डमली एम्पलीफाइड पॉलिमारफिक डीएनए (आरऐपीडी), एसएनपी व एम्प्लीफाई लेन्थ पॉलिमाफिजम (एएफएलपी) तथा एक्सप्रेस्ड सीक्वेन्स टैगस (इएसटी) इत्यादि प्रमुख हैं।

आण्विक चिन्हक दो प्रकार के होते हैं। एक जो ऐसे जीवों के साथ संबंधित होते हैं जिनकी कार्य भूमि का ज्ञात है। दूसरे वे जो अज्ञात जीन के अंश में होते हैं। प्रथम श्रेणी में किण्वक (एलोएन्जाईम) चिन्हक होते हैं। आरऐपीडी डीएनए चिन्हक द्वितीय श्रेणी में आते हैं।

माइटोकोन्ड्रियल डीएनए चिन्हक, पैतृक उद्भवन आण्विक वर्गीकरण के लिये सर्वाधिक प्रचलित उपकरण है। माइटोकांड्रिया के जीन अनुवंशिकी के कारण तथा अत्याधिक उत्परिवर्तन के कारण आण्विक वर्गीकरण में महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दो घनिष्ट रूप से संबंधित वर्गो में भी विभिन्नता खोजने में सक्षम हैं। 16 एसराइबोसोमल आरएनए व साइटोक्रोम सर्वाधिक उपयोगिता के माइटोकोन्ड्रिय हिस्से हैं।

आरऐपीडी, डीएनए जीन समूह के उन भागों पर केंद्रित होता है जो किसी अभिव्यक्तित जीन का अंश ना हो। ऐसे भाग में उत्परिवर्तन की आवृत्ती अत्यधिक होती है। इस प्रक्रिया में रैन्डम प्राइमर समुच्चय के द्वारा डीएनए का पीसीआर प्रक्रिया द्वारा संवर्धन किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का सवंर्धन एक अलग स्वरूप में जैल पर दिखाई देता है जिसके कारण जीवों का अणविक वर्गीकरण संभव है।

एकल न्यूक्लिओटाइड बहुरूपता (सिंगल न्यूक्लिओटाइड पोलिमॉरफिस्म)

यह प्रक्रिया एकल न्यूक्लिओटाईड उत्परिवर्तन पर आधारित है। यह उत्परिवर्तन जीनोम के अभिव्यक्तित व अनअभिव्यक्तित सभी भागो में हो सकते है ।

माइक्रोसैटेलाइट चिन्हक: यह चिन्हक डीएनए के पुनरावर्तित क्रम वाले भाग की कई प्रतियों के समूह से उत्पन्न होते हैं। यह चिन्हक जीनोम पर समानता से वितरित होते हैं। इनका माप 1–6 डीएनए क्रम होता है। माइक्रोसेटलाइट चिन्हक मेन्डेलियन अनुवंशिकी के आधार पर एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में जाते है अतः ये पैतृक संबंधों के ज्ञान के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है। मछलियों में जहां जैव विविधता अत्याधिक है, ये अधिक उपयोगी हैं जिनके द्वारा वर्गीकरण संभव है।

कई प्रकार के डीएनए चिन्हक मछलियों के वर्गीकरण के लिये प्रयोग में लाये गये हैं जो वर्ग निर्धारण जीनोम मानचित्रण व उत्परिवर्तन अध्ययन के लिये प्रयोग किये गये है। परन्तु हाल ही में नए चिन्हक जैसे अभिव्यक्तिक क्रम उपनाम (इएसटी) बार कोड सर्वाधिक प्रचलित हो रहे हैं। इएसटी ऐसे डीएनए क्रम हैं जो जीनोम में एक बार अभिव्यक्तित होते हैं। चूंकि ये डीएनए के अभिव्यक्तित भाग से है इनकी सहायता से महत्वपूर्ण प्रोटीनों की अभिव्यक्ति व प्रालेख की जानकारी प्राप्त होती है। इसटी चिन्हक जीनोम मानकीकरण के साथ सहलग्नता मानकीकरण (लिन्केजमेपिंग) के लिये और उपयोगी है।

आण्विक चिन्हकों का वर्ग अभिनिर्धारण में उपयोग

वर्ग विशिष्ट आण्विक चिन्हकों की सहायता से अन्तःवर्गीय भिन्नता व वर्ग संबंधों की जानकारी मिलती है। वर्ग विशिष्ट एलोज़ाइम चिन्हक मछलियों के कई वर्गो जैसे तिलपिया, एन्विला, रेनबोट्राउल इत्यादि में विकसित किये गए हैं। आरएपीडी चिन्हक भारत की मुख्य मछलियों के वर्गो की पहचान के लिये विशेषित किए गए है। माइटोकॉन्ड्रिअल डीएनए के आधार पर कई मछलियों का वर्गीकरण किया गया है। यह विधि पारम्परिक वर्गीकरण के पुनः अवलोकन में भी उपयोगी है।

अनुवंशिक विभिन्नता व जनसंख्या संरचना

आण्विक चिन्हक जनसंख्या की विभिन्नता के वितरण व संरचना का सीधा आकलन करने में उपयोगी है। इससे यह भी ज्ञात होता है की जनसंख्या एकल है या बहुसमाज कीय है। कई मछलियों जैसे कॉमनकार्प, कैटफिश, टाउट, गिल्टहैडसीब्रीम, ब्राउनटाउत इत्यादि के जनसंख्या अनुवंशिकी की में आण्विक चिन्हक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

आण्विक चिन्हकों का विश्लेषण पूर्णतः जैव सूचना (बायोइन्फोर्मेटिक्स) पर आधारित है। आज कई इंटरनेट आधारित सार्वजनिक डाटाबेस जैसे एनसीवीआई जीन बैंक उपलब्ध हैं जिनके द्वारा डीएनए के क्रम का ज्ञान होता है। प्रतिदिन लाखों डीएनए क्रम इन डाटाबेसों में जमा होते हैं। ऐसे में यह अत्यंत आवश्यक है की डीएनए डाटा को सूक्ष्मता से जांचे व फिर प्रयोग करें।

आनुवंशिक संसाधनों के सतत् उपयोग के लिए प्रोड्यूसर कम्पनी बेहतर विकल्प

प्रताप सिंह पंवार
भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

निर्माता कंपनी एक कानूनी ढांचा है, जो सहकारी समिति और प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की जटिलताओं की कमियों को कम करता है। यह कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत निर्माता कंपनी के रुप में पंजीकृत एक कॉर्पोरेट निकाय है, जो ऐसे किसानों या कारीगरों के रुप में प्राथमिक निर्माताओं द्वारा बनाई जाती है, जो फ्रोजेन सीमन, डेयरी व कृषि उत्पादन, कटाई, प्रसंस्करण, खरीद, ग्रेडिंग, पूलिंग करने में स्वयं शामिल होते है और सदस्यों की प्राथमिक उत्पाद के विपणन, बिक्री, माल और सेवाओं के निर्यात, आयात और इन गतिविधियों के लिए प्रासंगिक अन्य कार्यो मे भी भागीदारी होती है।

इसका मुख्य उद्देश्य उनके बीच तालमेल बनाकर और प्राथमिक उत्पादन संभव मूल्य संवर्धन करके प्राथमिक उत्पादकों की आय में वृद्धि करना है। संक्षेप में, यह उत्पादन से खपत की श्रृंखला में बिचौलियों को हटाने के साथ ही प्राथमिक उत्पादकों व उपभोक्ताओं को अधिकार देता है। बिचौलियों का हिस्सा तालिका में निम्नप्रकार के अनुपात में रहता है:–

तालिका 1: किसानों के पारिश्रमिक में असमानता

विवरण	टमाटर	आलू	गोभी	फूलगोभी	केला
अंतिम उपभोक्ता द्वारा कीमत का भुगतान (₹ प्रति किलो)	8.20	12.00	9.00	9.50	12.00
किसान द्वारा प्राप्त मूल्य (₹ प्रति किलो)	2.00	6.60	5.00	5.50	4.00
अंतिम उपभोक्ता द्वारा अदा मूल्य की किसान को प्राप्त कीमत	24	55	56	58	33
किसान को प्राप्त कीमत से ऊपर अंतिम उपभोक्ता द्वारा भुगतान की कीमत (प्रतिशत में)	310	82	80	73	200

इस तालिका में टमाटर क्रय के लिये अंतिम उपभोक्ता द्वारा अदा किये नए कुल मूल्य का मात्र 24% ही उत्पादक किसान को तथा 76% बिचोलियों को स्पष्ट प्राप्त हो रहा है। उपरोक्त पैटर्न के अनुरुप डेयरी उत्पादों में भी बिचौलियों का हिस्सा रहना स्वभाविक है। यह बिचौलिया हिस्सा राशि अगर डेयरी किसान को ही प्राप्त होने लगे तो शायद देशी पशुओं की उत्तम नस्लों का संरक्षण व सुधार गतिशील हो सकता है। किसान उत्पादक कम्पनी की जानकारी बारे विस्तार अध्ययन की आवश्यकता है। सामूहिक कारोबार करके ही किसान अपना जीवन बेहतर बना सकते हैं। प्राथमिक उत्पादक किसान ही उत्पादक कम्पनी का सदस्य अथवा मालिक बन सकता है। वर्ष के दौरान देश के भीतर उत्पादन आधिकारिक तौर पर मान्यता प्राप्त अंतिम माल और सेवाओं का बाजार मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) कहा जाता है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद अक्सर एक देश की जीविका का सूचक माना जाता है। वर्ष 2014 के आकडों के अनुरुप सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का 16% व निर्यात आमदनी में 10% योगदान है। जबकि जुलाई से सितंबर 2013 के दौरान ओधोगिक विकास दर 4.8% ही रही।

तालिका 2 : हरियाणा में डेरी फेडरेशन द्वारा दूध की खरीद, औसत मूल्य तथा कमाया गया निवल लाभ

विवरण	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11
दूध की खरीद कि.ग्रा./दिन	460	514	540	522	532
कार्यशील समितियों की संख्या (औसत)	5028	5979	6167	5194	4160
उत्पादक को प्रति कि.ग्रा. दूध का अदा किया गया औसत मूल्य (₹)	14-5	16-44	17-64	19-79	25-01
निवल लाभ (₹ में)	203	359-58	465	188	807

ग्राम स्तर की समितियाँ दूग्धोत्पादकों से दुग्ध एकत्र करके दूध संघों को बेचती है। पहले दूध संघ फेडरेशन द्वारा चलाए जाने वाले संयंत्रों को दूध बेचते थे। वर्ष 1992 से फेडरेशन ने दूध संघो से पट्टे पर संयत्र ले लिए है, अतः अब दूध संघ दूध को प्रसंस्कृत करती है तथा फेडरेशन से पट्टे पर लिए गए दूध संयंत्रों में उस दूध को उत्पादों में परवर्तित करती है तथा बाजार में बेचती है। गौरतलब है कि इस प्रक्रिया में 4 प्रतिशत से कम वसा का दूध हरियाणा में क्रय ही नही हो पाता है और संकर नस्ल की गाय के दूध में वसा 3.4 ही रहती है।

उपरोक्त पैटर्न के अनुरूप डेयरी उत्पादों में भी बिचौलियों का हिस्सा रहना स्वभाविक है। यह बिचौलिया हिस्सा राशि अगर डेयरी किसान को ही प्राप्त होने लगे तो शायद देशी पशुओं की उत्तम नस्लों का संरक्षण व सुधार गतिशील हो सकता है। किसान उत्पादक कम्पनी की जानकारी के बारे विस्तार अध्ययन की आवश्यकता है। सामूहिक कारोबार करके ही किसान अपना जीवन बेहतर बना सकते है। प्राथमिक उत्पादक किसान ही उत्पादक कम्पनी का सदस्य अथवा मालिक बन सकता है। वर्ष के दौरान देश के भीतर उत्पादन आधिकारिक तौर पर मान्यता प्राप्त अंतिम माल और सेवाओं का बाजार मूल्य सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद अक्सर जीने का एक देश के मानक का सूचक माना जाता है। वर्ष 2014 के आकड़ो के अनुरूप सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का 16 प्रतिशत व निर्यात आमदनी में 10 प्रतिशत योगदान है जबकि जुलाई से सितंबर 2013 के दौरान औद्योगिक विकास दर 4.8 प्रतिशत ही रही। वित्त वर्ष 2013-14 के लिए भारत की आर्थिक वृद्धि 4.7 प्रतिशत रही है। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र सबसे बड़ा नियोक्ता है।

भारतीय कृषि चौराहे पर है। शायद ही कोई प्रगति 60% वर्षा आधारित खेती के तहत हो और हरित क्रांति के क्षेत्रों में वृद्धि रुकी हुई है। एक अरब से अधिक की आबादी की खाद्य और पोषक सुरक्षा एक मुश्किल स्थिति में है। उत्पादक कंपनियों के तंत्र का प्रयोग करके विभिन्न कृषि व डेयरी उत्पादों के मूल्य में संवर्धन कर जीडीपी व निर्यात आमदनी में अधिक योगदान देकर स्वयं का जीवन भी बेहतर किया जा सकता है। विशेष रुप से छोटे किसानों को एकीकृत करने के लिए उत्पादक कम्पनी बनाना ही बेहतर विकल्प है। उत्पादक कम्पनी के मूल्य संवर्धित उत्पाद मूल्य श्रृंखला के साथ अंत में शुद्ध लाभ कृषि में रुचि रहने के लिए किसानों के लिए काफी लाभकारी होगा। उत्पादक कम्पनी की आम सभा द्वारा चयनित / निर्वाचित निदेशक मंडल के निर्देशन में, पेशेवरों द्वारा प्रबंधित व सदस्यों द्वारा इक्विटी योगदान के साथ एक विशिष्ट अवधि के लिए चलाने का प्रावधान है। उत्पादक कम्पनी बनाने का प्रयास के दिल में छोटे किसानों / डेयरी उत्पादकों के लिए सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति हासिल करना है। इसका मूल उद्देश्य सामूहिक विपणन के अतिरिक्त दुग्ध, बीज, खाद, ऋण, बीमा, ज्ञान, प्रसंस्करण, बाजार का नेतृत्व और विस्तार सेवाओं में अग्रणीय रहना है।

तालिका 3: सहकारी सोसायटी व निर्माता कंपनी में भिन्नता के मापदंड

मापदंड	सहकारी सोसायटी	निर्माता कंपनी
पंजीकरण	सहकारी सोसायटी अधिनियम,	भारतीय कंपनी अिनियम,
उद्देश्य	एकल ऑब्जेक्ट	मल्टी ऑब्जेक्ट
आपरेशन के क्षेत्र	प्रतिबंधित, विवेकाधीन	भारत की पूरी संघ
शेयर	गैर व्यापार योग्य	व्यापार योग्य नहीं लेकिन हस्तांतरणीय सम मूल्य पर सदस्यों तक सीमित
सदस्यता	कोई व्यक्ति और सहकारी समितिया	कोई भी व्यक्ति, समूह, एसोसिएशन, गौशालायें , ब्रीड सोसायटी, निर्माता का सामान या सेवाये
लाभ – सहभाजन	शेयरों पर सीमित लाभांश	व्यापार की मात्रा के अनुरुप
मताधिकार	एक सदस्य, एक वोट है, लेकिन सरकार और सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार को वीटो शक्ति का अधिकार	एक सदस्य, एक वोट. सदस्यों का कंपनी के साथ लेनदेन नहीं होने पर वोट नहीं कर सकते
सरकारी नियंत्रण	अत्यधिक हस्तक्षेप की हद तक संरक्षण	कम से कम, सांविधिक आवश्यकताओं को सीमित करने के लिए
स्वायत्तता की हद	"वास्तविक दुनिया परिदृश्य" में सीमित	पूरी तरह से स्वायत्त, अधिनियम के प्रावधानों के भीतर आत्म फैसला लेना
भंडार	यहाँ लाभ हैं, तो बनाया जाता है	हर साल बनाने के लिए अनिवार्य
उधार क्षमता	प्रतिबंधित	अधिक स्वतंत्रता और विकल्प
अन्य कॉर्पोरेट / व्यावसायिक घरानों / गैर सरकारी संगठनों के साथ संबंध।	लेन – देन आधारित	प्रोड्यूसर्स और निगम इकाई एक साथ एक निर्माता कंपनी फ्लोट कर सकते हैं

1) भारतीय कंपनी (संशोधन) अधिनियम 2002 के तहत पंजीकृत यह एक निगमित निकाय है। ऐसी कंपनियों की सदस्यता और स्वामित्व केवल "प्राथमिक उत्पादकों" या "निर्माता संस्था" के पास ही रहेगी और सदस्य इक्विटी का कारोबार नहीं किया जा सकता। लेकिन, यह केवल उत्पादक कंपनियों के निदेशक मंडल के अनुमोदन से स्थानांतरित किया जा सकता है।

2) निर्माता कंपनी अधिनियम में निर्दिष्ट खंड (581–A से 581& ZT) को छोड़कर प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के खंड निर्माता कंपनियों पर लागू होंगे। यह एक सामान्य निजी या कंपनी लिमिटेड से अलग है।

3) निर्माता कंपनी का सीमित दायित्व है और केवल शेयर पूंजी तक सीमित है। सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा प्राप्त शेयरों की अवैतनिक राशि तक सीमित है।

4) न्यूनतम चुकता अधिकृत पूंजी एक निर्माता कंपनी के लिए 5 लाख रुपए है, अर्थात मिलान इक्विटी अनुदान प्राप्त करने के लिए पंजीकृत किसान निर्माता कम्पनी के पास 5 लाख रुपये होने चाहिए।

5) एक निर्माता कम्पनी बनाने के लिए आवश्यक उत्पादकों की न्यूनतम संख्या 10 है। सदस्यों की अधिकतम संख्या के लिए कोई सीमा नहीं है। और यह संख्या व्यवहार्यता और जरुरत के अनुसार बनाई जा सकती है। कृषि व डेयरी उत्पाद आधारित निर्माता कम्पनी में 800–1000 उत्पादक प्रारंभिक वर्षो के लिए आर्थिक रुप से व्यवहार्य है और कम्पनी में वृद्धि के अनुरुप उत्पादको की संख्या 2000 तक बनाई जा सकती है।

6) निर्माता कंपनियों में किसी भी सरकारी या निजी इक्विटी की हिस्सेदारी नहीं हो सकती, इसलिए उत्पादक कम्पनी सार्वजनिक या पब्लिक लिमिटेड कंपनी नहीं बन सकती।

7) एक निर्माता कम्पनी का ऑपरेशन क्षेत्र सम्पूर्ण देश है।

उत्पादक कम्पनी की खास बात यह भी है कि सरकार की तरफ से दस लाख तक की इक्विटी अनुदान निधि भी मिलती है। इसके अतिरिक्त निर्माता कंपनी का सीमित दायित्व है और केवल शेयर पूंजी तक सीमित है। दिवालिया अथवा बीच में ही बंद होने पर सदस्यो की व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रभावित नही होगी। उपरोक्त के अतिरिक्त भूमि की जोत लगातार कम होने पर डेयरी उत्पाद व गाय, भेड , बकरी, ऊँट ,घोडे, मुर्गियाँ तथा भैंस आदि के उत्तम सांडों के वीर्य और प्राकृतिक प्रजनन क्षेत्र में भी सामूहिक कारोबार आरंभ करके लाभ पाने के अतिरिक्त देशी पशुओं की नस्लों को संरक्षित रख कर अगली पीढ़ी को सौंपा जा सकता है। इस विषय पर विभिन्न सेमिनार शीघ्र आयोजित करने का प्रस्ताव भी है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि, यह निर्माता कंपनी प्राथमिक उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के लिए एक लाभकारी मार्ग है। इसलिए, किसानों और कारीगर निर्माता कंपनियों के गठन में पहल करने के लिए लघु व मध्यम वर्ग के डेयरी व मीट उत्पादकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. पंवार पी एस एवं संधू एम एस (2014) पंजीकृत उत्पादक कम्पनी के बारे में लाभकारी जानकारी। जाट तरंग 4 (1); 42–44
2. http://en.wikipedia.org/wiki/eEconomy_of_India
3. http://dahd.nic.in/dahd/WriteReadData/Annual%20Report%202010-11%20English.pdf
4. http://www.haryanakisanaog.org/Reports/Reprt_on_Animal_Husbandry_Hindi

मादा पशुओं में अनु–उर्वरता के प्रमुख कारण एवं निवारण

संजय कुमार मिश्र एवं अतुल सक्सेना
उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, मथुरा (उ.प्र.)

पशुओं में अनु–उर्वरता (बंध्यता) पशुपालकों के लिए एक महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत समस्या है। उचित रखरखाव एवं पशु प्रजनन से सम्बन्धित कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखने से अनु–उर्वरता से ग्रसित पशुओं विशेषकर भैंस जो रोग ग्रस्त होने पर अंततः वधशाला तक पहुँच जाती है, की संख्या को काफी कम कर सकते है। प्रजनन की दृष्टि से गाय को प्रत्येक 13 माह में तथा भैंस को प्रत्येक 14 से 15 माह में एक स्वस्थ बच्चे को जन्म देना चाहिए। एक अच्छे पशु समूह में लगभग 60 प्रतिशत पशुओं को पहली बार के कृत्रिम गर्भाधान में ही गर्भित हो जाना चाहिए। तथा गर्भधारण की औसत दर 1.3 से 1.7 कृत्रिम गर्भाधान होनी चाहिए। एक पशु समूह में अनु–उर्वरता की समस्या 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। पशुओं में अनु–उर्वरता के बहुत से कारण हो सकते हैं जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में प्रजनन क्रिया को प्रभावित करते हैं। इसके मुख्य कारण निम्नवत हैं–

आनुवंशिक कारण

पशुओं में इस कारण से अनु–उर्वरता सामान्यतः जीन के प्रभाव से होती है। ये जननांगों की संरचना को आंशिक अथवा पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। आनुवंशिक विकारों से प्रभावित पशुओं को समूह से हटा देना चाहिए तथा उनके प्रजनन को भी प्रतिबन्धित कर देना चाहिए। कुछ आनुवंशिक विकार निम्नवत हैं–

1. अण्डाशय का न होना या अण्डाशय का कम विकसित या अविकसित होना
2. सरविक्स (गर्भाशय ग्रीवा) के दो मुँह होना
3. भग का छोटा होना एंव श्वेत ओसर रोग (व्हाइट हीफर रोग)
4. फ्रीमार्टिन
5. पशु का सदैव गर्म रहना

क्रियात्मक (हार्मोन संबन्धी) कारण

पशुओं में विभिन्न हार्मोन के असंतुलन अर्थात कमी या अधिकता से अनेक समस्यायें उत्पन्न हो सकती है जो अनु–उर्वरता का कारण बन सकती है। हार्मोन्स के असंतुलन के फलस्वरूप उत्पन्न अनु–उर्वरता निम्न प्रकार की ही सकती है:

1. मदकाल में न आना (एनईस्ट्रस)
2. अस्पष्ट मद काल (साइलेन्ट एस्ट्रस)
3. पुटीय डिंब ग्रंथि (सिस्टिक ओवरी)

मदकाल में न आना

मदकाल में न आना अनेक प्रकार से प्रजनन विकारों का एक लक्षण है क्योंकि इससे सम्बन्धित अनेक कारण है जो परोक्ष रूप से प्रजनन पर प्रभाव डालते हैं। पशुओं के मदकाल में न आने के कारणों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:

(क) जब अण्डाशय पर पीतपिण्ड उपस्थित हो:

1. गर्भित पशु में
2. गर्भाशय में मवाद (पस) होना
3. गर्भाशय में एक ही श्रंग का होना
4. संक्रमण तथा गर्भाशय के अन्दर गर्भस्थ शिशु की मृत्यु होना
5. गर्मी की अवस्था का उचित समय पर अवलोकन न होना

(ख) जब अण्डाशय पर पीतपिण्ड उपस्थित न हो:

1. पौष्टिक तत्वों की पशुआहार में कमी
2. पुराने रोग तथा पशुओं का अधिक उम्र का होना
3. निष्क्रिय अण्डाशय होना या अण्डाशय पर सिस्ट बनना
4. हार्मोन्स में असंतुलन (कमी/अधिकता)
5. अधिक दुग्ध उत्पादन से उत्पन्न तनाव

उपचार

अमदकाल से ग्रसित पशुओं का सम्यक परीक्षण नितान्त आवश्यक है जिससे कि पशु के गर्मी में न आने के कारणों को आसानी से पहचाना जा सके तथा शीघ्रातिशीघ्र उसके समुचित उपचार हेतु उचित विधि अपनाई जा सके।

अस्पष्ट मद काल

यह समस्या गायों की अपेक्षा भैंसों में बहुलता से दृष्टिगोचर होती है। पशुपालक सामान्यतः पशु को तभी गर्मी में मानता है जब मादा पशु रंभाती है तथा समूह के अन्य पशुओं पर चढ़ने की क्रिया दर्शाती है। परन्तु अस्पष्ट मदकाल में पशु गर्मी में तो होता है लेकिन गर्मी के बाह्य लक्षण प्रदर्शित नही करता है। भैंस सामान्यतः रात या प्रातः काल के समय गर्मी पर आती है। अधिकांश भैंसों मे यह देखा गया है कि उनमें रंभाने/चिल्लाने की प्रक्रिया गायों की अपेक्षा कम होती है।

अस्पष्ट मदकाल के समय पशु का गुदा परीक्षण करने पर उनके जननांग सामान्य महसूस होते है। अभी तक यह निश्चित नही हो पाया है कि अन्तः स्रावी रचना किन कारण ों से कम हार्मोन्स उत्पन्न करती है जो कि मदकाल के मन्द लक्षणों के लिए उत्तरदायी होती है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार सुदृढ़ अंतःस्रावी रचना तथा अधिक ईस्ट्रोजन उत्पन्न करने वाली मादा प्रतिकूल वातावरण में भी मदकाल के अच्छे लक्षण प्रदर्शित करती है।

पुटीय डिंब ग्रथि

संकर प्रजाति की गायों में सिस्टिक अण्डाशय अनुउर्वरता उत्पन्न करने वाले कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण है। इस समस्या से ग्रसित पशु लगातार मदकाल में बना रहता है या दो ऋतुचक्र के बीच का अन्तराल सामान्य से काफी कम हो जाता है या पशु कभी मदकाल में नही आता है अथवा असामान्य मदकाल की अवस्था में रहता है।

सिस्टिक ओवरी का मुख्य कारण पीयूष ग्रन्थि द्वारा कम मात्रा में ल्यूटीनीकृत हार्मोन (एल. एच.) का स्रवण है जिससे डिंबक्षरण तथा पीतपिण्ड (कार्पस ल्यूटियम)का विकास सामान्य रूप से नही हो पाता है। सिस्टिक ओवरी, से ग्रसित उन पशुओं में जिसमें अल्पकालिक भ्रूण की मृत्यु हो जाती है अथवा डिंबक्षरण नही हो पाता है के उपचार के लिए ल्यूटिनीकृत हार्मोन (कोरूलान) अथवा गोनेडोट्रॉपिन रिलीजिंग हार्मोन (रिसेप्टाल/ओव्यूलान्टा/फर्टाजिल/गाइनारिच) का प्रयोग किया जा सकता हैं।

संक्रामक रोगमूलक

प्रजनन को प्रभावित करने वाले संक्रामक रोग मुख्यतः जीवाणु, विषाणु, कवक एवं प्रोटोजोआ जनित हो सकते है।

जीवाणु जनित कारक मुख्यतः निम्नवत है–

(अ) ब्रूसेल्लोसिस (ब) लैप्टोस्पाइरोसिस (स) कैम्पाइलोबैक्टीरिओसिस (द) लिस्टीरियोसिस (य) क्षय रोग या टी. बी. (र) जे. डी.

उपरोक्त जीवाणु जनित रोग पशुओं में गर्भपात के कारक हैं तथा गर्भपात के बाद अधिकांश पशु जेर नही गिराते है और अन्ततः गर्भाशय पेशी शोथ एवं बन्ध्यता के लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

- गर्भपात के कारणों की पहचान की जाये एवं प्रभावित पशु का समुचित उपचार किया जाये।
- प्राकृतिक गर्भाधान में प्रयोग होने वाले साँड़ों की नियमित जाँच होना अतिआवश्यक है। कृत्रिम गर्भाधान में सदैव निर्जर्मीकृत यंत्रों का प्रयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए तथा केवल प्रमाणित वीर्य से ही कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए। संक्रमित पशुओं को प्रजनन से वंचित रखना बेहतर होता है।
- ब्रूसेल्लोसिस द्वारा गर्भपात से बचाव के लिए बछिया या पड़िया में ब्रूसेला एर्बाटस कॉटन स्ट्रेन–19 , जीवित प्रतिजन का टीका लगाकर रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। डेरीफार्मो पर स्वच्छ

वातावरण रखना अतिआवश्यक है एवं जो आगंतुक ऐसे डेरीफार्मो से आये हो जहॉ गर्भपात का प्रकोप हो चुका हो उनका प्रवेश डेरी फार्म में प्रतिबन्धित कर देना चाहिए। गर्भपात में निकले भ्रूण एवं जेर (अपरा) को किसी गहरे गढ्ढे में चूना मिलाकर दबा देना चाहिए।

- विषाणु जनित रोगों में संक्रामक बोवाइन राइनो ट्रैकियाइटिस के विषाणु कई रूपों में रोग उत्पन्न करते है। तथा उक्त रोग के कारण 15 दिन से 2 –3 माह के बीच पशु का गर्भपात हो जाता है तथा जेर बाहर नही निकलती है।
- गो पशु गर्भपात महामारी का संचरण मक्खी या मच्छर से होता है। इस रोग में गर्भपात 6 – 8 माह के बीच (अन्तिम त्रैमास) में होता है। इस रोग का बचाव औषधि के सेवन तथा पशुशाला की स्वच्छता का ध्यान रखने पर किया जा सकता है।
- कवक जनित अनु–उर्वरता एवं गर्भपात ऐस्पर्जिलस तथा म्यूकोरेल्स की विभिन्न प्रजातियों के कारण होता है। इसमें भ्रूण की मृत्यु हो जाती है।
- प्रोटोजोआ समूह से होने वाले रोगों में ट्राइकोमोनिएसिस मुख्य है। यह रोग गायों का नैसर्गिक प्रजनन संक्रमित साँड द्वारा कराने पर अथवा कृत्रिम गर्भाधान में संक्रमित यन्त्रों के प्रयोग करने से फैलती है। इसके प्रमुख लक्षण पूर्ण बन्ध्यता एवं गर्भ काल के 2–4 माह की अवस्था में गर्भपात हो जाता है इसके पश्चात मादा पशु बार बार गर्मी पर तो आती है परन्तु गर्भधारण नही हो पाता है।
- गर्भपात एवं संक्रामक अनु–उर्वरता से बचाव के लिए यह अति आवश्यक है कि पशु के प्रजनन अभिलेखों का सम्यक अवलोकन एवं परीक्षण किया जाये।

शारीरिक रचनात्मक दोष

प्रजनन सम्बंधी विभिन्न अंगों की विकृतियाँ, चोट तथा संक्रमण के फलस्वरूप पशु अनु–उर्वरता से पीड़ित हो सकता है। अधिकांश विकृतियाँ पशु के ब्याने के बाद पायी जाती है। परन्तु यह किसी भी अवस्था में हो सकती है। इन विकृतियों में मुख्य निम्नवत है:

(1) अण्डाशय की सूजन (2) अण्डाशय का ट्यूमर (3) अण्डवाहिनी में मवाद/पानी भरा होना (4) गर्भाशय में घाव/ट्यूमर (5) गर्भाशय में सूजन/एवं मवाद भरा होना (6) गर्भाशय ग्रीवा का छोटा होना (7) गर्भाशय ग्रीवा का शोध/ट्यूमर (8) योनि शोथ ट्यूमर (9) भग का ट्यूमर

उपरोक्त विकृतियों की पहचान हेतु पशु के जननांगों की समुचित जॉच पशु चिकित्सक से करवाना अतिआवश्यक/अपरिहार्य है। सम्यक जॉचोंपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विकृति से ग्रसित पशु ठीक होने योग्य है अथवा नही। संक्रमण से होने वाली विकृतियों को योनि स्राव के सुग्राही परीक्षण के पश्चात उचित औषधि निर्धारित मात्रा में निर्धारित समय तक देने से पूर्ण उपचार करना संभव है।

आवश्यक पोषक तत्वों की कमी

पशुओं में पोषक तत्वों की कमी के विशेष लक्षण प्रारम्भ में प्रजनन अंगों पर प्रदर्शित होते हैं जिसमें मुख्य रूप से पशु का समय पर गर्मी के लक्षण न दर्शाना, गर्भ न ठहरना, मद चक्र अनियमित होना तथा भ्रूण की मृत्यु होना प्रमुख है। पोषक तत्वों की कमी तथा अधिकता पशुओं की प्रजनन क्षमता पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

(अ) आवश्यकता से कम पोषक तत्वों की उपलब्धता:

यदि पशु को लम्बे समय तक आवश्यकतानुसार पोषक तत्व प्राप्त नही हो पाते है तो निम्नांकित लक्षण प्रदर्शित हो सकते हैं:

1. प्रजनन की दृष्टि से वयस्क होने में देरी/परिवक्ता की आयु अधिक होना।

2. आवश्यक हारमोन्स की तथा ऊर्जा की अत्यधिक कमी होने से अण्डाणुओं की वृद्धि कम होना तथा असमय ही अण्डक्षरण होना।
3. ब्याने के बाद समुचित संतुलित आहार न उपलब्ध होने पर भविष्य में ऋतुचक्र का अनियमित होना तथा गर्भधारण क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव ।

(ब) आवश्यकता से अधिक पोषक तत्वों की उपलब्धता: आवश्यकता से अधिक पोषक तत्वों युक्त आहार पशुओं को खिलाने पर शरीर तथा जननांगों में वसा (चर्बी) का अत्यधिक जमाव हो जाता है जिससे निम्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं–

1. अण्डाशय का छोटा होना तथा मदचक्र का न आना
2. अण्डाणुओं की गतिशीलता प्रभावित होना तथा कई बार गर्भित कराने पर भी गर्भ न ठहरना
3. ब्याने के दौरान अधिक परेशानी होना (कठिन प्रसव/असामान्य प्रसव)

(स) आहार में प्रोटीन की कमी:

1. पशु आहार में प्रोटीन की गुणवत्ता तथा मात्रा दोनों ही प्रजनन के लिए आवश्यक हैं
2. प्रोटीन की कमी से अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता भी प्रभावित होती है
3. अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव प्रभावित होने से ऋतु चक्र अनियमित हो जाता है

(द) फास्फोरस की कमी: यदि आहार में प्रोटीन की कमी हो तथा घास या चारा सूखा हो तो फास्फोरस की कमी प्रदर्शित होती है। रक्त में 4 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. से कम मात्रा फास्फोरस की कमी को दर्शाती है। फास्फोरस की कमी से पशु अखाद्य वस्तुओं को भी खाने का प्रयास करता है। इसकी कमी से अण्डाणुओं की परिपक्वता में कमी हो जाती है। गर्भपात एवं अण्डोत्सर्ग में कमी हो जाती है।

(य) कैल्शियम की कमी : कैल्शियम की कमी सामान्यतः प्रजनन सम्बन्धी विकार नही उत्पन्न करती है, परन्तु कैल्शियम तथा फास्फोरस के अनुपात में अन्तर आने पर गर्भाशय का बाहर आना तथा जेर रूकने से प्रजनन प्रभावित हो सकता है। अण्डाणु के निषेचन में कठिनाई हो सकती है।

(र) विटामिन 'ए' की कमी : गर्भ के उत्तरार्द्ध में विटामिन 'ए' की कमी से गर्भपात हो सकता है तथा बच्चे मृत या कमजोर पैदा होते है। गर्भावस्था में शिशु की श्लेष्मा झिल्लियॉ खुरदरी हो जाती है जिससे गर्भपात तथा जेर रूकने की संभावना बनी रहती है। यकृत में विटामिन 'ए' संग्रहीत होता है जिससे इसकी कमी के लक्षण प्रदर्शित होने में लगभग महीने भर का समय लगता है।

(ल) विटामिन 'ई' की कमी : विटामिन 'ई' प्रजनन के लिए नितान्त आवश्यक है परन्तु इसकी आवश्यकता सामान्य चारे से ही पूरी हो जाती है। अतः कमी के लक्षण प्रदर्शित नही होते है।

सामान्यतः यदि पशु को भरपेट सूखा चारा तथा सामान्य दर से हरा चारा मिलता रहे तो सूक्ष्म तत्वों की कमी नही होती है। जिसमें मुख्यतः मैगनीज, कोबाल्ट, लोहा तथा कॉपर हैं। विटामिन तथा खनिजों की कमी दूर करने के लिए पशुओं को 25–50 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन खिलाना आवश्यक है।

प्रबन्धजनित कारण

1. प्रजनन क्षमता की दृष्टि से अधिक गर्म या ठण्ढ़ा मौसम सर्वाधिक अनुपयुक्त होता है। उष्ण कटिबन्धीय देशों में गायें वर्षा ऋतु में तथा भैंसें मई से जुलाई तक गर्मी पर कम आती है। गोपशु अधिक सर्दी अथवा अधिक वर्षा के दौरान न्यूनतम संख्या में ऋतुकाल में आते हैं।
2. उपयुक्त समय पर पशु में गर्मी के लक्षणों को न पहचानना भी पशुओं में अनु–उर्वरता उत्पन्न करता

है। यह उन पशुओं में और महत्वपूर्ण हो जाता है जब उन्हें चरने के लिए नही खोला जाता है।

3. ब्याने के लगभग 60 दिनों बाद प्रजनन (नैसर्गिक/कृत्रिम गर्भाधान) कराना चाहिए। इससे पूर्व प्रजनन कराने पर गर्भ धारण का प्रतिशत कम हो जाता है।
4. असामान्य/कठिन प्रसव के लक्षण दिखलाई देने पर शीघ्र ही पशु चिकित्सक की सहायता लेना सुनिश्चित करें। ब्याने के बाद अधिक समय तक असमान्य स्राव यथा मवाद गिराने वाले पशु का समुचित उपचार पशुचिकित्सक द्वारा कराने के पश्चात समुचित लैंगिक विश्राम देना चाहिए।
5. अधिक शोर वाले वातावरण तथा अशान्त स्थान पर मादा पशु का नैसर्गिक/कृत्रिम गर्भाधान कराने पर उसकी प्रजनन क्षमता पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पशुपालक द्वारा असावधानीवश उत्पन्न अनु–उर्वरता

1. पशु की गर्मी में होने का पता न रखना तथा प्रजनन के अनुचित/गलत तरीके का उपयोग
2. जीवाणुरहित यंत्रों का प्रयोग न करना तथा रोगों से बचाव न करना (समय पर टीकाकरण न कराना)
3. उचित पोषण न उपलब्ध कराना

पशुओं में अनु–उर्वरता से बचाव हेतु– मुख्य सुझाव

1. पशुओं को उत्तम गुणवत्ता का संतुलित आहार देना चाहिए।
2. गायों से प्रति वर्ष एक बच्चा प्राप्त करें। गाय को ब्याने के बाद 2 महीने तक गर्भित नही कराना चाहिए। दो वर्ष में बच्चा देने वाली गाय का सम्यक परीक्षण करवाना चाहिए।
3. गाय कब हीट (मद) में आती है, यह पता करना चाहिए और उसे गर्मी की मध्य अवस्था में गर्भित कराना चाहिए।
4. रोगों से पूर्ण बचाव हेतु समय–समय पर विभिन्न रोगों का टीकाकरण कराना चाहिए।
5. सामान्यतः गर्भित होने के 2 से 3 माह के भीतर गर्भ परीक्षण अवश्य कराना चाहिए।
6. डेरी फार्म पर सम्पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

मादा पशुओ में प्रजनन सम्बन्धी प्रमुख समस्यायें: कारण, उपचार एवं बचाव

संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव
दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, मथुरा (उ.प्र.)

1. गर्भाशय का बाहर निकलना या गर्भाशय एवं योनि का भ्रंश

बच्चेदानी के पूरे अथवा कुछ अंश का योनि से बाहर निकलने को प्रोलेप्स या बच्चेदानी का बाहर निकलना कहते हैं। यह मुख्यत: गर्भावस्था के अंतिम महीनों में और ब्याने के कुछ घण्टों बाद होता है। यह रोग कमजोर पशुओं में अधिक होता है। पशुओं को कम पौष्टिक स्थूल आहार खिलाने से भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है। इसका विभाजन हम दो आधारों पर कर सकते हैं:

गर्भावस्था के आधार पर

(अ) **ब्याने के पहले का प्रोलेप्स**: यह मुख्यत: गर्भावस्था के अंतिम महीनों (मुख्यत: 8-10 महीनों के बीच) में होता है। इसमें गर्भकाल के अन्त में गर्भाशय बाहर निकल आता है। गर्भाशय एवं योनि का बाहर लटकना, भ्रंश कहलाता है।

(ब) **ब्याने के बाद का प्रोलेप्स**: यह मुख्यत: ब्याने के कुछ घण्टों बाद होता है और मुख्यत: पूरी बच्चेदानी बाहर आ जाती है।

बच्चेदानी के भाग के आधार पर

(अ) **गर्भाशय ग्रीवा एवं योनि का प्रोलेप्स** इसमें केवल गर्भाशय ग्रीवा और योनि का कुछ भाग बाहर आता है।

(ब) **गर्भाशय (बच्चेदानी) का प्रोलेप्स** इसमें पूरी बच्चेदानी बाहर आ जाती है और गर्भाशय की गाठें बाहर दिखती है।

कारण

- इस्ट्रोजन हारमोन का अधिक स्राव, शरीर में कैल्शियम की कमी ।
- योनि ऊतकों में अत्यधिक वसा का जमा होना है
- गुदा मार्ग का रोग अथवा कड़ा गोबर करना
- प्रसव में कठिनाई एवं तदोपरांत गर्भाशय में घाव बनना
- ब्याने के समय अधिक जोर लगाने से गर्भाशय का अनियमित संकोचन, हाथ डालकर जोर से खींचना, जेर का न डालना तथा रूमेन की फैलावट इत्यादि इस के मुख्य कारण है।

लक्षण

- गर्भाशय के भागों का योनि से बाहर दिखना। गर्भकाल के अन्त में दोनों भगओष्ठ के बीच एक रक्त वर्ण गॉठ दिखलाई देती है। अन्दर की श्लेष्मिक झिल्ली भी सूजी रहती है और योनि से लसलसा सा पदार्थ भी निकलता रहता है। इसमें पशु लगातार बेचैन रहता है और पूरी बच्चेदानी को योनि मार्ग से बाहर निकालने का बार–बार प्रयास करता है। कभी–कभी गर्भाशय का इतना अधिक भाग बाहर निकल आता है कि दोनों जॉघो के बीच में लटकने लगता है और गर्भाशय ग्रीवा भी बाहर दिखाई देने लगती है। गर्भाशय के ऊपर गर्भाशय की गॉठें भी उपस्थित होते है जो कि गर्भाशय भ्रंस की मुख्य पहचान है।

उपचार/ चिकित्सा

- उपरोक्त लक्षणों के अनुसार रोग के लक्षण देखकर रोग का निदान किया जाता है।
- निकले हुये भाग को लाल दवा (पोटेशियम परमैगनेट) से धो देना चाहिए और इसके उपरांत गीला साफ सूती कपड़ा बाहर निकले बच्चेदानी के भाग पर लपेट देना चाहिए।
- तदोपरान्त जल्द से जल्द पशु चिकित्सक से सम्पक्र करना चाहिए।

ऐन्टीसेप्टिकविधि द्वारा: गर्भाशय को अपनी सामान्य स्थिति में अन्दर वापस कर देना चाहिए।

इसको अन्दर करने की विधियॉ निम्न प्रकार है:–

(अ) ट्रस:

- पशु को अच्छी तरह जकड़ने के बाद पिछले भाग को सुन्न करने के लिये रीड़ की हड्डी में सुन्न की दवा लगानी चाहिए ।
- इसके बाद उसके पेशाब को पतली नली के द्वारा बाहर निकालना चाहिए
- बाहर निकले भाग पर निओस्पोरिन और जाइलोकेन की जेली का लेपन कर हाथ की मुठ्ठी बनाकर बच्चेदानी के भाग को उसके प्राकृतिक अवस्था में कर देना चाहिए।
- हाथ से गर्भाशय को ठीक प्रकार से अन्दर कर के भग ओष्ठ को रस्से की सहायता से मजबूती से बाँध देते है जिस से कि गर्भाशय बाहर न जा सके।

(ब) बुनर/वायरसुचर

इसमें सिलने वाली तार को भग की भगओष्ठ के अन्दर डालकर उसको गोल छल्लों के रूप में मोड़ देते है। जिससे कि वे अन्दर की स्थिति को सामान्य रखे और गर्भाशय को बाहर न आने दें। 7 से 10 दिन बाद टॉके निकाल देना चाहिए।

(स) वेस्टक्लैंप

यह एक विशेष प्रकार का क्लैंप इसी रोग के उपचार हेतु उपयोग करते है। आवश्यकतानुसार इसका आकार भिन्न–भिन्न होता है। इस विधि में भी गर्भाशय को ठीक प्रकार से अन्दर डालकर भग से भगओष्ठ के ऊपर इस क्लैंप को कस देते है जिससे वह फिर बाहर नही आने पाता।

रख–रखाव एवं बचाव

- रोगी पशु को स्वच्छ वातावरण में रखना चाहिए और संतुलित आहार देना चाहिए।
- पशु के पिछले भाग की साफ सफाई का विशेष ध्यान देना चाहिए।
- टॉकों की जगह मलहम और मक्खी प्रतिरोधक स्प्रे का इस्तेमाल करना चाहिए।
- पशु को कैल्शियम और फास्फोरस का घोल पिलाना चाहिए और बच्चेदानी वर्धक घोल पिलाना चाहिए।
- हरा चारा व मैग्नीशियम सल्फेट पशु को खिलाना चाहिए ताकि गोबर पतला हो।
- ब्यॉत से पहले बच्चेदानी का भाग बाहर आता है तो उसमें एंटीबायोटिक और प्रोजेस्ट्रोन का इन्जेक्सन भी लगा देना चाहिए। साथ ही साथ कैल्शियम भी पिलाना चाहिए।

यह एक गम्भीर रोग है, समय पर और सही ढ़ंग से उपचार न करने पर बच्चेदानी में मवाद पड़ सकती है। इससे पशु के दुग्घ उत्पादन में कमी, बॉझपन और पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

2. प्रसूति लकवा

यह रोग मादा पशुओं के ब्याने के कुछ देर पश्चात होता है। इसमें स्वस्थ पशु अकस्मात लेट जाता है और बीमार पड़ जाता है। यही इसकी मुख्य पहचान है।

लक्षण

पशु नीचे जमीन पर लेट जाता है। पशु खड़ा नही हो सकता है। परीक्षण करने पर पशु की नाड़ी तथा श्वांस दर और शरीर का तापमान सामान्य रहते है। पशु का परीक्षण जब कमर के पीछे या कान के पीछे के भाग मे किया जाता है तो उसे छूने पर भी कोई हलचल नही होती है। यही लकवा की मुख्य पहचान भी है।

चिकित्सा/उपचार

- रोगी पशु को दस्तावर आहार देना चाहिए दस्तावर औषधियॉ जैसे मैगसल्फ इत्यादि देनी चाहिए।
- स्ट्रैचनीन का टीका लगाना चाहिए।

3. गर्भाशय शोथ (मेट्राइटिस)

इस रोग में गर्भाशय में सूजन हो जाती है जो प्राय: जीवाणुओं के संक्रमण के कारण होती है। सूजन में मवाद भर जाती है और रोग अधिक बढ़ने पर पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

कारण

रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु–स्ट्रेप्टोकोकाई, स्टैफिलोकोकाई, ट्राइकोमोनासफीटस, कोरिनीबैक्टीरियमपायोजिनीस, माइकोबैक्टीरियमट्यूबर कुलोसिस तथा कोलीफार्म जीवाणु मुख्य हैं।

लक्षण

उग्र गर्भाशय शोथ (अक्यूट मेट्राइटिस)

- अधिक तीव्र रोग में श्लेष्मिक झिल्ली सूज कर लाल हो जाती है तथा पशु बेचैन रहता है।
- प्रारम्भिक अवस्था में बहुत अधिक बुखार होता है जो बाद में सामान्य से कम हो जाता है।
- रोगी पशु की योनि में से गन्दा रक्त मिश्रत मवाद बाहर निकलता रहता है।
- पशु बार–बार पेशाब करता है।

दीर्धकालीन गर्भाशय शोथ (क्रोनिक मेट्राइटिस)

- योनि में से रूक– रूक कर बदबूदार तरल पदार्थ निकलता रहता है।
- पशु बेचैन रहता है।
- पशु बार–बार पेशाब करता है।

रोग का निदान

लक्षणों के अनुसार/रोग के लक्षण देखकर रोग का निदान किया जा सकता है।

माइक्रोस्कोप द्वारा: गर्भाशय स्राव स्लाइड पर लेकर स्टेनिंग द्वारा जीवाणु देखे जा सकते हैं।

चिकित्सा

- एन्टीसेप्टिक लोशन से हाथ धोकर रोगी पशु के गर्भाशय एवं योनि की सफाई; 1:1 एक्रीफ्लेविनलोशन/1:10000 लाल दवा (पोटैशियम पर मैगनेट) से करते है।
- सल्कोप्रिमबोलस 4 – 6 गोलियाँ सफाई के बाद गर्भाशय में रखनी चाहिए।
- स्ट्रेप्टोपेनिसिलन या नियोमाइसीन का टीका अर्न्तपेशी विधि से लगाना लाभदायक होता है।

4. जेर का न डालना

यदि पशु ब्याने के 8 से 12 घण्टे बाद तक जेर नहीं गिराता है तो ऐसी स्थिति को जेर का न गिरना कहते है।

कारण

- गर्भपात, जुड़वा बच्चे, बच्चेदानी की जड़ता/निश्चलता, प्रसव में कठिनाई,
- हारमोन का असंतुलन, विटामिन **ए** और **सेलेनियम** की कमी, कैल्शियम की कमी, किटोसिस

लक्षण: जेर का लटकना, भूख न लगना, तेज बुखार, दूध में कमी

उपचार एवं रोकथाम

- ब्यॉत के तुरन्त बाद नवजात बच्चे को थन से लगाकर दूध पिलाना चाहिए। यह प्रक्रिया जेर को प्राकृतिक रूप से बाहर आने में मदद करती है।
- कुछ आयुर्वेदिक दवाएँ जैसे इन्वोलॉन, यू–टोन, यूट्रा–सेफ, हिमरोप इत्यादि को 100–200 मि ली. पिलाने से भी जेर को बाहर आने में मदद मिलती है। पशु को कैल्शियम भी पिलाना चाहिए।
- हाथ के द्वारा योनि मार्ग से जेर को ऐंठ कर धीरे–धीरे खींचकर निकालना चाहिए। यह विधि सामान्यतः ब्याने के 24–36 घण्टे बाद अपनानी चाहिये।
- हाथ से जेर निकालने के बाद स्ट्रीकलीन 500 मिलीग्राम की चार, फ्यूरिया की दो (1 ग्राम), अथवा सी–फ्लोक्स टी जेड, अथवा पोवीडोन आयोडिन अथवा लिनोवो आई यू 3–5 दिन तक बच्चेदानी में डालनी चाहिए।
- आवश्यकतानुसार स्ट्रोप्टोपेनिसिलीन, ऑक्सीटेट्रासाइकलीन प्रतिजैविक दवाएँ 3–5 दिन तक लगाना चाहिए।
- ऑक्सीटोसिन ब्यॉत के तुरन्त बाद और उसका दोबारा प्रयोग 2–4 घण्टे बाद करने से जेर रूकने की सम्भावना कम हो जाती है ।
- प्रोस्टाग्लैंडिन का इन्जेक्सन ब्यॉत के 24 घण्टे के अन्दर देने पर जेर के रूकने की सम्भावना कम हो जाती है।

पंचगव्य चिकित्साः पशुओं तथा मनुष्यों की स्वास्थ्य रक्षा पद्धति तथा जैव चिकित्सा अनुप्रयोग का एक अवलोकन

रूचि तिवारी, संदीप चक्रवर्ती[1], यशपाल सिंह मलिक एवं कुलदीप धामा[2]

पशुचिकित्सा एवं विज्ञान महाविद्यालय, उ.प्र. पं. दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय एवं गौ–अनुसंधान संस्थान मथुरा, (उ.प्र.)

पंचगव्य चिकित्सा पद्धति मानव स्वास्थ्य की रक्षा करने के साथ–साथ मुर्गियों व पशुओं के स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायक एक वैकल्पिक रोगनिरोधक तथा चिकित्सीय उपाय है। वर्तमान समय में पंचगव्य चिकित्सा निरंतर लोकप्रिय होती जा रही है। मानव चिकित्सा तथा पशुचिकित्सा दोनों ही पंचगव्य चिकित्सा के महत्वपूर्ण गुणों जैसे – रोगाणुरोधी, प्रतिरक्षा वर्धक, मधुमेह रोधी, कैंसर विरोधी, विषाणुरोधी, प्रतिजैविक, कवकरोधी, रक्तशोधक, दवाओं के माध्यम के रूप में प्रयुक्त तथा स्वास्थ्य में गिरावट को रोकने वाले गुणों के कारण इस चिकित्सा पद्धति की ओर आकर्षित हो रहे हैं। कुछ पंचगव्य उत्पाद आज कल व्यवसायिक रूप से बाजार में भी उपलब्ध हैं। पशुचिकित्सा तथा पशुस्वास्थ्य रक्षा हेतु इन महत्वपूर्ण व मूल्यवान गौ उत्पादों की क्षमता का अधिक आंकलन किये जाने की आवश्यकता है। यहाँ प्रस्तुत लेख के माध्यम से पशुओं व मनुष्यों दोनों की स्वास्थ्य रक्षा हेतु पंचगव्य के अवयव कारकों के जैवचिकित्सा अनुप्रयोगों व अन्य लाभकारी प्रयोगों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

परिचय

पंचगव्य गाय से प्राप्त होने वाले व चिकित्सीय गुणों से युक्त पॉच पदार्थो दूध, दही, घी, गौ–मूत्र तथा गोबर से मिलकर बनता है। पंचगव्य चिकित्सा का प्रयोग एकल रूप से अथवा पादप–औषधीय, पशु या खनिज लवण मूल की अन्य दवाओं के साथ संयोजित रूप से रोगों तथा स्वास्थ्य अनियमितताओं की चिकित्सा हेतु किया जाता है। प्रत्येक पंचगव्य उत्पाद विशिष्ट गुणों से युक्त होता है जिनका प्रयोग स्वास्थ्य, कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में लाभ हेतु किया जाता है। गाय का दूध, दही व घी उच्च पोषक गुणों वाले होते हैं तथा गौमूत्र व गौ अपशिष्ट (गोबर) ऊर्जा, बायोगैस व विद्युत के वैकल्पिक स्रोत की तरह भली–भॉति कार्य करने में सक्षम होते हैं।

पंचगव्य चिकित्सा

- पशु, कुक्कुट व मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा व चिकित्सा हेतु एक उपयोगी विकल्प के रूप में इस चिकित्सीय पद्धति को दर्शाया गया है।
- पंचगव्य उत्पादों में नाइट्रोजन, सल्फर, फॉस्फेट, सोडियम व मैंगनीज, कार्बोलिक, सक्सीनिक व सिट्रिक अम्ल, लौह, सिलिकन, क्लोरीन, मैग्नीशियम व कैल्शियम लवण, विटामिन (ए, बी, सी, डी व ई), लवण तथा हार्मोन की मात्रा तुलनात्मक रूप से अधिक होती है।

पंचगव्य उत्पादों को अनगिनत मानव स्वास्थ्य अनियमितताओं के इलाज व शरीर की रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाकर विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोगों के विरूद्ध कारगर उपचार के रूप में जाना जाता है।

पंचगत्य उत्पादों को निम्नलिखित रोगों व अनियमितताओं में बचाव व रोकथाम हेतु उपयोगी व लाभप्रद बताया गया है–

1. फ्लू, एलर्जी, नजला, खॉसी–जुकाम
2. गठिया, रूमेटॉयड गठिया, दमा
3. त्वचा का बालरहित हो जाना, रक्त में लिपिड (वसीय अम्ल) की अधिक मात्रा, श्वेत त्वचीय रोग, अपशिष्ट मल में श्वेत रक्त कणिकाओं का क्षय

1. एनिमल रिसोर्स डेवलपमेंट विभाग, पं. नेहरू कम्पलैक्स, अग. रतला (त्रिपुरा)

2. विकृति विज्ञान विभाग, भाकृअनुप–भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली (उ.प्र.)

4. जठरांत्र व खाद्य तंत्र सम्बन्धी अनियमिततायें: जैसे–अम्लता व छाले
5. घाव के शीघ्र भरने में, त्वचीय संक्रमण व रोग, दाद, खुजली
6. क्षय रोग, छोटी माता, कोढ़, जीवाणुजनित व विषाणु जनित संक्रमण
7. जीर्णता, मोटापा, रासायनिक विषाक्तता, कृमियों के प्रतिकूल प्रभाव
8. कैंसर, एड्स व मधुमेह जैसे घातक रोग

रोग प्रतिरोधक क्षमता वर्धक

1. कोशिकीय व प्रतिरक्षी अणु दोनों से सम्बन्धित प्रतिरक्षी क्षमता वर्धक
2. लसिका कोशिकाओं की संख्या साइटोकाइन्स के स्रवण व मैक्रोफेज कोशिकाओं की क्रियाशीलता को बढ़ाने वाले
3. लसिका कोशिकाओं में एपाप्टोसिस को कम करके संक्रमण के विरूद्ध लड़ने व उनके जीवन काल को बढ़ाने में सहायक

जीर्णता रोधी कारक

1. मुक्त आयन उत्पादन को रोकने में सक्षम
2. अपक्षयित डी.एन. ए. की कुशलतापूर्वक मरम्मत करने में सक्षम।

पंचगव्य जीवाणु संवर्धन माध्यम के सरल व प्राकृतिक स्रोत के रूप में सफल हैं क्योंकि ये कम लागत वाले तथा वृद्धि कारक गुणों के साथ–साथ फफूँदीरोधी गुणों से युक्त होते हैं। पंचगव्य के फफूँदीरोधक गुण का प्रयोग एक सफल सूक्ष्मजीवाणु संवर्धन माध्यम के निर्माण में किया जा सकता है।

कुक्कुट उत्पादन में पंचगव्य चिकित्सा के अनुप्रयोग

1. पंचगव्य का प्रयोग जब एन्ड्रोफिलस पैनीकुलाटा जैसे पौधों के साथ संयोजित रूप से किया जाता है तब ये वृद्धि में सहायक एंटीबायोटिक औषधियों के विकल्प की तरह कार्य करके ब्रायलर उद्योग में उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होते हैं।
2. अण्डे देने वाली मुर्गियों में होने वाले विषाणु जनित रोगों के विरूद्ध भी रक्षात्मक प्रभाव दर्शाते हैं।

गौमूत्र

गौमूत्र लाभकारी रासायनिक गुणों से युक्त होने के साथ–साथ शरीर में अनियमितता कारी अवगुणों को दूर करने व इसके दुष्प्रभाव को कम करने में सक्षम अवयवों से युक्त होता है। गौमूत्र शरीर में तत्वों की कमी से होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के साथ–साथ तत्वों के आधिक्य को भी कम करके शारीरिक संतुलन स्थापित करने में सहायक होता है।

गौमूत्र के प्रमुख अवयव

- 95% जल, 2.05% यूरिया, खनिज लवण, 2.5% हार्मोन व जैव उत्प्रेरक (एन्जाइम)
- कैल्शियम व फास्फोरस, लवण व कार्बोनिक अम्ल, पोटाश, नाइट्रोजन व अमोनिया, मैग्नीज व लौह तत्व, सल्फर, फास्फेट व पोटेशियम, यूरिया व यूरिक अम्ल, अमीनो अम्ल व उत्प्रेरक एन्जाइम, साइटोकाइन व लैक्टोज इत्यादि।
- ताँबा अपने रोगमारक गुण के कारण रोग प्रतिरोधी की तरह कार्य करता है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ

1. प्रतिरक्षा क्षमता वर्धक : साइटोकाइन्स (आई एल–1 व 2) के स्त्रवण को बढ़ाता है व अमीनों अम्ल द्वारा चूहे में यह टी व बी दोनों लसिका कोशिकाओं को बढ़ाने वाला तथा इम्युनोग्लोबुलिन ए, जी, व एम प्रतिरक्षी अणुओं के स्तर में वृद्धि करने वाला है।
2. घाव को भरने में सहायक : एल्बीनों चूहों में काटने के कारण होने वाले घाव के भरने की गति को बढ़ाने में सहायक होता है।

3. सूक्ष्मजीवी मारक गुणों से युक्तः प्रतिरोधी जीवाणु व विषाणुओं को मारने में सक्षम।
4. कैंसर, एड्स, मधुमेह तथा त्वचीय रोगों जैसी कई घातक लाइलाज बिमारियों में उपयोगी।
5. एक उत्तम क्षुधावर्धक (भूखवर्धक) टॉनिक की तरह उपयोगी ।
6. गौमूत्र का अक्र सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाली प्रतिजैविकों, कवकरोधी, तथा कैंसर–रोधी दवाओं की खुराक व समय –सीमा को कम करके जैव सहायक की तरह इसके प्रभाव को बढ़ाता है।
7. प्रतिजैविक औषधियों के साथ यह जीवाणुजनित रोगों को रोकने में सहायक, कैंसर व क्षयरोग के रोगियों में जैव क्षमता को बढ़ाने वाला होता है। वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद, भारत को इसके लिए अमेरिकी पेटेंट मिला हुआ है।
8. एम्पीसिलीन, आइसोनियाजाइड, क्लोट्रीमाजॉल, रिफैम्पिसिन व साइनोकोबालामीन जैसी औषधियों के साथ संयोजित रूप से दिये जाने पर प्रभाव संवर्धक गुणों से युक्त।
9. मानव स्तन कैंसर कोशिका से निर्मित एम.सी. एफ.–7 सेल लाइन के प्रति टैक्सॉल दवा की क्षमता को बढ़ाने में सहायक ।
10. मूत्र मार्ग व तंत्र पर गौमूत्र का परोक्ष प्रभाव होता है तथा इसका प्रयोग दवाओं की खुराक को कम करने में प्रभावी होता है।
11. प्रतिजैविक दवाओं के साथ संयोजित रूप से गौमूत्र का प्रयोग सूक्ष्मजीवों में औषधि प्रतिरोध के विकास को कम करने में सहायक होता है।
12. क्विनिलोन व फ्लैवोक्वीनलोन्स के कवकनाशक गुणों के कारण गौमूत्र प्रभावी कवकरोधी भी होता है। यह कई कवक रोगकारकों जैसे यूसेरियम ओक्सीस्पोरम, क्लेवीसेप्स परप्यूरिया, राइजोपस ओलिगोस्पोरस, एस्पर्जिलस ओराएजी, कर्वुलेरिया प्रजाति, अलटर्नेरिया हेलियन्थाई तथा क्लेडोस्पोरियम प्रजाति के विरूद्ध प्रभावी है।
13. यह आक्सीकरण करने वाले मुक्त आयनों के उत्पादन को रोककर जीर्णता–विरोधी कारक के रूप में कार्य करता है।
14. प्रातः काल के गौमूत्र की मध्य धारा का मौखिक रूप से सेवन स्वास्थ्यवर्धक व मामूली अस्वस्थता से रक्षा करता है।
15. गौमूत्र से गरारा गले के दर्द व ठण्ड के इलाज में सहायक है।
16. दाढ़ी बनाने के बाद चेहरे में लगाने के लिए, बालों की वृद्धि के लिए तथा मालिश करने में भी उपयोगी है।
17. कीट प्रतिकर्षी के रूप में उपयोगी।
18. त्वचा, नाखूनों व पैरों से संबधित (एथलीट फूट, दाद जैसे कवक जनित) रोगों के इलाज में अच्छे प्रभाव दर्शाने वाली चिकित्सीय पद्धति।
19. गौमूत्र से बना काढ़ा (सी.यू.सी.) एक लोकप्रिय औषधि है जो 50 से अधिक औषधीय गुणों वाले तत्वों (शर्करा के स्तर को नियमित/कम रखना, यकृत संक्रमण से बचाव, बुखार, शोथ व एनीमिया से बचाव) से युक्त होता है।
20. रोगजनक जीवाणुओं जैसे बैसीलस सबटिलिस, स्टैफायलोकोकस ऑरियस, ई.कोलाई, एन्टेरोबैक्टर एरोजेन्स, अवसरवादी कवक रोगकारक जैसे एस्पर्जिलस नाइगर तथा ऑत के गोलकृमियों से होने वाले रोगों व संक्रमणों के इलाज में अत्यंत लाभकारी है।
21. अधिकांश औषधियॉ गौमूत्र के तनुकरण व वाष्पीकरण से एकत्रित वाष्प जिसे ''गौमूत्र अक्र'' कहते हैं, द्वारा बनायी जाती हैं।

कुक्कुट उत्पादन बढ़ाने में उपयोगिता

- टीकाकरण के साथ संयोजित रूप से पक्षियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाकर बेहतर सुरक्षा प्रदान करते हैं
- अण्डों के उत्पादन व गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक
- लसिका कोशिकाओं की संख्या को बढ़ाने में मददगार
- अण्डा देने वाली मुर्गियों के सीरम जैव रासायनिक प्रोफाइल (कुल सीरम, प्रोटीन, ग्लूकोज, कैल्शियम, कोलेस्टेरॉल) के लिए लाभकारी
- पक्षियों के शारीरिक वजन व रक्त सम्बन्धी प्रोफाइल पर सकारात्मक प्रभाव
- तरल व कोशिकीय दोनों प्रकार की रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने में सहायक

गौदुग्ध

यह कई आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कई सूक्ष्म पोषक तत्वों, प्रोटीन, कैल्शियम, कैरोटिन, विटामिन ए, सी, बी समूह, कम कोलेस्टेरॉल व ऊर्जा का समृद्ध स्रोत होता है

- यह एक खास जैव ऊर्जात्मक वाईटलाइजर की तरह कार्य करता है,
- मानव स्वास्थ्य में जैव सुरक्षा की भूमिका निभाने वाला सुपाच्य तरल होता है,
- मधुमेह, फोड़े, बुखार व पीड़ा के इलाज में प्रभावी होता है,
- दवा देने के माध्यम के रूप में भी कार्य करता है,
- कवकनाशी गुणों से युक्त है,
- भैंस के दूध की तुलना में प्रोटीन की मात्रा कम होने के कारण गुर्दो की बीमारियों में उपयोगी,
- प्रतिरक्षी अणु आइ.जी.ए., लैक्टोफेरिन, लायसोजाइम, लैक्टोपरआक्सीडेज तथा विटामिन बी–2 से संबद्ध प्रोटीन के कारण रोगाणुरोधी प्रभाव होते है,
- लैक्टोफेरिन बी उल्लेखनीय कवकरोधी क्रियाशीलता दर्शाता है,
- आँखों का टौनिक कैरोटिन (विटामिन–ए) की उपस्थिति के कारण यह देखने की क्षमता को भी बढ़ाता है,
- पोषक तत्वों की अवशोषण क्षमता को बढ़ाता है
- स्वास्थ्य के लिए उत्तम टॉनिक, हृदय व दिमाग को स्फूर्ति व ऊर्जा प्रदान करने वाला तथा आयु व शारीरिक क्षमता को बढ़ाने में समर्थ है,
- शरीर में अम्लता को कम करने में सहायक होता है जिससे पेट में छालों के बनने की संभावना कम होती है,
- माता के दूध के बाद शिशुओं हेतु तथा वयस्कों में भोजन के उपयुक्त पूरक के रूप में यह अति उत्तम है,
- तरूणों व युवाओं की वृद्धि एवं विकास हेतु सभी पोषक तत्वों के उचित अनुपात वाला सही मिश्रण स्रोत है,
- यह विटामिन के व फोलिक अम्ल का अच्छा स्रोत है जो एनीमिया तथा शिशुओं की रक्तस्रावी रोग दोनों से रक्षा करता है,
- लाल अथवा श्याम वर्ण की गाय का दूध यदि अर्जुन वृक्ष (टर्मिनालिया अर्जुना) की पत्तियों, मूँग की (फैसियोलस मूंगों) पत्तियों या दानों के साथ अथवा सैकरम ऑफीसिनेरम (इक्क्षु) के साथ दिया जाय तो यह कायाकल्प करने वाला तथा कामोद्दीपक होता है।

गाय के दूध के कैंसर विरोधी प्रभाव

- गाय के दूध का वसीय अम्ल वाला घटक एक समर्थ कैंसर विरोधी कारक होता है
- यह बड़ी आँत, स्तन तथा त्वचा के कैंसर की संभावना को कम करता है
- संयुग्मित लिनोलिक अम्ल (सी.एल.ए) कैंसर प्रभावित कोशिकाओं के अनियमित प्रसार को रोकता है

गौदुग्ध से निर्मित उत्पादों के उपयोग

- विटामिन ए, डी, तथा पायरिडाक्सिन से पूरक, वसा हटाया हुआ स्किम दुग्ध पाउडर उच्च पोषक मूल्यों वाला अपेक्षाकृत एक सस्ता आहार है।
- टोन्ड दूध कुपोषित बच्चों व गर्भवती स्त्रियों के लिए प्रोटीन का एक उपयोगी स्रोत है।
- जिस प्रकार मानव दूध का प्रोटीन शिशुओं के लिए उपयोगी होता है उसी प्रकार गोदूध का प्रोटीन भी दही के रूप में शिशुओं के आहार में पूरक की तरह प्रयुक्त होता है।
- अन्य उत्पादों में खोया (मावा), छेना (कॉटेज चीज), पनीर, योघर्ट, लस्सी (बटर मिल्क) तथा घी आदि भी महत्वपूर्ण हैं।

गौ–दही

- यह वातनाशक, रक्तशोधक, त्रिदोषनाशक माना जाता है तथा पित्त के उत्पादन, रक्त सम्बन्धी स्वास्थ्य समस्याओं, बवासीर तथा जठरांत्र संबन्धी विकारों में उपयोगी पाया गया है।
- यह सबसे पौष्टिक व रूचिकर खाद्य पदार्थो में से एक है।
- एक प्रभावी प्रोबायोटिक की तरह कार्य करके यह (गैर–दवा की तरह) संक्रमण की रोकथाम में सहायता करता है।
- गाय का दही एवं छाछ एक पोषक, सुपाच्य व विश्वसनीय पेय है जो हानिकारक सूक्ष्मजीवों के विकास को रोक कर जठरांत्र संबन्धी समस्याओं के निराकरण में उपयोगी है।
- लैक्टिक अम्ल उत्पन्न करने वाले जीवाणु कवकनाशी तत्वों (चक्रीय डाइपेप्टाइड्स, फेनिल लैक्टिक अम्ल), प्रोटीनयुक्त उत्पादों व 3–हाइड्रोक्सीकृत वसीय अम्ल का भी उत्पादन करते हैं

गाय का घी

- घी स्मरण शक्ति, आवाज की गुणवत्ता, दृष्टिक्षमता, बुद्धि तथा संक्रमण के प्रति शारीरिक प्रतिरोध क्षमता को बेहतर बनाता है,
- शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने के साथ–साथ, मांस पेशियों व कंडराओं को स्वस्थ व बेहतर बनाता है,
- एक अच्छा रक्त शोधक है,
- जीर्णता विरोधी कारक है,
- ह्दय रोगियों व कोलेस्टेरॉल पीड़ितों के लिए लाभदायक है,
- घावों के भरने की दर को बढ़ाता है,
- लकवा व दमे से बचाव व रोकथाम में सहायक है,
- प्रतिरोधक क्षमता वर्धक न्यूट्रोफिल्स संग्रहण को बढ़ाने वाला, हीम एग्लूटिनेशन टाइटर (सांद्रता) की माप तथा दीर्घकालिक अतिसंवेदनशील प्रतिक्रिया (डिलेड प्रकार की हाइपरसेंसटिविटी क्रिया) में सहायक होता है।

गाय का गोबर

- जीवाणुरोधी, कवकरोधी व रोगाणुरोधक गुणों से युक्त त्वचा की तन्यता व चमक को बनाये रखने वाला सोरियेसिस, एक्जिमा तथा घावों के सड़ने –गलने (गैन्ग्रीन) से बचाने वाला,
- नीम की पत्तियों के साथ तैयार मिश्रण त्वचा पर उष्मा से हुये फोड़ों व चकत्तों के उपचार के लिए अच्छा होता है,
- रासायनिक दंतमंजनों का एक अच्छा विकल्प, रोग, किण्वन तथा मवाद उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों को नष्ट करता है,
- गाय का ताजा गोबर मलेरिया व क्षय रोग के कारण रोगाणुओं को मारने में सक्षम होता है,
- कवकनाशी तत्व मलभक्षी कवक के विकास को रोकता है,

- गाय के गोबर में उपस्थित यूपेनिसिलियम बोवीफाइमोसम टुलोडिन की तरह का (सी के 2108 ए तथा सी के 2801 बी) यौगिक उत्पन्न करता है जो कवकरोधी गुणों से युक्त होता है,
- दवाओं के अवशोषण उपरांत शरीर में अंतिम चयापचयी प्रभाव के अध्ययन हेतु एक प्रासंगिक पारिस्थितिकी तंत्र के मानक का प्रभाव कार्य करता है,
- दो बेसिडियोमायसिटीन कवकों के पृथकीकरण ने इस संभावना को जन्म दिया है कि लिग्नोसेलुलोज क्षयीकरण तथा एनरोफ्लाक्सासिन जैसी दवाओं के चयापचय हेतु सी. स्टर्कोरियस उत्तरदायी हो सकते हैं,
- उच्च पोषक तत्व व वृहद् सूक्ष्मजीव आबादी के कारण विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों के जैविक उपचार में उपयोगी है। अतः पशुओं व मानव स्वास्थ्य पर जैव कीट नाशकों के हानिकारक प्रभावों से बचाने में उपयोगी हैं।

पंचगव्य उत्पाद: पंचगव्य तत्वों से निर्मित प्रमुख उत्पाद जैसे दंतमंजन, चाय, सौदर्य प्रसाधन, बालों का तेल, मालिश हेतु तेल, रूसी हटाने वाला शैम्पू, सौन्दर्य साबुन, विभिन्न जड़ी बूटियों के साथ संयोजित उत्पाद, अर्क आदि बाजार में उपलब्ध हैं।

कृषि संबद्ध पद्धतियों में प्रयोग

- पंचगव्य उत्पाद कृषि की आर्थिक रूप से संबधित पद्धतियों के लिए जैव उर्वरकों, वर्मीकम्पोस्ट तथा जैवकीटनाशकों की तरह उपयोगी होते हैं गौमूत्र तथा गाय का गोबर उत्तम गुणों वाली प्राकृतिक खाद के रूप में जैविक खेती में उपयोगी होते हैं।
- मृदा की उर्वरकता में सुधार करने के साथ–साथ कृषि उत्पादों की उपज/खुराक, गुणवत्ता तथा स्वाद में भी सुधार करते हैं।
- रासायनिक उर्वरकों/कीटनाशकों से संभावित स्वास्थ्य खतरों से युक्त खाद्यान्न प्रदान करते हैं।
- रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के बजाय सूक्ष्मजीवों की विकास दर को बढ़ाकर मृदा की उर्वरकता को बढ़ाने में सफल भूमिका का वहन करते हैं।

निष्कर्ष

पंचगव्य पशुओं व मनुष्यों के विभिन्न रोगों के निदान व समाधान के साथ–साथ अनगिनत जैव चिकित्सा अनुप्रयोगों से युक्त एक उत्साहवर्धक सकारात्मक उपाय है। इसके प्रयोग को भविष्य में वैज्ञानिक परीक्षण ों, शोधों, अनुसंधान से प्राप्त मान्यता, चिकित्सीय परीक्षण ों व व्यवसायीकरण से समाज व लोगों के मध्य अधिक लोकप्रियता मिलेगी। पंचगव्य से होने वाले लाभों के प्रति जागरूकता से दानों व खाद्यानों की कमी ईधन आश्रय, अच्छा स्वास्थ्य, पोषण, गरीबी उन्मूलन तथा बेरोजगारी की समस्या व लागत प्रभावी ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत की समस्या का समाधान हो सकता है। खान–पान की आदतों तथा पद्धतियों में बदलाव के कारण, वर्तमान में आ रही कई नवीन उभरती स्वास्थ्य समस्याओं व पुनः उभर रहे रोगों के विरूद्ध लड़ने हेतु पंचगव्य से उचित स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने की दिशा में अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

पशुधन व्यवसाय के लिए संतुलित आहार प्रबंधन

चन्द्रनाथ मिश्र, विकास गुप्ता, सतीश कुमार एवं राजपाल मीना

भाकृअनुप–गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल (हरियाणा)

विश्व की लगभग 17 प्रतिशत जनसंख्या एवं 18 प्रतिशत पशुधन भारत में है जो विश्व के 2.4 प्रतिशत भू–भाग पर निवास करते हैं और विश्व में सबसे अधिक संख्या में हैं। दुनिया की 57 प्रतिशत कुल भैंसे तथा 16 प्रतिशत गाय–बैल मवेशी हमारे देश में हैं। पशुधन एक मुख्य व्यवसाय है जो लगभग 22.45 मिलियन व्यक्तियों को नियमित रोजगार प्रदान करता है और जिसका वर्ष 2009–10 की जीडीपी में 4.1 प्रतिशत का योगदान रहा। भारत में डेयरी उद्योग का विकास तीव्रगति से हो रहा है जिसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान वार्षिक वृद्धि दर का अनुमान 6–7 प्रतिशत है, जिसमें 5 प्रतिशत दूध उत्पादन तथा 10 प्रतिशत मुर्गी पालन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह वृद्धि दर हासिल करने हेतु पशुओं के लिए संतुलित आहार अति आवश्यक है। पशुपालन एवं डेयरी उद्योग से जुड़े व्यक्तियों को पशुओं के संतुलित आहार के बारे में ज्ञान होना अति आवश्यक है जिससे पशुपालकों को अच्छा मुनाफा हो सके। संतुलित आहार के ज्ञान, स्त्रोत तथा विभिन्न आयु के पशुओं को खिलाने की मात्रा एवं समय का ज्ञान होना भी अत्यंत आवश्यक है।

संतुलित आहार

संतुलित आहार पशुओं को प्रतिदिन का निर्वाह, उत्पादन एवं कार्यो के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करता है। इस आहार के प्रमुख कारक निम्न है:–

1. सभी आवश्यक पोषक पदार्थ जैसे कि प्रोटीन, उर्जा, खनिज लवण तथा विटामिन की उचित मात्रा होनी चाहिए।
2. स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिए।
3. संतुष्टि प्रदान करने वाला होना चाहिए।
4. पाचनीय एवं स्वादिष्ट होना चाहिए।
5. रसदार हरे चारे की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए।

तालिका 1: भोजन में दाने की मात्रा

पशु श्रेणी	निर्वाह आवश्यकता (कि.ग्रा.)	उत्पादन आवश्यकता
सूखी गाय	1.0	–
दुधारू गाय	1.0	1.0 कि.ग्रा. प्रति 3 ली. दूध
सूखी भैंस	1.5	–
दुधारू भैंस	1.5	1.0 कि.ग्रा प्रति 2.5 ली. दूध

पशु यदि 5–6 माह से अधिक गर्भ से हो तो उसे 1 कि.ग्रा. दाना अतिरिक्त देना चाहिए।

संतुलित आहार प्रदान करने के प्रमुख नियम

1. दानों के मिश्रण में 40 प्रतिशत चारा उपयोगी (ज्वार, मक्का, चरी, बाजरा, जई, जौ इत्यादि) धान फसलें (खरीफ), 40 प्रतिशत खली एवं 20 प्रतिशत चोकर देना चाहिए।
2. प्रत्येक पशु को 50 ग्राम साधारण नमक तथा 30 ग्राम खनिज चूर्ण प्रदान करना चाहिए।
3. शुष्क पदार्थ को दो तिहाई सूखे चारे से तथा शेष भाग हरे चारे से देना चाहिए।
4. यदि बरसीम अथवा लोबिया जैसे हरे चारे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों तो निर्वाह राशन में 1 कि.ग्र. दाना कम कर देना चाहिए।

चारा तथा चारागाह विकास योजना: पशुओं की पोषण व्यवस्था में सुधार करने के उद्देश्य से पूरे देश में 'चारा तथा चरागाह विकास योजना' चलाई गई है। इस योजना के अंतर्गत गांवों में चारा फसलों के प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करना, किसानों को चारा प्रदान करने वाली फसलों के उत्तम बीज वितरित करना, संतुलित आहार का प्रदर्शन तथा चारागाहों में सुधार करने का प्रावधान है।

वर्ष भर हो चारे की उपलब्धता: भारतवर्ष में कृषि जलवायु एवं चारा उत्पादन की दृष्टि से पशुओं को पूरे वर्ष चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। पशुओं के लिए वर्ष भर चारे की उपलब्धता निम्न तालिका में दर्शाई गई है।

तालिका 2: वर्ष में विभिन्न चारों की उपलब्धता

चारे का प्रकार	माह											
	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर
बरसीम	√	√	√	.	.	.	.	.	.	.	√	√
लूसर्न	√	√	√	.	.	.	.	.	.	.		√
जई	√	√	√	.	.	.	.	.	.	.	√	√
नेपियर घास	√	√	√	√	√	√	√	√	√	√	√	√
लोबिया	.	.	.	√	√	√	.	.	.	.	.	.
एम पी चरी	.	.	.	√	√	√	√	.	.	.	.	.
मक्का	.	.	.	.	.	√	√	.	.	.	.	.
ज्वार	.	.	.	.	.	.	.	√	√	.	.	.
बाजरा	.	.	.	.	.	.	.	√	√	.	.	.
दीनानाथ घास	.	.	.	.	.	.	.	√	√	√	√	.

विभिन्न चारे/दानों में पोषक तत्वों का प्रतिशत: चारे में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व पाये जाते हैं जो निम्न तालिका में दर्शाए गये हैं। पाच्य प्रोटीन सबसे अधिक मूँगफली की खली में पाया जाता है। वहीं सम्पूर्ण पाचनीय तत्व (सम्पूर्ण पाचनीय तत्व, पाच्य प्रोटीन, पाच्य कार्बोहाईड्रेट; पाच्य रेशा; पाच्य वसा) मक्के के दाने में पाया जाता है। अन्य चारे/दानों की पोषक गुणवत्ता निम्न तालिका में प्रदर्शित की गयी है। पोषक तत्वों का ज्ञान पशुपालक एवं चारा उत्पादन करने वाले व्यक्ति को होने से वह बेहतर पोषक तत्व प्रदान करने वाले चारे का चुनाव कर सकता है।

पशुधन ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में वर्ष भर रोजगार प्रदान करता है तथा इसे कृषि के साथ–साथ सुचारू रूप से अपनाकर अधिक आय अर्जित की जा सकती है। कृषि तथा पशुपालन एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। कृषि के लिए पशु बहुमूल्य एवं अत्यंत आवश्यक खाद उपलब्ध करवाते हैं, जिसके बिना लम्बे समय तक कृषि सम्भव नहीं हो सकती। इसके अलावा पशु दूर–दराज के गांवों तथा कस्बों में माल ढुलाई के लिए भी अत्यंत उपयोगी होते हैं। वहीं दूसरी ओर कृषि पशुओं के लिए चारा उपलब्ध करवाती है।

तालिका 3: विभिन्न चारों दानों में पोषक तत्वों का प्रतिशत

चारा	डी.जी.पी. पाच्य प्रोटीन	टी.डी. एवं सम्पूर्ण पाचक तत्व
जौ दाना	6.65	79.50
चना दाना	10.73	75.34
जई दाना	7.06	79.50
मक्का दाना	7.40	84.76
बिनौला	11.35	79.52
सरसों खली	27.29	73.63
मूँगफली खली	41.92	71.02
गेहूँ चोकर	8.18	68.20
चावल चोकर	7.89	63.68
गेहूँ भूसा	-	40.20
धान पुआल	-	37.50
बरसीम	2.81	12.82
लूर्सन हरी	2.50	11.60
जई हरी	1.10	16.70
सूजन घास	0.39	11.10
नेपियर घास	1.60	12.90
लोबिया हरा	2.50	12.0
ज्वार शुरू कटाई	0.34	11.50
ज्वार बाद कटाई	0.50	16.70
मक्का हरी	1.17	17.00
बाजरा	1.00	14.80
लूसर्न सूखी	14.23	50.40

तालिका 4: सामान्य रूप से प्रयोग होने वाले चारे में सूक्ष्म पोषक तत्व

चारा	औसत मि.ग्रा./ कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ				
	लौह	ताँबा	जिंक	मैग्नीशियम	आयोडीन
गेहूँ भूसा	250.35	26.8	17.08	41.74	1.25
पुआल	114.1	2.62	16.74	128.21	1.11
बरसीम	453.07	17.91	36.56	84.72	0.71
जई	422.75	18.51	32.61	97.66	0.60
ज्वार	208.20	13.0	17.53	73.67	0.78
मक्का	169.45	12.14	18.18	55.91	1.10

(एन बी ए जी आर द्वारा उपलब्ध जानकारी के अनुसार)

पशु आहार में खनिज एवं विटामिन का महत्व

अनिल सैनी

कृषि विज्ञान केन्द्र, गैना–ऐंचोली, पिथौरागढ (उत्तराखण्ड)

पशुओं के अच्छे स्वास्थ हेतु इक्कीस खनिजों की आवश्यकता होती है। पशुओं हेतु आवश्यकता को देखते हुए इस खनिजों को दो भाग में बांट सकते है। 1. मुख्य खनिज 2. सूक्ष्म खनिज।

मुख्य खनिजों में सबसे महत्वपूर्ण कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, क्लोरीन, पोटेशियम, सल्फर, मैग्निशियम हैं तथा सूक्ष्म स्तर पर महत्वपूर्ण खनिज कॉपर, कोबाल्ट, आयरन, आयोडीन, जिंक, मैगनीज तथा सेलेनियम है। अधिकतर खनिज पशुओं द्वारा खाये जाने वाले चारे या अन्य आहारों में उपलब्ध होते हैं। सामान्य परिस्थितियों में दुधारू पशुओं की आवश्यकताऐं सम्पूर्ण आहार दिये जाने से पूर्ण हो जाती हैं। खनिजों की थोड़ी या ज्यादा कमी पशु शरीर में होने पर कम या ज्यादा लक्षण प्रकट होने लगते हैं। थोड़ी कमी या उपनैदानिक होने पर पशु के विकास एवं उत्पादन में अचानक कमी हो जाती है एवं स्पष्ट लक्षण प्रकट नहीं हो पाते। इस अवस्था में पशु शरीर में खनिजों की वास्तविक कमी हो जाने के साथ–साथ खनिजों का असंतुलन हो जाता है जिसका विपरीत प्रभाव पशु शरीर पर पड़ता है। पशु शरीर में खनिजों के असंतुलन हो जाने से अघुलनशील तत्व बन जाते हैं, जिनका उपयोग पशु शरीर नहीं कर पाता एवं खनिजों की कमी बढ़ती जाती है।

खनिजों की कमी एवं असंतुलन के कारण चयापचय प्रभावित होता है तथा विशेष खनिज कमी की बीमारी उत्पन्न हो जाती है। प्रजनन एवं इसके कारण पशु की ब्यांत प्रतिशत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। दुग्ध उत्पादन ही पशु के अच्छे स्वास्थ्य से सीधा जुड़ा है तथा चयापचय में आयी गड़बड़ी के कारण उत्पादन घट जाता है।

धीमा विकास करने वाले एवं कम उत्पादन वाले पशुओं तथा ज्यादा उत्पादन वाले पशुओं में खनिजों की आवश्यकता अलग–अलग होती है। इसी कारण से कम उत्पादक पशुओं में खनिजों की थोड़ी सी कमी से कम प्रभाव पड़ता है। परन्तु उच्च उत्पादक पशुओं पर गंभीर प्रभाव पड़ता है एवं बीमारी के ज्यादा लक्षण दिखाई देते हैं। प्रायः पशुपालक को पशुओं में खनिजों की कमी होने का पता ही नहीं चलता; साथ–साथ कमी हो जाने पर वह इसकी पहचान नहीं कर पाता। उच्च उत्पादक पशुओं में उचित मात्रा में चारे के साथ अलग से सही मात्रा में खनिजों को देने से उनकी उत्पादकता में वृद्धि पायी गयी है। किसी खनिज की कमी के लक्षण दिखायी न देने के बाद भी यह वृद्धि पायी गयी है। परन्तु कमी होने पर ही अतिरिक्त खनिज मिश्रण देना उचित रहता है।

ज्यादातर हमारा ध्यान पशुओं में खनिजों की कमी से होने वाले प्रभाव पर ही होता है परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि खनिजों की अधिकता हो जाने पर भी पशु पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विश्व में कई ऐसे स्थान है जहाँ पर हम पशुओं को नहीं पाल सकते क्योंकि उस क्षेत्र की मृदा में सेलेनियम खनिज की अधिकता है। जिसकी वजह से वहाँ के चारे में इसकी अधिकता है जो पशु के लिए जहरीला हो जाता है। इसी प्रकार मॉलीब्डेनियम की अधिकता भी पशुओं हेतु नुकसानदायक है। कॉपर, आयोडीन एवं फ्लोरीन की अधिकता भी पशु हेतु अनुपयुक्त (जहरीला) है। अतः खनिजों को उचित मात्रा में खासतौर से सूक्ष्म खनिज देना एक जटिल प्रक्रिया है एवं फायदे की जगह नुकसान हो सकता है।

कैल्शियम एवं फास्फोरस

दुधारू पशुओं में बजाय अन्य खनिजों के (नमक के अलावा) कैल्शियम एवं फास्फोरस की कमी से ग्रसित होने की ज्यादा संभावना होती है। पशु में एक मजबूत

हीम्योस्टेटिस प्रक्रिया होती है जो पशु शरीर में कैल्शियम के अवशोषण को नियंत्रित करती है जिसके कारण जरूरत भर कैल्शियम ही अवशोषित होता है। दुधारू पशुओं के शुरूआती दूध अवस्था में आहार से उचित मात्रा में कैल्शियम एवं फास्फोरस की पूर्ति नहीं हो पाती है। यदि पशु को शुष्क अवस्था में ज्यादा मात्रा में यह खनिज दिये गये तो दुधारू होने पर वह कम मात्रा में इन खनिजों को अवशोषित करती है। गाय की हड्डियों में प्रचुर मात्रा में कैल्शियम होता है तथा वह इनसे अपनी कैल्शियम की कमी को पूरा कर लेती है।

इन खनिजों के बारे में दो तथ्य प्रमुख होते है। प्रथम. खनिजों की कमी एवं द्धितीय. कैल्शियम व फास्फोरस का आहार में अनुपात। पशु शरीर की हड्डियों एवं दांतों के आधे हिस्से में कैल्शियमः फास्फोरस का अनुपात 2:1 होता है। 100 मिली0 खून में 10 मिग्रा0 कैल्शियम तथा 15 मिग्रा0 फास्फोरस होता है। दूध में प्रति लीटर लगभग 9 ग्रा. कैल्शियम तथा 7 ग्रा. फास्फोरस पाया जाता है।

यद्यपि पशु कोशिका में काफी कम कैल्शियम (कुल कैल्शियम का 1 प्रतिशत) होता है, परन्तु यह शरीर की कई प्रक्रियाओं हेतु आवश्यक है जैसे कि खून का थक्का जमना, दिल की धड़कन को नियंत्रित रखना की पारगम्यता एवं कई किण्वक क्रियाओं में सह कारक होता है। शरीर की कई प्रोटीन, फास्फोलिपिड, न्यूक्लिक एसिड का हिस्सा होता है। यह कार्बोहाइड्रेट के उपापचय में शामिल होकर कई उपापचयी उत्पाद बनाने में सहयोग करता है। फास्फोरस शरीर में ऊर्जा के संग्रहित करने तथा कार्य के समय वापस प्रदान करने एवं शरीर तापमान को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

कमी के लक्षण – शरीर विकास में कमी, सुस्तपन, दुग्ध उत्पादन में कमी, गर्भधारण में कमी, भूख में कमी (पाइका) इसके सामान्य लक्षण हैं। एक जवान पशु में शरीर की हड्डियाँ मुड़ना (रिकेट्स बीमारी), शरीर भार कम होना, शरीर की मांस पेशिया का कम विकास व कमजोर होना होता है। बूढ़े या उम्रदराज पशुओं में हड्डियों का टूटना (ओस्टीओमलेशिया) होता है। हड्डियों के किनारे बड़े व मोटे हो जाते हैं तथा बीच की हड्डी पतली हो जाती है। पशुओं के जोड़ सख्त हो जाते हैं व पशु सुस्त हो जाता है। रिकेट्स तथा आस्टोमलेशिया विटामिन 'डी' तथा मैगनिशियम की कमी से भी जुड़ा होता है। विटामिन 'डी' हड्डियों में खनिजों के जमने को नियंत्रित करता है।

कैल्शियम/फास्फोरस की कमी का पहला प्रभाव पशु के गर्भधारण में कमी होता है। पशु गर्मी के लक्षण ठीक से नहीं दर्शाता तथा गर्भित नहीं होता है। दुग्ध उत्पादन में भारी कमी आ जाती है।

कैल्शियमः फास्फोरस अनुपात – पशु आहार में यह अनुपात अलग–अलग होता है। यह पाया गया है कि आहार में कैल्शियमः फास्फोरस अनुपात 2:1 एवं 1:1 होना चाहिए तथा 3:1 तक भी उचित रहता है। सही अनुपात पाने के लिये उचित हरा चारा व पशु आहार देना चाहिए। कुछ पशु आहारों में कैल्शियमः फास्फोरस अनुपात निम्न है –

मक्का – 0.1 कैल्शियम :1 फास्फोरस, किक्यू घास – 0.5 कैल्शियम :1 फास्फोरस; लूसर्न – 5– 7कैल्शियम :1फास्फोरस, क्लोवर – 3.4 कैल्शियम:1फास्फोरस

दुधारू पशु की फास्फोरस आवश्यकता (प्रतिदिन): निर्वाह– 25.5 ग्राम, दुग्ध उत्पादन – 1.75 ग्राम/किलो दूध (निर्वाह के अलावा)

गर्भावस्था – 4–6 महीनेः 2.5 ग्राम, 6–7 महीनेः 6.5 ग्राम, 7–9 महीनेः 10.5 ग्राम

तालिका 1: कैल्शियम एवं फास्फोरस के स्रोत

कैल्शियम एवं फास्फोरस के स्रोत	कैल्शियम (%)	फास्फोरस (%)
डाईकैल्शियम फास्फेट	23.6	17.9
कैल्शियम फास्फेट	16.0	21.0
मोनोसोडियम फास्फेट	–	17.0
बोन मील (स्टीमड)	21.0	10.0
फीड लाईम	38.0	–

कैल्शियम तथा फास्फोरस से सम्बन्धित बीमारियाँ

दुग्ध ज्वर: इसके प्रमुख लक्षणों में मांस पेशियों में जकड़न/झटके, लकवा, मूर्छित होना एवं जानवर अपने मुँह को अपने पिछले पैरों की तरफ मोड़कर बैठ जाता है व खड़ा नहीं हो पाता है। ऐसा शरीर में कैल्शियम स्तर में अचानक आयी कमी के कारण होता है। इसमें कभी–कभी पशु की मृत्यु भी हो जाती है। यह जरूरी नहीं है कि ऐसा पशु आहार में कमी के कारण हुआ हो। यह ज्यादातर पैराथायराइड ग्रंथि के ठीक प्रकार से काम न करने के कारण होता है। इन ग्रंथियो की कार्यक्षमता शुष्क समय के समय घट जाती है। यह ग्रंथि कैल्सीटोनिन के माध्यम से कैल्शियम के अवशोषण को नियमित करती है। गाय के शुष्क काल में उसकी कैल्शियम की आवश्यकता उसको दिये जाने वाले आहार से प्राप्त कैल्शियम की मात्रा से कम होती है। अतः ग्रंथि की कार्यक्षमता कम हो जाती है। अचानक अधिक दूध में आने पर भी दुग्ध अवस्था के प्रारम्भ में यह ग्रंथि कम काम करती है, जिससे आहार से कैल्शियम का पूरा अवशोषण नहीं हो पाता तथा रक्त में अचानक कैल्शियम की कमी हो जाती है।

पशु के शुष्क काल के अंतिम तीन हफ्तों में कम कैल्शियम खिलाने से पैराथायराइड ग्रंथि कैल्सिटोनिन उत्पादन में सक्रिय हो जाता है तथा पशु के दूध में आने पर पशु ज्वर की संभावना कम हो जाती है। पशु के ब्याहने के एक हफ्ते पहले विटामिन डी3 का (0.4ग्राम) मांसपेशियों में इजेक्शन देने से भी दुग्ध ज्वर में कमी देखी गयी है।

पाइका: फास्फोरस की कमी से पशुओं में यह रोग होता है। इसमें पशु के आहार सेवन का व्यवहार बदल जाता है तथा पशुचारे के अलावा मिट्टी, लकड़ी, हड्डियां आदि खाने लगता है। सड़े हुए मांस वाली हड्डियां खाने से पशु में जीवाणु संक्रमण हो जाता है जो घातक होता है।

मैग्निशियम

मैग्निशियम हड्डियों के ढांचे का हिस्सा है तथा कैल्शियम, फास्फोरस एवं विटामिन डी के साथ हड्डियों के निर्माण से जुड़ा है। फास्फोरस के पाचन में मैग्निशियम एक उत्प्रेरक का कार्य करता है। यह कार्बोहाइड्रेट के उपापचय एवं मांसपेशियों के कार्य करने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसका संचय हड्डियों तथा कोमल कोशिकाओं में होता है। परन्तु अचानक आवश्यकता पड़ने पर यह बहुत धीरे–धीरे प्राप्त होता है जिससे कोई सहायता नहीं हो पाती। इसकी कमी से पशुओं में दो प्रकार की ग्रास टिटैनी होती है– 1. शिशुओं में जो लंबे समय तक सिर्फ दूध पीते है व अन्य आहार नहीं लेते – इनमें खाल पर चकत्ते पड़ने लगते है, मांसपेशियों में उत्तेजना, दौरे पड़ना एवं मृत्यु तक हो जाती है। 2. बड़े पशुओं में ग्रास टिटैनी होने के लक्षण दुग्ध ज्वर जैसे प्रतीत होते है परन्तु पशु में तेजी से अचानक बैचैनी होना, दौरे पड़ना, चौकन्ना होना है। यह अक्सर सर्दियों के बाद ताज़ी हरी घास खाने के बाद दिखता है, विशेषकर यदि चरागाह में अमोनियम सल्फेट उर्वरक का प्रयोग किया है। इसके लिये मैग्निशियम सल्फेट का इजेक्शन देने से तुरंत आराम मिलता है। साथ ही साथ आहार में मैग्निशियम साल्ट दिया जाता है। पूरा मैगनिश्यिम साल्ट मात्रा न मिलने पर यह फिर से हो सकता है तथा ध्यान रखना चाहिए कि इजेक्शन की सुई लगने तक से दौरे पड़ सकते है।

दुग्ध ज्वर व ग्रास टिटैनी के इलाज में कैल्शियम अवश्य एक सीमा तक प्रयोग किया जा सकता है। यह विदित है कि पोटैशियम तथा कैल्शियम व मैगनिशियम का आयोनिक बैलेंस विशिष्ट है तथा यह 2 से ज्यादा नहीं होना चाहिए। (पोटेशियम)/(कैल्शियम्) + मैग्निशियम 2 या 2 से कम होना चाहिए। सोडियम व पोटेशियम के अधिक अवशोषण होने पर मैगनीशियम का अवशोषण कम हो जाता है।

अन्य कारण जिनमें मैगनीशियम का अवशोषण कम हो जाता है –ताज़ी हरी घास का मैग्निशियम पशु को तुरन्त उपलब्ध न होना, सोडियम का कम या ज्यादा होना, कैल्शियम का अत्यधिक होना, लंबी चेन के फैटी अम्लों का होना, शुष्क पदार्थ का कम होना तथा पोटेशियम का कम होना है।

गाय को प्रतिदिन मैगनीशियम की आवश्यकता लगभग 9 ग्राम निर्वाह के लिये तथा अतिरिक्त 0.74 ग्रा/ली. दूध के लिए होती है। 20 ली0 दूध देने वाली गाय की प्रतिदिन 24 ग्राम मैगनीशियम की आवश्यकता होती है।

पोटेशियम

यह पशु शरीर में तीसरा सबसे ज्यादा पाया जाने वाला तत्व है। यह कोशिकाओं के बीच में पाये जाना वाला प्रमुख कैटायन है तथा ओसमोटिक नियंत्रण व अम्ल क्षार संतुलन में सहायक है। आयोनिक संतुलन पोटेशियम, सोडियम,कैल्शियम तथा मैगनीशियम के मध्य होता है। पशुओं में पोटैशियम की आवश्यकता उनके आहार का 0.5–0.8 प्रतिशत होता है। किसी भी तनाव की स्थिति में पोटैशियम की मांग बढ़ जाती है। गर्मी में आयी गाय की मांग 1.1 प्रतिशत बढ़ जाती है। 1.5 प्रतिशत से अधिक मात्रा बढ़ने पर पशु का शुष्क पदार्थ सेवन घट जाता है। सामान्यतयः पशु चारे में इनकी पर्याप्त मात्रा होती है तथा इसकी कमी प्रायः कम देखने को मिलती है। चारे में अत्यधिक पोटैशियम होने पर यह मैगनीशियम के अवशोषण को बाधित करता है। पोटेशियम का अधिकतम सहनीय स्तर कुल शुष्क पदार्थ का 3 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए। फालतू पोटैशियम की मात्रा मूत्र में निकल जाती है। पोटैशियम की ज्यादा मात्रा सोडियम की मात्रा को 30–60 प्रतिशत तक घटा देती है।

सोडियम तथा क्लोरीन

सोडियम

सोडियम एक प्रमुख बाह्य कोशिका कैटायन है तथा रक्त सीरम की तटस्थता को नियंत्रित करता है। यह मांसपेशियों में पाया जाता है व उनके संकुचन से संबधित है। सोडियम की कमी से प्रोटीन व ऊर्जा का सही उपयोग नहीं हो पाता तथा यह प्रजनन को प्रभावित करता है। इसकी कमी से पशु में अफारा की समस्या देखी गयी है। पोटैशियम की अधिकता होने पर यह सोडियम अवशोषण को कम कर देता हे। अधिक सोडियम होने पर यह मैग्निशियम के अवशोषण को घटा देता है।

क्लोरीन

यह रक्त में सोडियम क्लोराइड के रूप में होता है तथा आधे से ज्यादा अम्लीय आयरन बनाता है। इन क्लोराईड का अम्ल क्षार संबधों पर प्रभाव होता है। यह हाइड्रोक्लोरिक अम्ल पशु के जठरान्त आमाशय में बनाता है। सोडियम व क्लोरीन दोनों नमक में मौजूद होते हैं तथा पशुओं के आहार में महत्वपूर्ण होते हैं। नमक में सोडियम का क्लोरीन से अनुपात 1:1.6 होता है।

नमक

पशुओं में नमक की कमी होने पर भूख न लगना, तेजी से शरीर भार कम होना तथा दुग्ध उत्पादन में कमी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इसके अलावा काँपना, लड़खड़ाकर चलना व कमजोरी भी लक्षण है। अत्यधिक दुधारू पशुओं की अचानक मृत्यु भी हो जाती है। शिशुओं में बाल खुरदुरे हो जाते है।

गर्मी के मौसम में पसीने में नमक बाहर निकल जाता है। अतः नमक की कमी के लक्षण दिखते हैं। इसके अलावा कुछ पौधे जैसे कि किक्यू घास, मक्का, सॉरवम, टाल फेस्क्यू, लूसर्न एवं लाल क्लोवर अपनी जड़ों में नमक का संचय करते हैं न कि तने या पत्तियों में। अतः इन चारों को खिलाने पर नमक देना चाहिए।

नमक की मात्रा दुधारू पशुओं में 8.5 ग्राम निर्वाह के लिए तथा 0.63 ग्राम/ली0 दूध के हिसाब से अतिरिक्त देनी चाहिए। नमक में अशुद्धियां होने पर 20–25 ग्राम निर्वाह हेतु तथा 1.6 ग्राम/ली0 दूध पर अतिरिक्त देना चाहिए। क्लोरीन की पूर्ति सामान्य चारों से हो जाती है। अतः सिर्फ सोडियम की पूर्ति नमक द्वारा की जाती है क्योंकि चारो से सोडियम की पूरी पूर्ति नहीं हो पाती। पशु को गर्मियों में भरपूर पानी पिलाना चाहिए।

सल्फर

सल्फर पशु शरीर में उन प्रोटीन में होता है जिनके अमीनो एसिड में सिस्टीन तथा मिथियोनीन होते हैं। कुछ बी विटामिन तथा इनसुलिन हार्मोन में भी सल्फर होता है। यदि पशु आहार में प्रोटीन की मात्रा अत्यधिक है तो सल्फर की कमी हो सकती है।

सल्फर पशु के पाचन तंत्र के सूक्ष्म जीवों के उचित विकास हेतु महत्वपूर्ण खनिज है। सल्फर की कमी के लक्षण स्पष्ट नहीं होते तथा इनको पहचानना भी कठिन होता है। पशु द्वारा कम खाना, वजन कम होना, भेड़ों में ऊन की बढ़वार अत्यन्त धीमे होना व मृत्यु हो जाना इसके लक्षण हैं। साथ ही पाचन तंत्र के लाभकारी सूक्ष्म जीवों में कमी हो जाती है जिसके कारण पाचन पूरा नहीं होता। सल्फर की औसत मात्रा चारे में 0.16–0.24 प्रतिशत होनी चाहिए। ज्यादा मात्रा होने पर कॉपर की कमी हो जाती है विशेषकर जब चारे में मॉलीवडीनम की मात्रा ज्यादा हो।

आयोडीन

आयोडीन पशु शरीर में काफी सूक्ष्म मात्रा (0.00004 प्रतिशत से कम) में पाया जाता है। परन्तु पशु के सामान्य विकास हेतु यह आवश्यक है। कुल आयोडीन का आधा हिस्सा थायो–राईड ग्रंथि में होता है जो थॉयो–रोक्सीन के स्राव हेतु आवश्यक है। इस स्राव में कमी होने पर पशु का आधारीय चयापचय कम हो जाता है तथा थायोराईड ग्रंथि इसको नियत्रित नहीं कर पाती, जिसके कारण शरीर स्राव को बढ़ाने के लिये ग्रंथि का आकार बढ़ जाता है। इस बढ़ी हुई ग्रंथि को गोएटर कहते है तथा यह पशु के गले में उभरी हुई दिखाई देती है। जिन स्थानों पर पानी तथा चारे में आयोडीन की कमी होती है वहाँ यह रोग ज्यादा पाया जाता है। सरसों परिवार (रेप, कैले, टर्निप एवं गोभी) वाला चारा खिलाने से इसकी कमी हो जाती है। स्टार घास तथा क्लोवर घास खिलाने पर साइनोजन बनते हैं तथा प्रत्यक्ष रूप से आयोडीन की कमी हो जाती है।

शिशुओं में आयोडीन कमी के लक्षणों में कम वृद्धि दर, थॉयो–राईड ग्रन्थि का बड़ा होना, शरीर के बाल खुरदरे होना या बालों का न होना व अंधापन होना है। ऐसी मादायें जिनसे आयोडीन कमी गर्भावस्था में होती है, उनके शिशु की थॉयो–राईड ग्रन्थि बढ़ी हुई होती है, वह मृत पैदा होते हैं या जन्म के तुरंत बाद उनकी मृत्यु हो जाती है। गायों में इसकी कमी से जेर का रूकना, प्रजनन क्षमता में काफी कमी एवं अन्य लक्षण इस प्रकार हैं– गर्भस्थ शिशु की गर्भ में ही मृत्यु, समय पूर्व प्रसव होना, बच्चे का गर्भ से बाहर न आना, बिना बालों के शिशु का जन्म होना, पशु की गर्मी चक्र में बदलाव या गर्मी चक्र में न आना, विकसित हो रहे शिशुओं को चारे के शुष्क पदार्थ के 1 किग्रा में 0.12 (मिग्रा0), गर्भावस्था तथा दुग्धकाल में गाय को 0.8 मिग्रा/किग्रा शुष्क चारा आयोडीन देना उचित रहता है।

मैंगनीज

यद्यपि मैगनीज की कमी प्रायः नहीं देखी जाती परन्तु यह शारीरिक विकास एवं प्रजनन को प्रभावित करता है। यह कैल्शियम तथा फास्फोरस के चयापचय को प्रभावित करता है जो हड्डियों के निर्माण में सहायक होते हैं। अतः यह ग्रंथियों को प्रभावित करता है। वसा के पाचन में वृद्धि करता है तथा वसायुक्त यकृत को नुकसान से बचाता है। इसकी कमी से गायों में गर्मी को पहचानना मुश्किल हो जाता है तथा गर्भधारण क्षमता घट जाती है। गर्भस्थ शिशु की माता में इसकी कमी हो जाने पर कमजोर पैर वाला शिशु पैदा होता है। चारे में अधिक कैल्शियम व फास्फोरस होने पर मैंगनीज की मांग भी बढ़ जाती है। पशुओं को मैंगनीज की आवश्यकता 40 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ होती है।

जिंक

जिंक पशु शरीर के विभिन्न एंजाइम का हिस्सा है तथा इन्सुलिन को नियंत्रित तरीके से प्रभावित करता है तथा प्रजनन क्षमता पर भी इसका प्रभाव है। पशु शरीर का

ज्यादातर जिंक उसकी खाल, बालों तथा ऊन में पाया जाता है। इसकी कमी से पैराकिराटोसिस नामक बीमारी होती है जिसके लक्षणों में कम विकास, खाल पर चकत्ते तथा बालों का गिरना मुख्य हैं। चारे में अत्यधिक कैल्शियम होने से इसकी कमी हो जाती है। परन्तु प्रायः पशुओं में इसकी कमी बहुत कम देखी गयी है। पशुओं को जिंक का 40 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ देना उचित रहता है।

कॉपर

कॉपर लौह तत्व के अवशोषण में एक उत्प्रेरक का काम करता है। साथ–साथ यह खाल के रंग, बालों को प्रभावित करता है। यह कई एंजाईम तथा प्रोटीन से संबधित है तथा आमाशय के सूक्ष्म परजीवियों के कार्य को प्रभावित करता है।

इसकी कमी से निम्न लक्षण हो सकते हैं – यकृत का छोटा होना, रक्त की कमी, असहज भूख लगना, बालों का रंग खराब होना, दस्त लगना, लड़खड़ाना, हड्डियों में विकार, प्रजनन क्षमता में कमी, बच्चा गिरना तथा जेर का रूकना है। चारे में इसकी अत्यधिक मात्रा भी नुकसानदेह होती है। गाय की अपेक्षा भेड़ तथा दूध पीते बच्चों में ज्यादा असर देखा गया है। एक वयस्क गाय के लिए चारे में इसकी मात्रा 10 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ होनी चाहिए।

मॉलीबडिनम

इस तत्व की कमी सामान्यतः नहीं पायी जाती है। कमी होने पर दस्त लगना काले वालों का सलेटी होना, चलने पर जल्दी थकना इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। पशुओं को 1 मिग्रा/ किग्रा शुष्क पदार्थ देना उचित है।

आयरन

इस तत्व की शरीर में कमी हो जाने पर पशु में रक्त की कमी हो जाती है। सामान्यतयः ऐसे शिशु जो लंबे समय तक दूध पर निर्भर होते हैं उनमें इसकी कमी हो जाती है क्योंकि दूध में लौह तत्व की कमी होती है। चारे से सामान्यतयः पशुओं की लौह तत्व आवश्यकता पूरी हो जाती है व इसकी कमी कम देखी गयी है। पशुओं में वयस्क गाय को 30 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ व दुधारू एवं ग्याभिन गायों में 40 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ देना उचित होता है।

कोबाल्ट

कोबाल्ट विटामिन बी12 का हिस्सा होता है तथा इसके बिना आमाशय के सूक्ष्मजीवों द्वारा विटामिन बी12 नहीं बनाया जा सकता। इसकी कमी के प्रमुख लक्षणों में – पशु को भूख न लगना, मांसपेशियों का ठीक से काम न करना, रक्त की कमी हो जाना व पशु का बैचेन होना प्रमुख हैं। कोबाल्ट की कमी सामान्यतयः नहीं पायी जाती पर ज्यादा समय तक बरसात के बाद के चारों में इसकी कमी देखी गयी है। कोबाल्ट की सामान्य से अधिक मात्रा खिलाने पर विपरीत प्रभाव होता है। कोबाल्ट की आवश्यकता 0.1 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ रहती है।

सेलेनियम

सन् 1957 तक सेलेनियम को गंभीरता से नहीं लिया जाता था। सेलेनियम विटामिन ई की तरह प्रभावित करता है तथा उचित मात्रा में सेलेनियम प्राप्त होने पर विटामिन ई को पूरा कर लेता है। सेलेनियम की कमी हो जाने पर शिशुओं में मांसपेशियों में शिथिलता, जेर का देर से गिरना प्रमुख लक्षण है। सेलेनियम पशु की प्रतिरक्षा प्रणाली/रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। सेलेनियम की आवश्यकता 0.1–0.5 मिग्रा/किग्रा शुष्क पदार्थ होती है। 5.0 मिग्रा0/किग्रा शुष्क पदाथ से अधिक होने पर यह नुकसानदेह है। चारों में सेलेनियम की मात्रा 400–800 पी.पी.एम. होने पर यह तीव्र विषैला प्रभाव करता है। पशु की चाल का लड़खड़ाना, सिर व कान का लटकना, तेज ज्वर, सांस तथा नाड़ी का तेज चलना व मृत्यु तक होना होता है। हमारे देश में पशुओं को धान का पुआल खिलाने से यह रोग ज्यादा दिखता है क्योंकि पुआल में सेलिनियम की मात्रा 0.5–5. 0 पी.पी.एम. तक होती है। सेलेनियम की मात्रा आहार में 0.1 पी.पी.एम. से कम होनी चाहिए।

विटामिन ई 30–50 अंतर्राष्ट्रीय इकाई प्रति किग्रा आहार में होना चाहिए।

फ्लोरिन

फ्लोरिन की मात्रा विभिन्न भूभागों में ज्यादा या कम होती है। आहार में इसकी अधिकता से बच्चों के दाँतों का इनेमल/दंतवल्क का भंगुर होना, दाँतों पर श्वेत धब्बे दिखना व दाँतों का काला पड़ जाना होता है। इसके प्रभाव से अवटु ग्रंन्थि का बढ़ना व थायराक्सिन का स्रवण कम होना होता है। गोवंशीय पशुओं में फ्लोरिन ग्रहण की सुरक्षित मात्रा 0.01 प्रतिशत है।

क्रोमियम

क्रोमियम की उचित मात्रा शरीर में शर्करा का उचित उपयोग, कोशिकाओं द्वारा प्रोटीन संष्लेशण, बालों में होना तथा रक्त में कोलेस्ट्रोल को कम करता है। आहार में इसकी मात्रा 0.12 पी.पी.एम. पर्याप्त होती है जो विभिन्न आहारों से प्राप्त हो जाता है।

सिलिका

आहार में सिलिका की मात्रा 50–100 पी.पी.एम. से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। सिलिका की एक प्रतिशत मात्रा बढ़ने पर 3 प्रतिशत आहरिक तत्वों का पाचन कम हो जाता है। आवश्यकता से अधिक होने पर वृक्क तथा मूत्राशय में पथरी बनाने में महत्वपूर्ण कारक होता है।

गंधक

आहार में गंधक की मात्रा 0.13 प्रतिशत होनी चाहिए। गंधक की कमी से रूमन्थ पशुओं में सेलुलोज का पाचन कम हो जाता है व लैक्टिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है।

विटामिन

विटामिन एक जटिल कार्बोनिक यौगिक है जो किण्वक प्रणाली के साथ काम करता है तथा ऊर्जा के बदलने एवं शरीर के चयापचय को नियंत्रित करता है। यह बहुत ही कम मात्रा में आवश्यक होता है तथा पशु के वृद्धिदर, उत्पादन, प्रजनन तथा स्वास्थ्य को सामान्य बनाये रखने में सहायक होता है। पशु शरीर हेतु विटामिन ए, बी, के, ई, सी तथा बी समूह आवश्यक होते हैं। विटामिन की कमी पशुओं में काफी कम पायी जाती है तथा आवश्यकता होने पर ही इनको पशु को दिया जाता है। ज्यादातर विटामिन संतुलित पोषक आहार दिये जाने से प्राप्त हो जाते हैं तथा विटामिन बी समूह तथा विटामिन के पशु के आहार तंत्र में उपस्थित सूक्ष्मजीव बना लेते हैं।

विटामिन ए– विटामिन ए के दो मुख्य कार्य हैं। श्वाँस तंत्र तथा पाचन तंत्र की /झिल्लियों को सुचारू रखना तथा आँखों को स्वस्थ रखना। इसकी कमी में संक्रमण रोकने की क्षमता में कमी, जोड़ों का कड़ा हो जाना, आँखों के आस–पास धब्बे, रात में न दिखना तथा प्रजनन क्षमता में कमी होना, गर्भ अवस्था का छोटा हो जाना, बच्चा गिर जाना, जेर का रूक जाना आदि हैं।

विटामिन डी– पौधे में यह प्रोविटामिन के रूप में होता है तथा पशु शरीर में पहुंचने पर धूप मिलने से विटामिन डी में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे शिशु जो लंबे समय तक बंद कमरे में रहते है तथा धूप नहीं मिलती उनमें इसकी कमी हो जाती है तथा रिकेट्स बीमारी हो जाती है।

विटामिन ई– विटामिन ई पशुओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। हरे चारे में यह उचित मात्रा में होता है परन्तु मक्का में यह कम होता है। गेहूँ व इसके उत्पादों में यह प्रचुर मात्रा में होता है।

विटामिन के– इसका मुख्य कार्य रक्त का स्कन्दन है। कमी होने पर रक्त स्कन्दन में आवश्यकता से ज्यादा समय लगता है। रक्त में प्रोथ्रोम्बिन की मात्रा कम हो जाती है। रूमन्थी पशुओं में रूमन्थ के सूक्ष्म जीव इसका संश्लेषण कर लेते हैं। अतः इसको आहार में अलग से देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। रक्तस्रावी स्वीटक्लोवर रोग से पीड़ित होकर पशुओं की मृत्यु तक हो जाती है। संपूर्ण पौधों में डाइक्यूमैराल के उत्पन्न होने से प्रोथ्रोम्बिन

का संश्लेषण प्रभावित होता है जिससे रक्त स्कन्दन काल 2–3 मिनट से बढ़कर 6–7 मिनट हो जाता है तथा अत्यधिक रक्तस्राव से पशु की मृत्यु हो जाती है।

थायमिन– थायमिन या विटामिन बी1 या एन्यूरिन पशुओं में चयापचय हेतु अनिवार्य है। पशु शरीर में इसका संश्लेषण नहीं होता। रूमन्थी पशुओं में सूक्ष्मजीवियों द्वारा इसका संश्लेषण हो जाता है परन्तु नवजातों में इसकी आवश्यकता होती है। इसकी कमी से पशुओ ं मे ं पोलियो, एन्सेफलोमलेषिया रोग हो जाता है। सामान्यतयः थायमिन की कमी नहीं होती परन्तु अत्यधिक घुलनशील कार्बोहाइड्रेट खिलाने से रूमन्थ में थायमिन की पर्याप्त मात्रा नहीं बन पाती जिससे पशुओं में अंधापन, दाँतों का किटकिटाना, वजन कम होना होता है। इस रोग के होने में 4–6 हफ्तों का समय लगता है। ब्रैकन फर्न में थायमिनेज की मात्रा अधिक होती है जो थायमिन बनने में बाधक होते हैं। अतः यह रोग हो जाता है। अतः ब्रैकन फर्न नहीं खिलानी चाहिए। गेहूँ के चोकर में 8 मिग्रा./किग्रा. तथा चावल की भूसी में 20 मिग्रा0/किग्रा0 होता है।

राईबोपलेविन– शरीर में यह बहुत से किण्वकों का सरंचनात्मक घटक होता है। सभी प्रकार के छिलकों में यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सामान्यतयः इसकी कमी नहीं पायी जाती।

नियासीन– यह रूमन्थ के सूक्ष्म जीवियों द्वारा संश्लेषित कर लिया जाता है। अतः इसकी कमी प्रायः नहीं होती परन्तु एक आमाशया वाले पशु–पक्षियों में इसकी आवश्यकता होती है। मक्का में निकोटिनिक अम्ल 15 मिग्रा0/किग्रा0 ज्वार में 55 तथा जौं में 60 मिग्रा./किग्रा. होता है।

विटामिन बी12– सभी प्राणियों के शरीर को इसकी आवश्यकता होती है। रूमन्थी पशुओं को आहार में कोबाल्ट खिलाने पर विटामिन बी12 का संश्लेषण रूमन्थ में हो जाता हे। वानस्पतिक आहारों में इसका पूर्णतयः अभाव होता है।

विटामिन बी6– रूमन्थ पशुओं में यह संश्लेषित हो जाता है। अतः इसकी अलग से आवश्यकता नहीं होती। परन्तु एक आमाशय वाले पशुओं में इसकी आवश्यकता होती है। गेहूँ में इसकी मात्रा 5 मिग्रा तथा मक्का में 4 मिग्रा./किग्रा. होती है।

फोलिक अम्ल– रूमन्थ पशुओं में यह संश्लेषित हो जाता है। अतः इसकी अलग से आवश्यकता नहीं होती। गेहूँ में 0.40 एवं मट्ठा में 0.80 मिग्रा0/किग्रा0 मात्रा होती है। दूध में इसकी मात्रा कम होती है।

अजोला : प्रोटीन से भरपूर पूरक पशु आहार

बच्चू सिंह मीणा, नवाब सिंह, राज पाल मीना[1], चन्द्रनाथ मिश्र[1] एवं सतीश कुमार[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

अजोला एक आकर्षक पौधा है, जो कि फर्न समूह से सम्बन्धित एक लोकप्रिय प्रदत्त वनस्पति है। अजोला एक फर्न की प्रजाति है जिसे फीदरड मोसक्योटोफर्न एवं वाटर वेलवेट इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। अजोला की उत्पत्ति अफ्रीका, एशिया, चाइना से जापान, भारत, फिलीपीन्स व आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में हुई है। अजोला एक जलीय पौधा है जो पानी के ऊपर तैयार होता है। यह पानी पर तैरता हुआ अपने आप बढ़ता है एवं इसकी शाखायें टूटकर नया पौधा बनाती रहती हैं। यह हरी, नीली–हरी या गहरी लाल रंग की भी होती है जो वेलवेट की तरह छोटे–छोटे बालों से घिरी रहती है। इसमें प्रोटीन, अमीनो एसिड, विटामिन व खनिज लवण की मात्रा अधिक होती है।

प्राकृतिक रूप से अजोला विश्व में उष्ण एवं गर्म उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। अजोला विभिन्न मृदा पी.एच. व तापक्रम और छायादार स्थान पर आसानी से हो सकता है। परन्तु इसके अच्छे विकास व वृद्धि के लिए 20 से 30 डिग्री सेन्टिग्रेड तापक्रम और 5.5 से 7.0 मृदा पी.एच. अच्छा माना जाता है। यह शुष्क मौसम के लिए अत्यन्त संवेदनशील है। सापेक्ष आर्द्रता 60 प्रतिशत से नीचे होने पर पौधे मरने लगते हैं।

एक पूर्ण विकसित अजोला का पौधा 1.5 से 3 से. मी. लम्बा व 2 से.मी. चौड़ा होता है। यह अपस्थानिक जड़ों के सहयोग से पानी की ऊपर तैरता रहता है। अजोला पौधे में मुख्य तनें के साथ अनेक शाखाएं निकली रहती हैं और पूरा पौधा लगभग त्रिभुजाकार आकृति में दिखाई देता है। इसकी शाखायें नीचे से ऊपर की और क्रमशः छोटी होती जाती हैं। अजोला की पत्ती का ऊपरी भाग नील हरित शैवाल के साथ सहजीवी के रूप में रहता है जो कि इसी से मिलते जुलते दूसरी प्रमुख सहजीवी राईजोबियम के समान होता है जो दलहन फसलों की जड़ ग्रन्थियों में मौजूद होता है।

[1]. भाकृअनुप–गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल (हरियाणा)

अजोला उत्पादन

अजोला उत्पादन के लिए मिट्टी में एक फीट गहरी क्यारी खोदी जाती है। पानी के रिसाव को रोकने के लिए पॉलीथीन शीट बिछाई जाती है। पॉलीथीन शीट पर 4 इंच मिट्टी, 10 तगारी गोबर की खाद व 4 इंच पानी भर देते हैं। इस 12 फीट लम्बी व 4 फीट चौड़ी क्यारी में 1 किलो अजोला डालते हैं जिससे 6 से 7 दिन में पूरी क्यारी भर जाती है। इस क्यारी से 1 से 2 किलो अजोला का प्रतिदिन उत्पादन होता है। अजोला को छलनी या बांस की टोकरी से पानी के ऊपर से ले लेते हैं। इसके बाद इसको साफ पानी से धो लेते हैं और बाद में बाटे में मिलाकर पशुओं को खिलाते हैं।

कार्बन स्रोत के लिए अजोला क्यारी में 2 दिन पुराना गोबर 4 से 5 किलो, 15 से 20 लीटर पानी में घोल कर डालते हैं। अजोला क्यारी में अजोला बीज डालने से पहले 40 ग्राम सूक्ष्म पोषक तत्व मिक्सर (10 किलो रॉक फॉस्फेट, 1.5 किलो मैग्नेशियम तथा 20 से 50 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश का मिश्रण) को गोबर की स्लरी में मिक्स कर देते हैं।

अजोला खिलाने का तरीका

अजोला को खिलाने के लिए 1 किलो दाने और 1 किलो अजोला (1:1) को बराबर अनुपात में मिलाते हैं। इससे पशुओं में 15 से 20 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी के साथ–साथ 20 से 25 प्रतिशत पशुओं के लिए दाना खरीदने में बचत होती है। साधारण

दाना खाने वाली मुर्गियों की अपेक्षा अजोला खाने वाली मुर्गियों में 10 से 12 प्रतिशत शारीरीक वृद्धि दर अधिक पाई जाती है। इसके अलावा अण्डा योक में वृद्धि एवं अण्डे का रंग ग्लोसी हो जाता है।

अजोला के पोषक गुण

अजोला पोषक तत्वों की दृष्टि से काफी समृद्ध होता है। शुष्क भार के आधार पर इसमें अत्यधिक प्रोटीन की मात्रा लगभग 24 से 30 प्रतिशत तक पायी जाती है जो कि विभिन्न दलहनी चारा फसलें जैसे बरसीम व रिजका आदि से काफी अधिक है। केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर से प्राप्त परीक्षण के आधार पर अजोला में अत्यधिक मात्रा में प्रोटीन, कम रेशा अथवा शरीर के आवश्यक दूसरे तत्व जैसे जैव प्रभावी पदार्थ, बायो–पॉलीमर, प्रॉबायोटिक्स तथा कैराटिन भी पाए जाते हैं। अजोला विटामिन ए–1, बी–12 व बीटा कैल्शियम, आयरन, मैंग्नीशियम, सल्फर, मैंगनीज, कोबाल्ट, कॉपर, जिंक आदि के साथ सभी आवश्यक एसिड का भी उत्तम स्त्रोत है।

इन सभी गुणों के कारण अजोला सस्ता, सुपाच्य व पूरक पशु आहार के रूप में किसानों के बीच लोकप्रिय हुआ है। उत्तम पोषक गुणवत्ता, अत्यन्त तीव्र वृद्धि दर, कम जीवनकाल तथा आसानी से पाचनशीलता आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं जिसके आधार पर अजोला विभिन्न पशुधन के लिए एक सस्ता व अधिक पसन्द किया जाने वाला पूरक आहार के रूप में सर्वमान्य हो चुका है।

अजोला उपयोग से लाभ

- अजोला सस्ता, सुपाच्य एवं पौष्टिक पूरक पशु आहार है।
- पशुओं को प्रतिदिन आहार के साथ 2 से 2.5 किलो अजोला खिलाने से 15 से 20 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी संभव है।
- अजोला खाने वाले पशुओं में वसा व वसा रहित पदार्थ सामान्य आहार खाने वाले पशुओं के दूध से अधिक पाई जाती है।
- अजोला खाने वाले पशु सामान्य आहार खाने वाले पशुओं की अपेक्षा ज्यादा स्वस्थ हाते हैं।
- अजोला पशुओं में बांझपन निवारण में उपयोगी है।
- दुधारू पशुओ का दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में उपयोगी है।
- एक किलो अजोला की गुणवत्ता 1 किलो खल के बराबर है।
- पशु के पेशाब में खून की समस्या फॉस्फोरस की कमी से होती है, ऐसे पशुओं को अजोला खिलाने से यह कमी दूर हो जाती है।
- छः महीने के आद अजोला क्यारी की 2 किलो मिट्टी में 1 किलो एनपीके उर्वरक के बराबर पौषक तत्व होते हैं।
- दुधारू पशुओं को 2 से 2.5 किलो अजोला प्रति पशु प्रतिदिन खिलाने से कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहे की आवश्यक मात्रा की पूर्ति होती है। इसे पशुओं को खिलाने पर 15 से 20 प्रतिशत दूध उत्पादन में बढ़ोतरी होती है।

डेयरी पशुओं में दुग्ध ज्वर और कैल्शियम की कमी को नियंत्रण करने के उपाय

अनीता गांगुली, आर एस बिसला, वंदना भनोट[1], संजीव सिंह[2] एवं इंद्रजीत गांगुली[2]
क्षेत्रीय स्टेशन, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, करनाल (हरियाणा)

दुग्ध ज्वर (मिल्क फीवर) एक बहुत ही प्रसिद्ध चयापचयी विकार है जो उच्च उत्पादक डेयरी पशुओं में प्रसव के निकट कैल्शियम की कमी की वजह से होता है। कैल्शियम की कमी को " हाइपोकैल्शीमिया " भी कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है। लाक्षणिक (क्लिनिकल) एवम् उपलाक्षणिक (सबक्लिनिकल)। लाक्षणिक में हमें बीमारी के लक्षण दिखाई देते है मगर उपलाक्षणिक में लक्षण दिखाई नहीं देते। कैल्शियम की कमी प्रतिरक्षा कोशिकाओं की क्षमता को कम करने के साथ साथ चिकनी सुचारू मांसपेशियों में सकुंचन कम कर देता है जो अन्य स्वास्थ्य विकारों जैसे कि कीटोसिस, थनों में सूजन, रिटेंड प्लेसेंटा, विस्थापित जठरान्त (डिसप्लेस्ड एबओमासम) तथा गर्भाशय भ्रन्श की संभावना बढ़ा देता है। कैल्शियम कंकाल उत्तक, चिकनी मांसपेशियों तथा नसों के लिये बहुत महत्वपूर्ण होता है। सामान्य रक्त कैल्शियम 8–12 मिलीग्राम/डेसिलीटर तक होता है। जब कैल्शियम की मात्रा कम हो कर 7.5–5.0 मिलीग्राम/डेसिलीटर तक रह जाती है तब जठरान्त गतिशीलता 30–70 प्रतिशत तक कम हो जाती है। प्रसव के बाद खाने की मात्रा में एक बड़ी गिरावट नकारात्मक उर्जा संतुलन को बढ़ा देती है। हालांकि दुग्ध ज्वर गंभीर कैल्शियम की कमी की लाक्षणिक अभिव्यक्ति है, पर सबक्लिनिकल (उपलाक्षणिक) हाइपोकैल्शीमिया एक उभरती हुई चिंता है। उपलाक्षणिक कैल्शियम की कमी लाक्षणिक दुग्ध ज्वर से अधिक महंगी पड़ती है क्योंकि इससे दूध की मात्रा में गिरावट आ जाती है और इसका कारण भी पता नहीं चलता है। इसलिए दोनों विकारों, लाक्षणिक तथा उपलाक्षणिक कैल्शियम की कमी का नियंत्रण करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत लेख डेयरी पशुओं में कैल्शियम की कमी तथा दुग्ध ज्वर कम करने के तरीकों पर केन्द्रित है।

1. ए.डी.आइ.ओ (अम्बाला), लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
2. भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

चारे द्वारा कैल्शियम की कमी को दूर करने के तरीके

कैल्शियम प्रतिबंध चारा

शुष्क अवधि में पशुओं को कैल्शियम प्रतिबंध आहार देना, दुग्ध ज्वर को रोकने की पारम्परिक पद्यति है। अगर कम कैल्शियम (< 20 ग्राम रोजाना) वाला चारा प्रसव से पहले और उच्च कैल्शियम वाला चारा प्रसव के बाद खिलाया जाये तो दुग्ध ज्वर को काफी हद तक कम किया जा सकता है। आमतौर पर शुष्क अवधि में गाय के चारे में से कुछ या पूरा अल्फा–अल्फा घास, मक्का साइलेज एवम् दाना से बदला जाता है।

आहारीय मैग्नीशियम

प्रसव के आसपास कैल्शियम का संतुलन बनाये रखने में मैग्नीशियम भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक विश्लेषण में पाया गया है कि चारे में मैग्नीशियम बढ़ाने से लाक्षणिक दुग्ध ज्वर कम होता है। मैग्नीशियम पैराथायराईड हार्मोन के स्त्राव तथा सक्रिय विटामिन–डी के संश्लेषण द्वारा कैल्शियम का संतुलन बनाने में मदद करता है। चारे में मैग्नीशियम की मात्रा कुल 40–50 ग्राम तक होनी चाहिये।

मौखिक कैल्शियम की खुराक के साथ दुग्ध ज्वर का निवारण

पशु को मौखिक कैल्शियम खिलाना लाभदायक हो सकता है क्योंकि उपलाक्षणिक दुग्ध ज्वर अधिकतर प्रसव के कुछ दिनों तक ही पाया जाता है। एक विश्लेषन में यह पाया गया है कि मौखिक कैल्शियम का उपयोग उन गायों

में भी लाभदायक है जिनमे दुग्ध ज्वर की घटनायें कम होती हैं। प्रारम्भिक स्तनपान के समय मौखिक कैल्शियम का उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिन पशुओं ने प्रारम्भिक स्तनपान के समय चारा खाना बंद कर दिया हो उनको मौखिक कैल्शियम खिलाना बहुत जरूरी है क्योंकि इनमें कैल्शियम की कमी होने की संभावनाएं ज्यादा होती हैं।

मौखिक कैल्शियम के पूरक के प्रकार

मौखिक पूरक में कैल्शियम के स्त्रोत और उसके भौतिक रूप, कैल्शियम के अवशोषण और रक्त कैल्शियम प्रतिक्रियों को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

कैल्शियम क्लोराइड

इसकी रक्त में कैल्शियम सांद्रता बनाये रखने की क्षमता होती है। यह पशुओं में अम्लीय प्रतिक्रिया को उत्सर्जित करता है जिससे उनके स्वयं के कैल्शियम भंडार से कैल्शियम प्राप्त हो सके। 50 ग्राम कैल्शियम 250 मिलीलीटर पानी में घोल कर पिलाने से सबसे अच्छा अवशोषण होता है। अगर 100 ग्राम मौलिक कैल्शियम पानी में घोल कर पिलाते हैं तो यह खून में कैल्शियम की मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ा देता है जो कि कैल्शियम का संतुलन बिगाड़ देता है और यह नुकसानदायक हो सकता है। जब पतले तरल पदार्थ मौखिक रूप में दिये जाते हैं तब इनके श्वास नली में जाने का जोखिम बढ़ जाता है। कैल्शियम क्लोराइड, ऊपरी श्वास उत्तकों के लिये ज्वलनकारी है।

कैल्शियम के दो नमकों का मिश्रण

कैल्शियम क्लोराइड तथा कैल्शियम सल्फेट के मिश्रण से तैयार किये गये बोलस खिलाने से खून में कैल्शियम की मात्रा में निरंतर सुधार देखा गया है। इन बोल्सों को खिलाने से सांस की नली में कोई मुश्किल नहीं आती और इनको पशुओं को खिलाना भी आसान होता है।

कैल्शियम प्रोपयोनेट

इसका अवशोषण बहुत धीरे होता है, इसलिए यह उच्च मात्रा में दिया जाना चाहिये (आमतौर पर 75 से 125 ग्राम तक)। कैल्शियम प्रोपयोनेट कैल्शियम के अलावा शर्करा भी प्रदान करता है।

कैल्शियम व्यवसायिक रूप से विभिन्न प्रकार के मिश्रण तथा टेबलेट/ बोलस में उपलब्ध है। इनमें अक्सर कैल्शियम फासफोरस, मैग्नीशियम तथा विटामिन डी सही मात्रा में होते हैं।

प्रसव के सापेक्ष मौखिक कैल्शियम खिलाने का समय

प्रसव के आसपास कैल्शियम की कम से कम दो खुराक खिलानी चाहिये, एक प्रसव के समय तथा दूसरी खुराक अगले दिन। प्रसव के बाद, 12–24 घंटे के बीच में रक्त कैल्शियम के निम्न स्तर पर जाने की उम्मीद होती है। अगर प्रसव के आसपास कैल्शियम की एक खुराक दे देते हैं तो पशु उस समय जब कैल्शियम की कमी जो की स्वभाविक रूप से होती है, को सह पता है। मूल प्रोटोकॉल में चार खुराक के लिये कहा गया है, एक 12 घंटे प्रसव से पहले, एक प्रसव के समय, एक प्रसव के 12 घंटे बाद और एक खुराक प्रसव के 24 घंटे बाद। प्रसव से पहले 12 घंटे तय करना बहुत मुश्किल होता है, इसलिये कई पशु इस खुराक के बिना भी ब्या जाती है। प्रसव के समय कैल्शियम की खुराक देना व्यवहारिक रूप से चुनौतीपूर्ण नहीं है; प्रसव से एक दिन बाद भी अगर कैल्शियम की खुराक दे देते है तो यह पशु को कैल्शियम की कमी से बचाने में सहायता करेगा।

लाक्षणिक दुग्ध ज्वर के लिये उपचार

प्रसव के आसपास डेयरी पशुओं में दुग्ध ज्वर के नैदानिक लक्षण तीन अवस्थाओं में विभाजित किये जा सकते है।

प्रथम अवस्था

इसके लक्षण सूक्ष्म और क्षणिक हैं, इसलिये यह नजरअंदाज हो सकते हैं। प्रभावित पशु उत्तेजित, कमजोर,

घबराये हुए दिखाई देते हैं। कुछ पशु अक्सर अपना वजन फेरबदल करते रहते हैं। इन पशुओं में अवलंबन् देखने को नहीं मिलता है। प्रसव के अलावा भी कुछ पशुओं में कैल्शियम की कमी हो जाती है। इनके लक्षण प्रथम अवस्था दुग्ध ज्वर जैसे ही होते हैं। इस तरह की गैर प्रसवोन्मुखी कैल्शियम की कमी अक्सर असामान्य तनाव, आहार में कैल्शियम की कमी, पाचन में गंभीर गड़बड़ी या गंभीर (विषाक्त) स्तन सूजन के दौरान देखी जाती है। प्रथम अवस्था दुग्ध ज्वर में मौखिक कैल्शियम ही सबसे अच्छा तरीका है। कैल्शियम की खुराक देने के बाद एक गाय 30 मिनट के भीतर ही कैल्शियम की एक प्रभावी राशि अपने खून में अवशोषित कर लेती है। खड़ी गायों में इन्ट्रावीनस (रक्त शिरा में) कैल्शियम देने की संस्तुत नहीं की जाती है। अगर इन्ट्रावीनस कैल्शियम द्वारा उपचार करते हैं तो यह खून में कैल्शियम की मात्रा को बहुत तीव्रता से बड़ा देता है जो खतरनाक हो सकता है। इससे घातक हृदय सम्बंधित मुश्किलें आ सकती हैं और इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि ये पशुओं के खून में कैल्शियम जुटाने की क्षमता को बंद कर देता है।

द्वितीय अवस्था

दुग्ध ज्वर की इस अवस्था में गाय नीचे बैठ जाती है, और अपना सिर अपने पार्श्व की तरफ मोड़ कर रखती है। इन पशुओं में गंभीर अवसाद तथा आंशिक पक्षाघात (पार्थ्यिल पैरालिसिस) जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

तृतीय अवस्था

इस अवस्था में गाय को पूरी तरह से लकवा मार जाता है पशु में गंभीर रूप से अवसाद दिखाई देता है। वह जमीन पर शरीर को एक तरफ करके लेट जाती है और जानवर अवचेतन अवस्था में दिखाई देता है। ऐसे पशु कुछ ही घंटो के भीतर बिना उपचार के मर जाते हैं।

द्वितीय तथा तृतीय अवस्था वाले दुग्ध ज्वर मामलो में तुरंत इलाज किया जाना चाहिये नहीं तो जल्दी मांसपेशियों तथा हड्डियों में क्षति हो सकती है। ऐसे में धीमी गति से इन्ट्रावीनस 23% कैल्शियम ग्लूकोनेट लगाना चाहिये। यह गाय को 10.8 ग्राम मौलिक कैल्शियम प्रदान करता है, यह गाय में कैल्शियम की कमी को पूरा करने के लिये पर्याप्त है। इन्ट्रावीनस कैल्शियम की ज्यादा खुराक देने में कोई लाभ नहीं है। इन्ट्रावेनस उपचार के बाद जिन पशुओं में ठीक होने के लक्षण दिखाई दे रहे होते हैं उन पशुओं का मौखिक कैल्शियम द्वारा उपचार करने की जरूरत होती है नहीं तो पुनरावर्तन का जोखिम उठाना पड़ सकता है। जो पशु चारा खाना बंद कर देते हैं या फिर जिनमें आंत गतिशीलता कम हो जाती है, ऐसे पशुओं में क्षणिक कैल्शियम की कमी हो जाती है। यह कहना मुश्किल है कि कैल्शियम की कमी पहले हुई है या आंतों में स्थैतिकता। जो भी मामला हो , दोनों समस्याएं सकारात्मक रूप से एक दूसरे को मज़बूत करती हैं। ऐसे पशुओं का उपचार मौखिक कैल्शियम द्वारा संभव है।

निष्कर्ष

डेयरी पशुओं में उपलक्षणिक हाइपोकैल्शीमिया एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। यह अन्य विकारों के साथ साथ दूध की मात्रा में गिरावट कर देती है। कैल्शियम की कमी को रोकने के लिये हमें पशुओं के चारे में कैल्शियम तथा मैग्नीशियम की मात्रा का खास ध्यान रखना चाहिये। प्रसव के दौरान मौखिक कैल्शियम देना न भूलें तथा द्वितीय तथा तृतीय अवस्था वाले दुग्ध ज्वर मामलों में तुरंत इलाज किया जाना चाहिये।

थिलेरियोसिस : दुधारू पशुओं का एक घातक रोग

साक्षी चौहान[1] एवं विपुल ठाकुर[2]
गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)

थिलेरियोसिस दुधारू पशुओं को हानि पहुँचाने वाले घातक रोगों में से एक है। यह रोग थिलेरिया एन्नयुलेटा नामक रक्त में पाये जाने वाले परजीवी से होता है। यह परजीवी दुधारू पशुओं एवं दुग्ध व्यवसाय को बहुत नुकसान पहुँचाता है। यह परजीवी हायलोमा नामक चीचड़ द्वारा फैलता है, तथा मुख्यतः गर्मी एवं वर्षा ऋतु में अधिक होता है, क्योंकि उच्च तापमान एवं उच्च आर्द्रता चीचड़ों के विकास के लिए उत्तम वातावरण स्थापित करते हैं। इस परजीवी द्वारा अधिक हानि मुख्यतः दुग्ध उत्पादन घटने तथा दुधारू पशुओं की मृत्यु के कारण होती है।

लक्षण

- इस रोग में शरीर का तापमान बहुत तेजी से लगभग 40–41.5^0 सेल्सियस तक पहुँच जाता है।
- सतही लिम्फ नोड्स का विस्तार हो जाता है।
- हृदय गति एवं श्वास गति में वृद्धि हो जाती है।
- नाक से सीरस पदार्थ, आंखों से आँसू एवं खांसी आने लगती है।
- भूख में कमी हो जाती है, जिससे पशु चारा खाना बहुत कम कर देते हैं।
- दुग्ध उत्पादन में गिरावट आ जाती है।
- दमा, दस्त, दुर्बलता भी आम लक्षण हैं।
- कुछ समय पश्चात् बुखार कम होने के साथ–साथ पशु को रक्त की कमी एवं पीलिया हो जाता है।
- पशु का मूत्र भी पीला हो जाता है।

1. एम. वी. एस. सी. शोधकर्ता,पशु परजीवी रोग विभाग
2. सह.रोग अन्वेषण अधिकारी, पशु जन–स्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग, लाला लाजपतराय, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

इस रोग से पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है तथा मृत्यु दर गर्भवती गायों में सबसे अधिक होती है।

शव–परीक्षण

थिलेरियोसिस से पीड़ित पशु का शव परीक्षण करने पर निम्नलिखित विकृतियाँ पायी जाती हैं, जैसे –

- बाह्य लिम्फ नोड्स के आकार में वृद्धि,
- जिगर एवं तिल्ली का विस्तार,
- फेफड़ो एवं गुर्दो की बाह्य सतह पर हल्का खून का आना।
- जठरान्त एवं आँतों में छालों की उपस्थिति का होना ।

शव परीक्षण करने पर इन सभी विकृतियों की उपस्थिति रोग की पुष्टि करती है।

जाँच

थिलेरियोसिस की जाँच के लिए सर्वप्रथम रोग की उस क्षेत्र में पूर्व उपस्थिति एवं चीचड़ों की उपस्थित का पता किया जाता है। इसके पश्चात् उपयुक्त लक्षणों की उपस्थिति इस रोग का अनुमान लगाने में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा विशिष्ट जांच के लिए खून के पतले धब्बों एवं लिम्फ नोड्स एवं जिगर की बायोप्सी के परीक्षण द्वारा ही इस परजीवी की उपस्थिति की जांच की जा सकती है। मृत पशुओं में शव परीक्षण भी रोग की जाँच के लिए बहुत महत्वूपर्ण है। इसके अलावा विभिन्न तकनीकों जैसे पी.सी.आर. एवं सी.एफ.टी. द्वारा भी इस रोग की जाँच की जा सकती है।

उपचार

इस रोग के उपचार के लिए बूपारवाक्योन इन्जेक्शन 2.5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. वजन की दर से माँसपेशियों में

लगाया जाता है। अगर जरूरत हो तो, दूसरा इन्जेक्शन पुनः 48 घण्टे बाद भी दिया जा सकता है। इसके अलावा ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन का टीका भी 5–10 मि.ग्रा. प्रति किग्रा. वजन की दर से मांसपेशियों में लगाया जा सकता है।

रोकथाम एवं नियंत्रण

- रोग के नियंत्रण के लिए पीड़ित पशुओं का पूर्ण इलाज करना चाहिए ।
- पशुओं में रोग की रोकथाम के लिए "रक्षावैक–टी" नामक टीका भी उपलब्ध है। इस टीके का प्रयोग 2 महीने या उससे अधिक उम्र के पशुओं में किया जा सकता है। इस टीके की 3 मि.ली. मात्रा को त्वचा के नीचे लगाया जाता है, तथा रोग की पूर्ण रोकथाम के लिए इसे प्रतिवर्ष लगाया जाना चाहिए ।
- पशुओं की उन प्रजातियों के पालन द्वारा भी हम थिलेरियोसिस का नियंत्रण कर सकते हैं। जिनमें थिलेरियोसिस बहुत कम होता है, जैसे गाय की साहिवाल प्रजाति।
- इनके अलावा चीचड़ों के नियंत्रण द्वारा भी रोग का नियंत्रण किया जा सकता है। चीचड़ों के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग किये जा सकते हैं.
- पशुओं के शरीर का निरीक्षण करके, चीचड़ों को हाथ से निकालकर उन्हें मसल या जला देना चाहिए।
- रासायनिक पदार्थों जैसे 1.25 प्रतिशत डेल्टामैथरिन स्प्रे या 10 प्रतिशत साइपरमैथरिन स्प्रे के पूरे शरीर पर छिड़काव द्वारा चीचड़ों को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अलावा 1 मिली. प्रति लीटर की दर से साइपरमैथरिन को पानी में मिलाकर भी जानवर के शरीर को धोया जा सकता है। आइवरमैक्टिन इन्जेक्शन भी 0.2 मिग्रा. प्रति किग्रा. की दर से त्वचा के नीचे दिया जा सकता है।
- घरेलू वनस्पतियों जैसे नीम के तेल या तुलसी के तेल को पशुओं के शरीर पर लगाने से भी चीचड़ों का नियंत्रण सम्भव है।
- हन्टरैलस हुकैराई नामक कीट के प्रयोग से भी चीचड़ों को नियंत्रित किया जा सकता है, ये कीट चीचड़ों की निम्फ अवस्था पर अण्डें देते हैं तथा इन कीटों के लारवा, चीचड़ों की निम्फ अवस्था को खा जाते हैं।
- मिथोप्रिन के प्रयोग द्वारा भी चीचड़ों को नियंत्रित किया सकता है।
- पशुओं को नियमित रूप से कीटनाशक से धोना चाहिए ।
- पशुओं के आवास स्थल को भी कीटनाशक तथा चूने से धोना चाहिए ।
- आवास स्थल में चूने की पुताई करनी चाहिए तथा सभी दरारों को चूने से भरते रहना चाहिए । इन दरारों में चीचड़ों की विभिन्न अवस्थाएँ पायी जाती हैं, तथा दरारे चूने या कीटनाशक से भरने पर चीचड़ों नियंत्रित रहते हैं।
- घास के मैदान की भी नियमित रूप से जुताई करनी चाहिए।
- पशु के आवास स्थल के चारों ओर गढ्ढा खोदकर उसमें कीटनाशक भरने से चीचड़ों को आवास स्थल में आने से प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

इस प्रकार दुधारू पशुओं में थिलेरियोसिस के लक्षणों की जानकारी द्वारा पशुपालक रोग के शुरूआती अवस्था में रोग की उपस्थिति का अनुमान लगा सकते हैं तथा उचित समय पर पशु चिकित्सक से रोग की जांच एवं उपचार तथा रोग के नियंत्रण के विभिन्न उपायों के प्रयोग द्वारा इस रोग से होने वाली हानियों से अपने पशुओं को सुरक्षित रख सकते हैं।

नेपियर घास: उत्पादन तकनीक एवं प्रबंधन

एस आर वर्मा, आर के बैरवा, राजपाल मीना[1], चन्द्रनाथ मिश्र[1] एवं सतीश कुमार[1]

कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

नेपियर घास एक बहुवर्षीय चारे की फसल है। इसके पौधे गन्ने की भांति लम्बाई में बढ़ते हैं जिनसे 40–50 तक कल्ले निकलते हैं। इसे हाथी घास के नाम से भी जाना जाता है। संकर नेपियर घास अधिक पौष्टिक एवं उत्पादक होती है। नेपियर घास के चारे में 2.5 से 6 प्रतिशत तक ऑक्सलेट पाया जाता है जिसके कारण इसको अकेले अधिक दिनों तक खिलाने से पशुओं के शरीर में कैल्शियम (चूने) की कमी हो जाती है तथा पशु के गुर्दे भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इसके बचाव के लिए पशुओं को नेपियर के साथ रिजका, बरसीम या अन्य चारे अथवा दाने एवं खली देनी चाहिए।

बहुवर्षीय फसल होने के कारण इसकी खेती शरद, ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में कभी भी की जा सकती है। इसलिए जब अन्य हरे चारे उपलब्ध नही होते, उस समय नेपियर का महत्व अधिक बढ़ जाता है। इसके चारे से हे (Hay) भी तैयार किया जा सकता है।

नेपियर की खेती उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, उड़ीसा, आन्धप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, हरियाणा, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान में की जाती है। राजस्थान का पूर्वी एवं दक्षिण पूर्वी भाग इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

जलवायु एवं भूमि

गर्म व नम जलवायु वाले स्थान जहाँ तापमान अधिक रहता है (24^0 – 28^0सेल्सियस), वर्षा अधिक होती है (1000 मी.मी.) तथा वायुमण्डल में आर्द्रता भी अधिक रहती हो वे क्षेत्र नेपियर की खेती के लिए उत्तम माने जाते है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अधिक ठण्डी जलवायु में फसल की वृद्धि नहीं हो पाती है। पाला नेपियर के लिए हानिकारक होता है।

यह घास कई प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। मटियार दोमट मिट्टी जिसमें प्रचुर जीवाशं पदार्थ उपस्थित हों इसके लिए सर्वोत्तम होती है। मृदा का पी.एच.मान 6.5 से 8 होना चाहिए।

उन्नत किस्में

1. **पूसा जायन्ट नेपियर**: यह किस्म भकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से नेपियर एवं बाजरा के संकरण द्वारा विकसित की गई है। उत्तम गुणों वाली यह संकर किस्म, अन्य देशी किस्मों से दोगुना हरा चारा उत्पादित करती है। इसमे साधारण नेपियर की अपेक्षा 25 प्रतिशत प्रोटीन तथा 12 प्रतिशत शर्करा अधिक होती है। इसका चारा मुलायम तथा पत्तीदार होता है। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता भी होती है।
2. **नेपियर बाजरा हाईब्रिड**–21 (एन.बी.–21): पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना से विकसित यह किस्म शीघ्र बढ़ने वाली होती है। इसके पौधे लम्बे, तने पतले एवं रोयें रहित होते हैं। पत्तियाँ लम्बी, पतली तथा चिकनी होती हैं। पौधे में कल्ले अधिक संख्या में निकलते हैं। इसकी पहली कटाई, बुवाई के 50–60 दिन बाद की जा सकती है। इसके बाद 35–40 दिन के अन्तर पर कटाइयाँ ली जा सकती हैं। यह किस्म एक वर्ष में 1500 से 1800 क्विंटल चारा प्रति हेक्टेयर उतपादन दे सकती है।

अन्य उन्नत किस्में

पूसा नेपियर 1, पूसा नेपियर 2 (सर्दियों में भी चारा उत्पादन सम्भव), ए.पी.बी.एन 1, सी.ओ.3, सी.ओ. 4, पी.बी.एन. 233, एन.बी. 6, एन.बी. 17, एन.बी. 25, एम.बी. 8–95, पी.एन.बी. 87, पी.एन.बी. 72, आई.जी.एफ.आर.आई. 293, आइ.जी.एफ.आर.आई. 6,7,9 आदि ।

[1] भाकृअनुप–गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल (हरियाणा)

खेत की तैयारी

नेपियर घास लगाने से पूर्व खेत की अच्छी तैयारी करनी चाहिए। एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से या डिस्क प्लाऊ से तथा 2–3 जुताइयाँ हैरो या देशी हल से करके पाटे द्वारा भूमि को समतल कर लेना चाहिए। अन्तिम जुताई से पूर्व सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट को खेत में बिखेर कर मिला देना चाहिए।

बीज की मात्रा

नेपियर घास की बुवाई वानस्पतिक भागों द्वारा की जाती है। बुवाई हेतु भूमिगत तना जिन्हें राइजोम कहते हैं को उपयोग में लिया जाता है। तने के टुकडों तथा जडोध द्वारा भी इसे उगाया जा सकता है। राइजोम की मात्रा या भार उनके लगाने की दूरी पर निर्भर करता है। यदि लाइन से लाइन की दूरी दो मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखते हैं तो प्रति हैक्टेयर 16500–17000 राइसोम या तनें के टुकडों की आवश्यकता पड़ती है जिनका वजन 12–13 क्विंटल होता है। यदि लाइन से लाइन की दूरी एक मीटर तथा पौधों से पौधों की दूरी 30 सेमी. रखते हैं तो 32000–33000 कल्लों (राइसोम) की आवश्यकता होती है जिनका वजन 24–25 क्विंटल होता है।

पौधे से पौधे की दूरी	लाईन से लाईन की दूरी	टुकड़े	वजन
30 सेमी.	2 मीटर (200 सेमी.)	16500–17000	12–13 क्विंटल
30 सेमी.	1 मी. (100 सेमी.)	32000–33000	24–25 क्विंटल
30 सेमी.	90 सेमी.	40,000	30–32 क्विंटल
30 सेमी.	75 सेमी.	45,000	35–36 क्विंटल

खाद व उर्वरक

खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टेयर 15–20 टन सड़ी हुई गोबर खाद या कम्पोस्ट को खेत में डालकर अन्तिम जुताई करनी चाहिए। बुवाई के समय 50–60 किलो नाइट्रोजन, 80–100 किलो फास्फोरस व 25–30 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से डालना चाहिए ताकि फसल की वृद्धि शीघ्र हो एवं अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। बुवाई से पूर्व मिट्टी की जांच करवाकर सिफारिश के अनुसार उर्वरक देना अधिक लाभदायक रहता है।

रोपाई का समय व विधि

जहां सिंचाई की सुविधा नहीं हो वहाँ बुवाई जुलाई–अगस्त में करें। नेपियर को लगाने का सर्वोत्तम समय मार्च माह माना जाता है। अधिक गर्मी एवं अधिक सर्दी में पौधे ठीक तरह से स्थापित नही हो पाते हैं। जड़युक्त टुकड़ों (राइसोम) द्वारा रोपाई करने हेतु पूरे पौधों को जमीन से खोदकर बाहर निकाल दिया जाता है फिर 15–20 सेमी. लम्बे नये राइजोम को जड़ सहित अलग कर लिया जाता है। यदि टुकड़े बड़े हों तो उसकी पत्तियाँ काट देनी चाहिए जिससे उत्स्वेदन द्वारा पानी की क्षति कम होगी।

बुवाई हमेशा लाईनों में मेड़ों पर करनी चाहिए। उपर्युक्त दूरी पर लाइन बनाकर 2–3 गांठ वाले टुकड़ों को भूमि में 45 डिग्री के कोण पर इस प्रकार लगायें कि टुकड़े की एक गांठ जमीन के अन्दर व दूसरी जमीन से उपर रहे। टुकड़ों का झुकाव उत्तर दिशा की ओर रखना चाहिए ताकि फसल पर वर्षा का हानिकारक प्रभाव नही पड़े। नेपियर की बुवाई ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसे गन्ने की बुवाई की जाती है। बुवाई के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

नेपियर घास की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि खेत में पर्याप्त नमी बनी रहनी चाहिए। सर्दियों में पाले से बचाव के लिए तथा गर्मियों में सूखे से बचाव के लिए प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

हल्की भूमि में भारी भूमि की अपेक्षा अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। गर्मीयों में 10–12 दिन तथा गर्मियों में 20–25 दिन के बाद सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नही होती लेकिन जल निकास की सुविधा जरूर होनी चाहिए।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबंधन

बुवाई के 15 दिन बाद अंधी गुड़ाई करनी चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद कतारों के बीच में गुड़ाई करनी चाहिए, इससे वायु संचार बढ़ता है तथा भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है जिससे फसल की बढ़वार अधिक होती है। फसल लगाने के 2–3 माह तक खरपतवार अधिक होते हैं अतः निराई–गुड़ाई कर इन्हे नियंत्रित करना चाहिए। वर्ष में दो बार (वर्षा प्रारम्भ होने से पूर्व एवं सर्दियों के अन्त में) लाइनों के बीच जुताई करनी चाहिए। रसायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु एट्राजीन 3 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के तुरन्त बाद छिड़काव करने से खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

चूंकि नेपियर घास एक चारे की फसल है, अतः इसकी बार–बार कटाई किए जाने के कारण कीट एवं बीमारियों का प्रकोप नही होता है। यदि भूमि में दीमक की समस्या हो तो सिंचाई के पानी के साथ क्लोरोपाइरीफॉस 2 ली. प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिए। यदि वर्षा ऋतु में फड़का की समस्या हो तो विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार मिथायल पैराथियान का उपयोग किया जा सकता है लेकिन छिड़काव के एक माह तक चारा पशुओं को नही खिलाना चाहिए।

कटाई व उपज

नेपियर घास की पहली कटाई बुवाई के 70–80 दिन बाद करनी चाहिए। इसके बाद 35–40 दिन के अन्तराल पर कटाई करते रहना चाहिए। कटाई जमीन से 10 सेमी. की उंचाई से करनी चाहिए। इस प्रकार कटाई करने से हर कटाई पर 1–1.5 मी. लम्बाई की फसल मिलती रहती है।

अधिक समय तक कटाई नही करने पर इसके तने सख्त हो जाते हैं और उसमें रेशे की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण पशु इसे कम खाना पसन्द करते हैं। साथ ही चारे की पाचनशीलता कम हो जाने के कारण पशुओं का दूध उत्पादन कम हो जाता है। सर्दियों में (नवम्बर से फरवरी) पौधों की वृद्धि रूक जाती है और चारे का उतपादन नही मिल पाता है। वर्ष भर में नेपियर से 5–6 कटाई ली जा सकती हैं जिससे 150–200 टन तक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें 15–20 प्रतिशत शुष्क पदार्थ होता है। इसके चारे में 7–12 प्रतिशत प्रोटीन होता है व इसकी पाचनशीलता 50–70 प्रतिशत होती है।

असाध्य रोगों के उपचार की असीम सम्भावनाओं को तलाशती वंश कोशिकायें

अनुज कुमार सिंह सिकरवार, चेतना गंगवार[1], रविरंजन[1] एवं एस डी खर्चे[1]
63बी, गांधी नगर, आगरा (उ.प्र.)

वर्तमान में अनेक असाध्य रोगों यथा –हृदय रोग विषयक बीमारियाँ, कैंसर, यकृत, सिर की चोट, रीढ़ की हड्डी की चोट, पक्षाघात आदि बीमारियों का उपचार अनेकानेक अनुसंधानों के बाद अब भी असम्भव ही माना–समझा जाता है, ऐसे में रोगी और उसके परिजन उसके जीवित रहने की आशा एक सीमा के बाद छोड़ देते हैं लेकिन अब स्टेम कोशिकाओं थैरेपी से इन रोगों का उपचार सम्भव हो सकेगा।

आप को यह जानने की जिज्ञासा होगी, आखिर यह **'वंश कोशिकाएँ'** होती कैसी हैं और **'स्टेम सेल थैरेपी'** से कैसे उपचार होता है? वस्तुतः स्टेम कोशिकाएँ किसी भी जीव की आधारभूत कोशिकाएँ हैं। अतः पहली स्टेम कोशिका भ्रूण में ही बनती है। ये कोशिकाएँ प्रजनक होती हैं जो शरीर में किसी भी प्रकार की नयी कोशिकाओं का निर्माण करने में सक्षम हैं। इसलिए इन्हें **'जेनरेटिव सेल्स'** भी कहते हैं। इनमें अपने को कई गुना नवीकरण करने की क्षमता भी होती है। दूसरे शब्दों में कहें, तो स्टेम कोशिका अपने मूल सरल रूप में ऐसी अविकसित कोशिकाएँ हैं जिनमें विकसित कोशिका के रूप में विशिष्टता अर्जित करने की क्षमता होती है। इन कोशिकाओं को शरीर की किसी भी कोशिका की मरम्मत के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। वर्तमान में जैव प्रौद्योगिकी में एक नयी शाखा **'कोशिका चिकित्सा'** विकसित की गयी है। इसमें ऐसी कोशिकाओं का अध्ययन किया जाता है जिनमें वृद्धि, विभाजन और विभेदन कर नए ऊतक बनाने की क्षमता हो।

पहले पहल रक्त बनाने वाले ऊतकों से इस चिकित्सा का विचार और प्रयोग शुरू हुआ। अस्थि मज्जा (बोन मैरो) से प्राप्त ये कोशिकाएँ, आजीवन शरीर में रक्त का उत्पादन करतीं हैं। सन् 1960 में कनाडा के वैज्ञानिकों अर्नस्ट ए. मुकलॉक, जेम्स ई. मुकलॉक तथा जेम्स ई. टिल की खोज के बाद स्टेम कोशिका के प्रयोग को बढ़ावा मिला। वैज्ञानिक उपयोग के लिए स्रोत के आधार पर 'स्टेम कोशिका' को भ्रूणीय एवं वयस्क में विभाजित किया जाता हैं। अधिकांशतः वंश कोशिकाएँ भ्रूण से प्राप्त की जाती हैं जो जन्म के समय से ही सुरक्षित रखी जाती हैं।

माँस पेशियों की कोशिकाओं, रक्त कोशिकाओं, नाड़ी कोशिकाओं आदि का सीमित जीवनकाल होता है। ये कोशिकाएँ विभाजित होकर अपनी संख्या नहीं बढ़ा सकती। इसके विपरीत स्टेम कोशिकाओं इन सभी कोशिकाओं को बना सकती हैं। स्टेम कोशिकाएँ का उपयोग केवल असाध्य रोगों में ही किया जाता है। रोगियों को ऐसे मामलों में बहुत धैर्य की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह कोई औषधि/दवा (मेडिसिन) न होकर जीवित कोशिकाओं का प्रत्यारोपण है, जिसे विकसित होने में समय लगता है। इसके प्रभाव धीरे–धीरे दिखाई देते हैं।

वंश कोशिकाओं द्वारा उपचार में वयस्क स्टेम कोशिका तकनीक में रोगी की अस्थि मज्जा (बोन मैरो) से कोशिकाएँ (सैल) ली जाती हैं। फिर उन्हें क्षतिग्रस्त अंग या आघात वाले स्थान पर रोपित कर दिया जाता है। ऐसा किये जाने पर वहाँ नयी कोशिकाएँ बनने लगती हैं और घाव का भरना या चोट का सही होना शुरू हो जाता है। हृदय की माँसपेशियाँ तथा तन्तु (टिश्यू) का नवीनीकरण नहीं हो सकता। यदि एक बार ये क्षतिग्रस्त हो गए, उस दशा में सदैव के लिए नष्ट हो जाते हैं, किन्तु अब स्टेम कोशिका तकनीक से इन तन्तुओं और माँसपेशियों को पुनर्जीवित किया जा सकता है। अगर हृदय की कोशिकाएँ

[1] केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा (उ.प्र.)

खराब हो गईं, तो इनकी मरम्मत स्टेम कोशिकाओं द्वारा की जा सकती है। इसी प्रकार यदि आँख की कॉर्निया की कोशिकाएँ खराब हो जाएँ, तो उन्हें भी स्टेम कोशिकाओं द्वारा विकसित कर प्रत्यारोपित किया जा सकता है। इसी तरह मानव शरीर के लिए बहुत आवश्यक तत्त्व विटामिन सी की बीमारियों के उपचार हेतु स्टेम कोशिका पैदा करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। तन्त्रिका तन्त्र के रोगों में भी विशेष रूप से तन्त्रिकाओं का प्रत्यारोपण कर इनकी अवस्था में सुधार लाने की क्षमता रखता है। मधुमेह, पक्षाघात, अल्जाइमर, मस्तिष्क चोट, यकृत को पुनः विकसित करना, आर्थराइटिस, कैंसर, डायस्ट्रोफी, एएलएस, न्यूरोमस्कलर रोग सरीखे जैसे गम्भीर रोगों में भी स्टेम कोशिका उपचार प्रभावी होता है। भविष्य में प्रयोगशाला में निर्मित स्टेम कोशिकाएँ अनेक प्रकार के रक्त कैंसर का उपचार कर सकती हैं। रक्त कणिकाओं (एप्लास्टिक एनीमिया) की कमी तथा थैलीसीमिया के रोगियों को बार–बार रक्त घटकों की आवश्यकता रहती है। साधारणतः रोगी के समान रक्त समूह वाले रक्त दाता का हर समय उपलब्ध होना आसान नहीं है। अतः अब ऐसी तकनीक विकसित की गयी है जिससे प्रयोगशाला में अन्य कोशिकाओं से लाल रक्त कणिकाओं का उत्पादन किया जा सकता है। पश्चिमी साइबेरिया के एक छोटे नगर युगरा के डॉक्टर, स्टेम कोशिका की सहायता से रक्त कैंसर का सफलतापूर्वक उपचार कर रहे हैं। इन स्टेम कोशिकाओं से किसी भी प्रकार की अर्थात यकृत, हड्डी या रक्त आदि की कोशिकाएँ बनायी जा सकती हैं। इस तरह स्टेम कोशिका तकनीक से अब इन रोगों का इलाज सम्भव है।

स्टेम कोशिका चिकित्सा पद्धति में चोट लगने के बाद शरीर स्वयं रक्त में स्टेम कोशिका छोड़ेगा, जो हृदयाघात (हार्ट अटैक) से हृदय के तन्तुओं को हुई क्षति/टूटी हुई हड्डियों में उपस्थित अस्थि मज्जा स्टेम कोशिका छोड़ती है जो चोट वाली जगह पहुँच कर हीलिंग का काम शुरू कर देती हैं। ऐसे ही नए तन्तु जैसे हृदय की कोशिकाओं, रक्त वाहिनियों, हड्डियों/कार्टिलेज बनते हैं। चिकित्सकों को स्टेम कोशिकाओं से मानव शरीर में दोबारा यकृत (लीवर) उत्पन्न करने में सफलता मिल चुकी है। अब ऐसे रोगियों में यकृत प्रत्यारोपण (ट्रान्सप्लांट) को टाला जा सकता है। ताजा अध्ययन में 60 प्रतिशत रोगियों को इस तकनीक से लाभ हुआ है।

आजकल मधुमेह (डायबिटीज) रोग बड़ी संख्या में व्यक्तियों को अपनी गिरफ्त में लेता जा रहा है, जो अनेक रोगों का जनक है और इसका उपचार भी बहुत महँगा है। इस रोग में मानव शरीर में ऊर्जा के लिए ग्लूकोज संचित करने तथा उसका उपयोग करने की क्षमता नहीं रहती। इन दोनों का कारण मधुमेह टाइप वन तथा मधुमेह टाइप टू है। मानव शरीर में पाचन तन्त्र में पाचन ग्रन्थि भी सम्मिलित है जो छः इंच लम्बी तथा पत्ते के आकार की होती है। इसमें तरल पदार्थ तथा इन्सुलिन बनता है। अग्नाशय (पैन्क्रियाज) में उत्पन्न तरल पदार्थ इन्सुलिन के साथ–साथ अग्नाशायी तरल पदार्थ भी बनाता है। पाचन के लिए अन्य हार्मोन्स की भी जरूरत होती है। इन्सुलिन को उत्पन्न एवं मुक्त करने का काम बीटा सेल करती है। मानव शरीर में इन्सुलिन बनाने की क्षमता का नष्ट होना ही 'मधुमेह' रोग है। यह रोग शरीर के सभी भागों को प्रभावित करता है। इस रोग से पीड़ित रोगियों को हृदय विषयक रोगों के होने की दो से चार प्रतिशत तक अधिक सम्भावना रहती है। मधुमेह के रोगियों में अन्धेपन की बीमारी भी कई गुना अधिक पायी जाती है। इसके अतिरिक्त गुर्दे के रोगियों में 40 प्रतिशत रोगी इस रोग से पहले ही ग्रस्त होते हैं। मधुमेह के रोगी को अधिक थकान का अनुभव होता है। उसे प्यास भी अधिक लगती है। इसके साथ ही उसे बार–बार कुछ खाने की इच्छा होती है। वह अपने को शक्तिहीन भी अनुभव करता है।

बीटा सेलों का नष्ट हो जाने से रक्त में शर्करा (शुगर) का स्तर बढ़ जाता है। टाइप वन के मधुमेह से ग्रसित रोगी इन्सुलिन का निर्माण नहीं कर पाते, जबकि टाइप टू के मधुमेह रोगी उतनी मात्रा में इन्सुलिन उत्पन्न नहीं कर पाते, जितनी की शरीर को आवश्यकता होती है। वस्तुतः

इन्सुलिन एक हार्मोन है जो शर्करा (ग्लूकोज) और माड़ (स्टार्च) को ऊर्जा में बदलने का कार्य करता है। इसके अलावा शरीर में रक्त स्राव को व्यवस्थित करता है। मधुमेह के उपचार के लिए अब इन्सुलिन के इन्जेक्शन के स्थान पर स्टेम कोशिकाओं का इस्तेमाल होने लगा है। इस नयी विधि ने मधुमेह के टाइप वन के रोग के उपचार में बड़ा बदलाव ला दिया है।

चूँकि स्टेम कोशिकाओं से शरीर के किसी भी अंग को विकसित किया जा सकता है। इसी अवधारणा को लेकर अब स्टेम कोशिका से मनुष्य के असली दाँत विकसित करने के लिए इस वैज्ञानिक तकनीक को प्रयुक्त करने में किंग्स कॉलेज, लन्दन के वैज्ञानिक जुटे हैं। इस प्रक्रिया में पहले स्टेम कोशिका को दाँतों के लिए विकसित किया जाएगा। इसके बाद इन्हें व्यक्ति के जबड़े में मसूड़े के नीचे उस स्थान पर प्रत्यारोपित कर किया जाएगा, जहाँ से दाँत निकल चुका/गिर गया है। फिर यह प्रत्यारोपित स्टेम कोशिका से पूरा दाँत विकसित होने में लगभग दो माह लगेंगे। इसी तरह से भविष्य में स्टेम कोशिकाओं की सहायता से मनुष्य में दृष्टिहीनता पूर्णतः समाप्त किये जाने की सम्भावना है। फोटोरिसेप्टरों (रोशनी पकड़ने वाली कोशिकाएँ) के नष्ट होने से रेटिनाइटिस पिगमेण्टजा तथा आयु बढ़ने के साथ आँखों की माँसपेशियों के खराब होने की बीमारी मेकूलर डिजनरेशन होती है। ब्रिटेन की मेडिकल रिसर्च काउंसिल के अनुसार भ्रूण की मूल कोशिकाओं से अनगिनत फोटोरिसेप्टर बनाए जा सकेंगे, जिन्हें दृष्टिहीनों के रेटिना में प्रत्यारोपित किया जा सकेगा। छत्तीसगढ़ के राजधानी रायपुर के मेडिकल कॉलेज के स्टेमसेल विभाग ने नॉहीलिंग अल्सर के रोगी के रक्त से ही तैयार मलहम से उसके अल्सर को ठीक करने में सफलता प्राप्त की है।

बहरहाल, जीवन विज्ञान में स्टेम कोशिका जीव सम्भावनाओं से परिपूर्ण उभरता क्षेत्र है। इसमें अनेक असाध्य रोगों में कोशिकीय प्रतिस्थापना तथा ऊतकीय अभियांत्रिकी माध्यम से उपचार में स्टेम कोशिका प्रौद्योगिकी की क्षमता को व्यापक मान्यता प्राप्त हो चुकी है। इस प्रौद्योगिकी के चिकित्सकीय महत्त्व को देखते हुए विभिन्न संस्थानों, अस्पतालो और उद्योगों में इस विषय में मूलभूत तथा प्रयोगात्मक शोध को बढ़ावा दिया जा रहा है।

श्रेष्ठ लेखों को पुरस्कार

"पशुधन प्रकाश" पत्रिका के **चतुर्थ अंक** में प्रकाशित तीन सर्वश्रेष्ठ लेखों को भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है।

पशुधन प्रकाशः चतुर्थ अंक (2013) के पुरस्कृत लेख–

प्रथमः "पशुधन नस्ल पंजीकरणः राष्ट्रीय संपदा की सुरक्षा"– डा. पी.के. विज, डा. एस.के. निरंजन, डा. एम. एस. टांटिया व डा. बी.के. जोशी, भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

द्वितीयः "हिमाचल प्रदेश की अमूल्य धरोहर–चामूर्थी घोड़ा"– डा. प्रदीप कुमार डोगरा, डा. संजीत कटोच, डा. यशपाल ठाकुर, डा. वरूण सांख्यान एवम् डा. राकेश कुमार, पशु चिकित्सा महाविद्यालय, हि.प्र.कृ.वि. पालमपुर (हि.प्र.)

तृतीयः "पशुओं का उचित रखरखाव"– डा. देवव्रत सिंह, पशु चिकित्सा व पशु विज्ञान महाविद्यालय, गो.ब.पं. कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)

एन.बी.ए.जी.आर.
गीत

एन.बी.ए.जी.आर. –एन.बी.ए.जी.आर.
देता है ज़्यादा हमको, कम खाकर करे गुज़ारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर. का यही मिशन है, फूले–फले पशुधन का संसार।

सुन्दर नस्लें हैं अपने इन, सभी पालतू पशुओं की। गुण की ये हैं खान, यहाँ है सब कुछ इनका उपयोगी।।
लाखों–लाख गरीबों के, जीने का खास सहारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर. ....

भांति–भांति के पशुओं का, भरपूर खज़ाना हम पे है। भारत के गाँवों की सचमुच, सुख–समृद्धि इनसे है।।
कुदरत ने उपहार दिया है, हमको बेहद प्यारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर..

इस अनमोल सम्पदा को, मिलजुल के हमें बचाना है। चुन–चुन कर उत्तम नस्लों को, आगे और बढ़ाना है।।
राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक, संसाधन ब्यूरो का नारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर...

एन.बी.ए.जी.आर. प्रथम तो, नस्लों की पहचान करे। वैज्ञानिक तकनीकों के द्वारा, फिर उनका उत्थान करे।।
एन.बी.ए.जी.आर. है सच्चा, इनका पालनहारा ये। सभी धनों में बड़ा पशुधन, है अनमोल हमारा ये।।
एन.बी.ए.जी.आर. ....

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल - 132 001 (हरियाणा) भारत

दूरभाष : 0184-2267918, फैक्स : 0184-2267654

ईमेल : directornbagr@gmail.com

http://www.nbagr.res.in